अभिधम्मपिटके

पुग्गलपञ्ञत्तिपालि

Abhidhammapiṭake

PUGGALAPAÑÑATTIPĀLI

(मूल, टीका तथा हिन्दी अनुवाद सहित)

डॉ. ओम प्रकाश पाठक • डॉ. वीणा गौड़

पुग्गलपञ्ञत्तिपालि

डॉ. ओम प्रकाश पाठक
डॉ. वीणा गौड़

पुग्गलपञ्ञत्तिपालि

डॉ. ओम प्रकाश पाठक
डॉ. वीणा गौड़

पुस्तक परिचय

'पुग्गलपञ्ञत्ति' व्यावहरिक मनोविज्ञान की पुस्तक है जिसका अभिधम्मपिटक में चतुर्थ स्थान है। इसके अर्न्तगत पुरुषों की मनोदशा का पूर्ण विवरण व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत ३९० प्रकार के पुरुषों का दिग्दर्शन उनके मानसिक धरातल के आधार पर किया गया है जिसका सम्बन्ध चित्त, चेतसिक, रूप तथा निर्वाण से है।

'पुग्गल' शब्द यहाँ आत्मा या जीव के लिए प्रयुक्त नहीं है वरन् मनुष्य मात्र का अधिवचन है। मनुष्य, मानव, मनुज, पुरुष, सत्त्व आदि इसके पर्याय कहे जा सकते हैं। मनुष्य मात्र के कथन से सभी मनुष्य अभिप्रेत होते हैं। उनमें चरित्र भेद स्वभावतः स्पष्ट है। कोई राग विपुल है, किसी में द्वेष की अधिकता है, कोई मोहाच्छन्न है, कोई धर्मपथ से दूर है, कोई धर्मपथ से दूर होते हुए भी उस पर आरूढ़ होने के लिए संलग्न है, कोई आरूढ हो चुका है तथा अनुक्रमिक विकास कर रहा है तथा कोई उस पथ पर प्रतिपन्न हो आध्यत्मिक लाभ से समुप्रेत होकर विहार कर रहा है। ये सभी मनुष्य हैं पर इनके मानसिक धरातल का विश्लेषण करने पर उनमें प्रभूत भेद देखा जा सकता है। ऐसे मनुष्य या पुरुष ही यहाँ **'पुग्गल'** शब्द से अभिप्रेत हैं। **'पञ्ञत्ति'** उनकी मानसिक दशा का परिचायक है।

इसके अन्तर्गत आचारशास्त्रीय आचरण, मानसिक मनोवृत्ति, सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन के बारे में बताया गया है। जो पुरुषों से सम्बन्धित हैं।

भूमिका विस्तारपूर्वक लिखी गयी है। बहुत दिनों से विद्यार्थियों के माँग को देखते हुए इस पुस्तक का अनुवाद प्रथम बार हिन्दी में प्रकाशित किया जा रहा है, जो विद्यार्थियों तथा शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

मूल्य : 400.00

अभिधम्मपिटके

पुग्गलपञ्ञत्तिपालि

Abhidhammapiṭake

PUGGALAPAÑÑATTIPĀLI

(With Hindi Translation)

Translator and Chief Editor

Dr. Om Prakash Pathak

M.A. (Pāli & Buddhist Studies), M. Phil., Ph. D.

Editor

Dr. Veena Gaur

M.A. (Sanskrit & Pāli), M. Phil., Ph. D.

Department of Buddhist Studies

University of Delhi,

Delhi.

NEW BHARATIYA BOOK CORPORATION

DELHI INDIA

Publisher :
NEW BHARATIYA BOOK CORPORATION
Shop No. 18, 2nd Floor,
5574A, Ch. Kashi Ram Market,
Durga Complex, New Chandrawal,
Delhi-110007

First Edition 2000

© Dr. Om Prakash Pathak

Price : 400.00

ISBN : 81-87418-14-1

Printed by : **A.R. Printers**
D-102, New Seelampur
Delhi-110053
Phone : (011) 2260113

अभिधम्मपिटके

पुग्गलपञ्ञत्तिपालि

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादक एवं मुख्य सम्पादक

डॉ॰ ओम प्रकाश पाठक

एम. ए. (पालि एवं बौद्ध अध्ययन), एम. फिल्., पी-एच. डी.

सम्पादक

डॉ॰ वीणा गौड़

एम. ए. (संस्कृत एवं पालि), एम. फिल्., पी-एच. डी.
बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन

दिल्ली भारत

प्रकाशक :
न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन
दु॰ नं॰ १८, II फ्लोर, ५५७४-ए,
काशीराम मार्किट, दुर्गा काम्पलैक्स,
न्यू चन्द्रावल, दिल्ली-११०००७

प्रथम आवृत्ति : २०००

© डॉ॰ ओम प्रकाश पाठक

मूल्य : ४००.००

आई. एस. बी. एन. : ८१-८७४१८-१४-१

मुद्रक : ए॰ आर॰ प्रिन्टर्स
डी-१०२, न्यू सीलमपुर
दिल्ली-११००५३

समर्पण

स्वर्गीय पितामह श्री धर्मदेव पाठक
एवं
स्वर्गीया माता श्रीमती भगवती पाठक
को

ओम प्रकाश पाठक

विषय-सूची

दो शब्द	१६
आमुख	२१
भूमिका	२५
संकेत-सूची	६१

मातिकाउद्देसो

छ पञ्ञत्तियो	१
१ खन्धानं खन्धपञ्ञत्ति	१
२. आयतनानं आयतनपञ्ञत्ति	२
३. धातूनं धातुपञ्ञत्ति	२
४. सच्चानं सच्चपञ्ञत्ति	३
५. इन्द्रियानं इन्द्रियपञ्ञत्ति	३
६. पुग्गलानं पुग्गलपञ्ञत्ति	४
(१) एको पुग्गलो	४
(२) द्वे पुग्गला	७
(३) तयो पुग्गला	१०
(४) चत्तारो पुग्गला	१३
(५) पञ्च पुग्गला	२२
(६) छ पुग्गला	२५
(७) सत्त पुग्गला	२६
(८) अट्ठ पुग्गला	२७
(९) नव पुग्गला	२८
(१०) दस पुग्गला	२८

मातिकानिद्देसो

१. एककपुग्गलपञ्ञत्ति २६

(१) समयविमुत्तो पुग्गलो २६

(२) असमयविमुत्तो पुग्गलो २६

(३) कुप्पधम्मो पुग्गलो ३०

(४) अकुप्पधम्मो पुग्गलो ३१

(५) परिहानधम्मो पुग्गलो ३१

(६) अपरिहानधम्मो पुग्गलो ३२

(७) चेतनाभब्बो पुग्गलो ३३

(८) अनुरक्खणाभब्बो पुग्गलो ३३

(९) पुथुज्जनो पुग्गलो ३४

(१०) गोत्रभू पुग्गलो ३४

(११-१२) भयूपरतो अभयूपरतो पुग्गलो ३५

(१३) अभब्बागमनो पुग्गलो ३५

(१४) भब्बागमनो पुग्गलो ३६

(१५-१६) नियतो अनियतो पुग्गलो ३६

(१७-१८) पटिपन्नको फले ठितो पुग्गलो ३७

(१९) समसीसी पुग्गलो ३७

(२०) ठितकप्पी पुग्गलो ३७

(२१-२२) अरियो अनरियो पुग्गलो ३८

(२३-२५) सेक्खो असेक्खो नेवसेक्खनासेक्खो पुग्गलो ३८

(२६) तेविज्जो पुग्गलो ३९

(२७) छळभिञ्ञो पुग्गलो ३९

(२८) सम्मासम्बुद्धो पुग्गलो ३९

(२९) पच्चेकसम्बुद्धो पुग्गलो ४०

(३०) उभतोभागविमुत्तो पुग्गलो ४०

(३१) पञ्ञाविमुत्तो पुग्गलो ४०

(३२) कायसक्खी पुग्गलो ४१

(३३) दिट्ठिप्पत्तो पुग्गलो ४१

(३४) सद्धाविमुत्तो पुग्गलो ४२
(३५) धम्मानुसारी पुग्गलो ४३
(३६) सद्धानुसारी पुग्गलो ४३
(३७) सत्तक्खत्तुपरमो पुग्गलो ४४
(३८) कोलङ्कोलो पुग्गलो ४४
(३९) एकबीजी पुग्गलो ४५
(४०) सकदागामी पुग्गलो ४५
(४१) अनागामी पुग्गलो ४५
(४२) अन्तरापरिनिब्बायी पुग्गलो ४६
(४३) उपहच्चपरिनिब्बायी पुग्गलो ४६
(४४) असङ्खारपरिनिब्बायी पुग्गलो ४७
(४५) ससङ्खारपरिनिब्बायी पुग्गलो ४८
(४६) उद्धंसोतो अकनिट्ठगामी पुग्गलो ४८
(४७-४८) सोतापन्नो सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो ४९
(४९-५०) सकदागामी सकदागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो ४९
(५१-५२) अनागामी अनागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो ५०
(५३-५४) अरहा अरहत्तफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो ५०

२. दुकपुग्गलपञ्ञत्ति **५१**
(१.क) कोधनो पुग्गलो ५१
(ख) उपनाही पुग्गलो ५२
(२.क) मक्खी पुग्गलो ५२
(ख) पळासी पुग्गलो ५३
(३.क) इस्सुकी पुग्गलो ५४
(ख) मच्छरी पुग्गलो ५४
(४.क) सठो पुग्गलो ५५

(ख) मायावी पुग्गलो ५६
(५.क) अहिरिको पुग्गलो ५७
(ख) अनोत्तप्पी पुग्गलो ५८
(६.क) दुब्बचो पुग्गलो ५८
(ख) पापमित्तो पुग्गलो ५९
(७.क) इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारो पुग्गलो ६०
(ख) भोजने अमत्तञ्ञू पुग्गलो ६१
(८.क) मुट्ठस्सति पुग्गलो ६१
(ख) असम्पजानो पुग्गलो ६२
(९.क) सीलविपन्नो पुग्गलो ६३
(ख) दिट्ठिविपन्नो पुग्गलो ६४
(१०.क) अज्झत्तसंयोजनो पुग्गलो ६५
(ख) बहिद्धासंयोजनो पुग्गलो ६५
(११.क) अक्कोधनो पुग्गलो ६६
(ख) अनुपनाही पुग्गलो ६६
(१२.क) अमक्खी पुग्गलो ६७
(ख) अपळासी पुग्गलो ६७
(१३.क) अनिस्सुकी पुग्गलो ६८
(ख) अमच्छरी पुग्गलो ६८
(१४.क) असठो पुग्गलो ६९
(ख) अमायावी पुग्गलो ७०
(१५.क) हिरिमा पुग्गलो ७१
(ख) ओत्तप्पी पुग्गलो ७१
(१६.क) सुवचो पुग्गलो ७२
(ख) कल्याणमित्तो पुग्गलो ७३
(१७.क) इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो पुग्गलो ७३
(ख) भोजने मत्तञ्ञू पुग्गलो ७४
(१८.क) उपट्ठितस्सति पुग्गलो ७५
(ख) सम्पजानो पुग्गलो ७६

(१६.क) सीलसम्पन्नो पुग्गलो ७७
(ख) दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो ७७
(२०) द्वे दुल्लभा पुग्गला ७८
(२१) द्वे दुत्तप्पया पुग्गला ७९
(२२) द्वे सुतप्पया पुग्गला ७९
(२३) द्विन्नं आसवा वड्ढन्ति ७९
(२४) द्विन्न आसवा न वड्ढन्ति ८०
(२५.क) हीनाधिमुत्तो पुग्गलो ८०
(ख) पणीताधिमुत्तो पुग्गलो ८१
(२६.क-ख) तित्तो पुग्गलो तप्पेता च ८१
३. तिकपुग्गलपञ्ञत्ति **८२**
(१.क) निरासो पुग्गलो ८२
(ख) आसंसो पुग्गलो ८३
(ग) विगतासो पुग्गलो ८३
(२) तयो गिलानूपमा पुग्गला ८४
(३.क) कायसक्खी पुग्गलो ८७
(ख) दिट्ठिप्पत्तो पुग्गलो ८७
(ग) सद्धाविमुत्तो पुग्गलो ८८
(४.क) गूथभाणी पुग्गलो ८८
(ख) पुप्फभाणी पुग्गलो ८९
(ग) मधुभाणी पुग्गलो ९०
(५.क) अरुकूपमचित्तो पुग्गलो ९०
(ख) विज्जूपमचित्तो पुग्गलो ९१
(ग) वजिरूपमचित्तो पुग्गलो ९२
(६.क) अन्धो पुग्गलो ९३
(ख) एकचक्खु पुग्गलो ९३
(ग) द्विचक्खु पुग्गलो ९४
(७.क) अवकुज्जपञ्ञो पुग्गलो ९४
(ख) उच्छङ्गपञ्ञो पुग्गलो ९६

(ग) पुथुपञ्ञो पुग्गलो ६७
(८.क) कामेसु च भवेसु च अवीतरागो पुग्गलो ६६
(ख) कामेसु वीतरागो भवेसु अवीतरागो ६६
(ग) कामेसु च भवेसु च वीतरागो ६६
(६.क) पासाणलेखूपमो पुग्गलो १००
(ख) पथविलेखूपमो पुग्गलो १००
(ग) उदकलेखूपमो पुग्गलो १०१
(१०) तयो पोत्थकूपमा पुग्गला १०२
(११) तयो कासिकवत्थूपमा पुग्गला १०४
(१२.क) सुप्पमेय्यो पुग्गलो १०६
(ख) दुप्पमेय्यो पुग्गलो १०७
(ग) अप्पमेय्यो पुग्गलो १०७
(१३.क) न सेवितब्बो पुग्गलो १०७
(ख) सेवितब्बो पुग्गलो १०८
(ग) सक्कत्वा सेवितब्बो पुग्गलो १०६
(१४.क) जिगुच्छितब्बो न सेवितब्बो ११०
(ख) अज्झुपेक्खितब्बो न सेवितब्बो १११
(ग) सेवितब्बो पुग्गलो ११२
(१५.क) सीलेसु परिपूरकारी पुग्गलो ११३
(ख) सीलसमाधिसु परिपूरकारी पुग्गलो ११४
(ग) सीलसमाधिपञ्ञासु परिपूरकारी पुग्गलो ११४
(१६) तयो सत्थारो ११४
(१७) अपरे पि तयो सत्थारो ११६

४. चतुक्कपुग्गलपञ्ञत्ति ११८

(१.क) असप्पुरिसो पुग्गलो ११८
(ख) असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो पुग्गलो ११८
(ग) सप्पुरिसो पुग्गलो ११६
(घ) सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो पुग्गलो ११६
(२.क) पापो पुग्गलो १२०

(ख) पापेन पापतरो पुग्गलो १२१
(ग) कल्याणो पुग्गलो १२२
(घ) कल्याणेन कल्याणतरो पुग्गलो १२२
(३.क) पापधम्मो पुग्गलो १२३
(ख) पापधम्मेन पापधम्मतरो पुग्गलो १२४
(ग) कल्याणधम्मो पुग्गलो १२४
(घ) कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरो पुग्गलो १२५
(४.क) सावज्जो पुग्गलो १२५
(ख) वज्जबहुलो पुग्गलो १२६
(ग) अप्पवज्जो पुग्गलो १२६
(घ) अनवज्जो पुग्गलो १२७
(५.क) उग्घटितञ्ञू पुग्गलो १२७
(ख) विपञ्चितञ्ञू पुग्गलो १२७
(ग) नेय्यो पुग्गलो १२८
(घ) पदपरमो पुग्गलो १२८
(६.क) युत्तप्पटिभानो, नो मुत्तप्पटिभानो १२९
(ख) मुत्तप्पटिभानो, नो युत्तप्पटिभानो १२९
(ग) युत्तप्पटिभानो च मुत्तप्पटिभानो च १२९
(घ) नेव युत्तप्पटिभानो, नो मुत्तप्पटिभानो १३०
(७) चत्तारो धम्मकथिका पुग्गला १३०
(८) चत्तारो वलाहकूपमा पुग्गला १३२
(९) चत्तारो मूसिकूपमा पुग्गला १३४
(१०) चत्तारो अम्बूपमा पुग्गला १३७
(११) चत्तारो कुम्भूपमा पुग्गला १४१
(१२) चत्तारो उदकरहदूपमा पुग्गला १४३
(१३) चत्तारो बलीबद्दूपमा पुग्गला १४६
(१४) चत्तारो आसीविसूपमा पुग्गला १४८
(१५.क) अवण्णारहस्स वण्णं भासति १५०
(ख) वण्णारहस्स अवण्णं भासति १५१

(ग) अप्पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति १५२
(घ) पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति १५२
(१६.क) अवण्णारहस्स अवण्णं भासति १५३
(ख) वण्णारहस्स वण्णं भासति १५३
(ग) अप्पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति १५४
(घ) पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति १५४
(१७.क) अवण्णारहस्स अवण्णं भासति, नो च वण्णारहस्स वण्णं १५५
(ख) वण्णारहस्स वण्णं भासति, नो च अवण्णारहस्स अवण्णं १५५
(ग) अवण्णारहस्स च अवण्णं वण्णारहस्स च वण्णं भासति १५६
(घ) नेव अवण्णारहस्स अवण्णं न वण्णारहस्स वण्णं भासति १५७
(१८.क) उट्ठानफलूपजीवी नो पुञ्ञफलूपजीवी १५८
(ख) पुञ्ञफलूपजीवी नो उट्ठानफलूपजीवी १५८
(ग) उट्ठानफलूपजीवी च पुञ्ञफलूपजीवी च १५९
(घ) नेव उट्ठानफलूपजीवी नो पुञ्ञफलूपजीवी १५९
(१९.क) तमो तमपरायनो पुग्गलो १६०
(ख) तमो जोतिपरायनो पुग्गलो १६१
(ग) जोति तमपरायनो पुग्गलो १६१
(घ) जोति जोतिपरायनो पुग्गलो १६२
(२०.क) ओणतोणतो पुग्गलो १६३
(ख) ओणतुण्णतो पुग्गलो १६४
(ग) उण्णतोणतो पुग्गलो १६४
(घ) उण्णतुण्णतो पुग्गलो १६४
(२१) चत्तारो रुक्खूपमा पुग्गला १६५
(२२.क) रूपप्पमाणो रूपप्पसन्नो पुग्गलो १६७
(ख) घोसप्पमाणो घोसप्पसन्नो पुग्गलो १६८
(ग) लूखप्पमाणो लूखप्पसन्नो पुग्गलो १६८
(घ) धम्मप्पमाणो धम्मप्पसन्नो पुग्गलो १६९
(२३.क) अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय १६९
(ख) परहिताय पटिपन्नो नो अत्तहिताय १७०

(ग) अत्तहिताय चेव पटिपन्नो परहिताय च १७१
(घ) नेव अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय १७२
(२४.क) अत्तन्तपो पुग्गलो १७२
(ख) परन्तपो पुग्गलो १७५
(ग) अत्तन्तपो च परन्तपो च पुग्गलो १७६
(घ) नेव अत्तन्तपो च परन्तपो च पुग्गलो १७७
(२५.क) सरागो पुग्गलो १८६
(ख) सदोसो पुग्गलो १८६
(ग) समोहो पुग्गलो १६०
(घ) समानो पुग्गलो १६०
(२६.क) चेतोसमथस्स लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय न लाभी १६०
(ख) अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय लाभी चेतोसमथस्स न लाभी १६१
(ग) उभिन्नं लाभी १६१
(घ) उभिन्नं अलाभी १६२
(२७.क) अनुसोतगामी पुग्गलो १६३
(ख) पटिसोतगामी पुग्गलो १६३
(ग) ठितत्तो पुग्गलो १६४
(घ) पारङ्गतो पुग्गलो १६४
(२८.क) अप्पस्सुतो सुतेन अनुपपन्नो १६५
(ख) अप्पस्सुतो सुतेन उपपन्नो १६५
(ग) बहुस्सुतो सुतेन अनुपपन्नो १६६
(घ) बहुस्सुतो सुतेन उपपन्नो १६६
(२६.क) समणमचलो पुग्गलो १६७
(ख) समणपदुमो पुग्गलो १६७
(ग) समणपुण्डरीको पुग्गलो १६८
(घ) समणेसु समणसुखुमालो पुग्गलो १६८

५. पञ्चकपुग्गलपञ्ञत्ति **१६६**

(१.क) आरभति च विप्पटिसारी होति १६६
(ख) आरभति न विप्पटिसारी होति २००
(ग) नारभति विप्पटिसारी होति २००

(घ) नारभति न विप्पटिसारी होति २०१
(ङ) पञ्चमो पुग्गलो २०२
(२.क) दत्वा अवजानाति २०२
(ख) संवासेन अवजानाति २०२
(ग) आधेय्यमुखो होति २०३
(घ) लोलो होति २०३
(ङ) मन्दो मोमूहो होति २०४
(३) पञ्च योधाजीवूपमा पुग्गला २०४
(४) पञ्च पिण्डपातिका २१३
(५-१४) पञ्चखलुपच्छाभत्तिकादि २१५
(१५) पञ्च सोसानिका २१५

६. छक्कपुग्गलपञ्ञत्ति २१८

(१.क) सम्मासम्बुद्धो पुग्गलो २१८
(ख) पच्चेकसम्बुद्धो पुग्गलो २१८
(ग) महासावको पुग्गलो २१६
(घ) अरहन्तो पुग्गलो २१६
(ङ) अनागामी पुग्गलो २१६
(च) सोतापन्नो सकदागामी पुग्गलो २२०

७. सत्तकपुग्गलपञ्ञत्ति २२१

(१.क) सकिं निमुग्गो निमुग्गो व होति २२१
(ख) उम्मुज्जित्वा निमुज्जति २२१
(ग) उम्मुज्जित्वा ठितो होति २२२
(घ) उम्मुज्जित्वा विपस्सति २२३
(ङ) उम्मुज्जित्वा पतरति २२४
(च) उम्मुज्जित्वा पटिगाधप्पत्तो होति २२४
(छ) उम्मुज्जित्वा तिण्णो होति २२५
(२.क) उभतोभागविमुत्तो पुग्गलो २२६
(ख-च) पञ्ञाविमुत्तो... धम्मानुसारी पुग्गलो २२६
(छ) सद्धानुसारी पुग्गलो २२७

८. अट्ठकपुग्गलपञ्ञत्ति २२८

चत्तारो मग्गसमङ्गिनो पुग्गलो, चत्तारो फलसमङ्गिनो पुग्गलो २२८

६. नवकपुग्गलपञ्ञत्ति २२६

(१.क) सम्मासम्बुद्धो पुग्गलो २२६
(ख) पच्चेकसम्बुद्धो पुग्गलो २२६
(ग) उभतोभागविमुत्तो पुग्गलो २३०
(घ) पञ्ञाविमुत्तो पुग्गलो २३०
(ङ) कायसक्खी पुग्गलो २३१
(च) दिट्ठिप्पत्तो पुग्गलो २३१
(छ) सद्धाविमुत्तो पुग्गलो २३२
(ज) धम्मानुसारी पुग्गलो २३२
(झ) सद्धानुसारी पुग्गलो २३३

१०. दसकपुग्गलपञ्ञत्ति **२३४**

(१.क-ङ) पञ्च पुग्गला इध निट्ठा २३४
(च-ञ) पञ्च पुग्गला इध विहाय निट्ठा २३४

पुग्गलानुक्कमणिका **२३७**
उपमा-अनुक्कमणिका **२४६**

दो शब्द

'पुग्गलपञ्ञत्ति' अभिधम्मपिटक की चतुर्थ पुस्तक है। यह दस अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में विविध प्रकार के पुरुषों का स्वभाव-कथन है। इस प्रकार इन दस अध्यायों में तीन सौ नब्बे प्रकार के पुरुषों का विवरण है। एककपुग्गलपञ्ञत्ति में पुरुष के एक-एक गुण या लक्षण का विवरण दर्शाया गया है। दुकपुग्गलपञ्ञत्ति में पुरुष के दो-दो प्रकार के लक्षण दिखलाए गये हैं। इसी क्रम में अंक की दृष्टि से बढ़ते हुए दसकपुग्गलपञ्ञत्ति में पुरुष के दस लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है।

इस प्रसंग में दर्शनीय बात यह है कि धम्मसङ्गणि अपनी बाईस तिक मातिकाओं, सौ दुक मातिकाओं तथा बयालिस सुत्तन्त मातिकाओं के सहारे धर्मों के स्वरूप के विवरण उपस्थित करती है। विभङ्ग इसी प्रकार अठारह अध्यायों में उन्हीं धर्मों पर अन्य ढंग से प्रकाश डालता है। धातुकथा के चौदह अध्यायों में संग्रह, असंग्रह, सम्प्रयोग, विप्रयोग की दृष्टि से स्कन्ध, आयतन, धातु पर प्रकाश डाला गया है। इन्हें इस प्रकार देखकर प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये विवरण केवल विवरण मात्र है अथवा इनके साथ कोई साकार रूप भी उपस्थित किया जा सकता है। उत्तर है कि ये सभी धर्म विभिन्न पुरुषों के गुण एवं लक्षण हैं। धम्मसङ्गणि आदि ग्रन्थों में वर्णित धर्मों का ही पुग्गलपञ्ञत्ति में तीन सौ नब्बे प्रकार के पुरुषों का कथन कर उनमें उन धर्मों का साकार रूप दर्शाया गया है। इस प्रकार धम्मसङ्गणि आदि में जो अभिधर्म के धर्मों का सैद्धान्तिक रूप है, वहां पुग्गलपञ्ञत्ति उनका प्रायोगिक रूप उपस्थित करती है। इसमें पुरुषों का कथन कर उनके लक्षण, स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए यह दर्शाया गया है कि ये सभी धर्म पुरुषों में ही देखे जाते हैं। इसी दृष्टि को मूल रूप में रखते हुए पुग्गलपञ्ञत्ति का प्रणयन हुआ है। यह पुस्तक पुरुष के विविध रूपों के अध्ययन का एक सुन्दर एवं सार्थक रूप है।

अभिधर्म को दुरुह एवं कठिन मानकर इसे अध्ययन क्रम से सर्वदा दूर रखा गया था। यह प्रसन्नता की बात है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात नव-नालन्दा महाविहार, नालन्दा तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के बौद्ध अध्ययन विभाग में

अभिधर्म दर्शन का अध्ययन, अध्यापन एवं शोध का प्रारम्भ हुआ है। इस क्रम में हिन्दी भाषा-भाषी छात्रों को अभिधर्म के ग्रन्थों का अनुवाद आवश्यक-सा हो गया है। वे सर्वदा पुग्गलपञ्ञत्ति जैसे उपयोगी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद की मांग करते रहे हैं।

यह प्रसन्नता की बात है कि मेरे छात्र डा० ओम प्रकाश पाठक, एम. ए., एम. फिल्, पी-एच. डी. ने पुग्गलपञ्ञत्ति नामक पुस्तक का सरल, दायित्वपूर्ण एवं सुबोध अनुवाद उपस्थित किया है। यह अनुवाद शोध-छात्रों एवं अभिधर्म में अभिरुचि रखने वाले छात्रों के लिए बहुत उपयोगी होगा। मेरी मंगल कामना है कि डा० पाठक इसी प्रकार अभिधर्म के अन्य ग्रन्थों का भी भविष्य में हिन्दी में अनुवाद करते जायं, जिससे अभिधर्म का अनवरत प्रसार भारत में होता रहे। इस मंगल कामना के साथ मैं उन्हें सर्वदा स्वस्थ एवं दीर्घजीवी होने की शुभेच्छा व्यक्त करता हूँ।

प्रो० महेश तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

आमुख

'अभिधर्म' अपनी दार्शनिक स्थापनाओं तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के कारण पालि त्रिपिटक में विशेष स्थान रखता है। पालि के अन्य दो पिटकों का सम्बन्ध बुद्धधर्म की व्यावहारिक शिक्षा तथा भिक्षुओं के दैनिक आचार-सदाचार के साथ है। 'सुत्तपिटक' बौद्धधर्म के नैतिक शिक्षण का 'भाण्डागार' है तो 'विनयपिटक' बुद्धधर्मानुयायी गृहस्थों तथा भिक्षुओं के आचार-व्यवहार का 'विश्वकोश' है। इसके विपरित 'अभिधर्म-पिटक' स्थविरवादी सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों का विशाल 'निकेतन' है। इसका अध्ययन बौद्धदर्शन तथा विपश्यना के इतिहास को बताने के लिए अति आवश्यक है। 'धर्म' का गम्भीर अर्थ प्रतिपादित होने के कारण, यह साधारण मनुष्यों के लिए तो नहीं, किन्तु विपश्यना से युक्त मनुष्यों के लिए तो बहुत ही उपयोगी है। इसके गम्भीर अध्ययन से सुस्पष्ट होता है कि विषय की दृष्टि से इसमें ऐसी कोई नयी वस्तु नहीं है जो सुत्तपिटक में न हो, वस्तुतः यह उसी की तात्त्विक एवं नैतिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। 'सुत्तपिटक' में जहाँ रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान को 'पञ्चस्कन्ध' के रूप में विभक्त किया गया है, ठीक उसी प्रकार 'अभिधर्म-पिटक' में चित्त, चेतसिक, रूप तथा निर्वाण के रूप में वर्गीकरण किया गया है, जिसे 'परमार्थ धर्म' कहते हैं। वस्तुतः अभिधर्म-पिटक के समस्त ग्रन्थों की विषय-वस्तु इन्हीं चार परमार्थ धर्मों पर ही टिकी हुई है। इस प्रकार 'धर्म' अर्थात् 'शुद्ध धर्म' का विस्तृत विवेचन ही 'अभिधर्म है। आचार्य बुद्धघोष ने इसे 'उच्चतर धर्म' या 'विशेष धर्म (धम्म)' कहा है। 'अभिधर्म' में 'अभि' शब्द 'अतिरेक' या 'विशेष' अर्थ का द्योतक है।[1] 'धर्म' शब्द 'परियत्ति धार्म' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसलिए 'धर्म' शब्द द्वारा सूत्रों का भी ग्रहण होता है, यथा – "यो वो, आनन्द, मया धम्मो च विनयो च देसितो पञ्ञत्तो" आदि कहा गया है।[2] अतः सुत्तपिटक से अधिक गम्भीर और विशिष्ट धर्म 'अभिधर्म' है। अभिधर्म पिटक में धर्मों का कुशल, अकुशल, अव्याकृत आदि विभिन्न नयों से विभाजन करके प्रतिपादन किया गया है। यही सुत्तपिटक से इसकी अतिशयता एवं विशिष्टता है। यहाँ तक की महायान परम्परा के आचार्य

---

१. "तत्थ अभिधम्मो ति केनट्ठेन अभिधम्मो ? धम्मातिरेकधम्मविसेसट्ठेन। अतिरेकविसेसत्थदीपको हि एत्थ 'अभि'-सद्दो।" – अ० सा०, पृ० २।

२. दी० नि० २, पृ० ११८।

आर्य असंग ने भी 'अभिधर्म' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए जरा-सा भी नहीं डगमगाए और उन्होंने 'अभि' शब्द को चार अर्थों में प्रयुक्त करके बताया है, यथा – निर्वाण के अभिमुख होने के कारण, धर्म का विविध वर्गीकरण करने के कारण, विरोधी मतों का अभिभव करने के कारण तथा सूत्रों के सिद्धान्त का अनुगमन करने के कारण। इस प्रकार उन्होंने चार अर्थों में अभिधर्म की सार्थकता दिखलाई है।[1] आचार्य वसुबन्धु ने अपने 'अभिधर्मकोश' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में सपरिवार अमला प्रज्ञा को परमार्थतः अभिधर्म कहा है तथा उस अमला प्रज्ञा को प्राप्त कराने वाली सामान्य प्रज्ञा और उसका प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों को भी व्यवहारतः अभिधर्म कहा है।[2] इन सब गुणों से युक्त होने के कारण 'अभिधर्म' का स्थान बौद्ध-वाङ्मय में महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

'अभिधर्म' के गुण का पता इस बात से चलता है कि इसके अभ्यास, साधना, विपश्यना के द्वारा चित्त (अन्तर्मन) में असीम आनन्द, सन्तोष, स्थिरता तथा एकाग्रता का अनुभव होने लग जाता है। अतः इसका विशिष्ट अध्ययन किये बिना बुद्ध के शिक्षा तथा उपदेश का सार समझना सरल नहीं है। 'परियत्ति' तथा 'पटिपत्ति' के माध्यम से ही अभिधर्म को शुद्ध रूप में यथाभूत जाना जा सकता है। इसलिए यह बहुत कठिन साधना है क्योंकि यह अपने विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन उपस्थित करता है। इसलिए इसके सार-तत्त्व को ढूँढ निकालना सरल कार्य नहीं है। विभिन्न काल तथा परिस्थितियों में विद्वानों द्वारा इस कार्य को न किया जाता तो विश्व के मनुष्यों का कल्याण असम्भव हो जाता। तब मनुष्य, मनुष्य न होकर राक्षस का रूप धारण कर लेता और विश्व में सर्वत्र हिंसा तथा भय का वातावरण व्याप्त हो जाता, परन्तु ऐसा न हो सका। यह संघनायक आयुष्मान महाकाश्यप की कृपा थी। परिणामस्वरूप आयुष्मान महाकाश्यप की अध्यक्षता में प्रथम संगीति का आयोजन राजगृह के सप्तपर्णी गुहा में हुआ तथा समस्त बुद्धवचनों का संगायन आनन्द और उपालि के उपस्थिति में करके, विषयगत दृष्टि से इसे तीन भागों में विभक्त किया गया, जिसे सुत्तपिटक, विनयपिटक तथा अभिधम्मपिटक के नाम से जाना जाता है। इन तीन पिटकों को पालि साहित्य में 'त्रिपिटक' कहा जाता है क्योंकि भगवान बुद्ध की देशनाएं तीन हैं, उनका शासन तीन है, कथाएं तीन प्रकार की हैं। शिक्षा तीन हैं, प्रहाण भी तीन हैं तथा एक-एक पिटक में चार-चार गम्भीर भाव हैं, अतः तीन ही पिटक बताए गए हैं। कहा भी गया है–

---

१. "अभिमुखतोऽथाभीक्ष्ण्यादभिभवगतितोऽभिधर्मश्च।"
– महायानसूत्रालंकार, ११:३, सिल्वा लेवी द्वारा प्रकाशित, १६०७।

२. "प्रज्ञाऽमला सानुचराऽभिधर्मस्तत्प्राप्तये याऽपि च यच्च शास्त्रम्।"
– अभिधर्मकोश, १:२, पृ० ५, आचार्य नरेन्द्र द्वारा अनूदित हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १६५८।

''देसना-सासन-कथाभेदं तेसु यथारहं।
सिक्खा-पहान-गम्भीरभावं च परिदीपये''।।[1]

तत्पश्चात अनेक विद्वानों एवं आचार्यों ने इसे सहज, सरल, लोकोपयोगी बनाने तथा जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस पर अनेक अट्ठकथाएं, टीकाएं, अनुटीकाएं, गण्ठियां इत्यादि लिखीं। यह परम्परा आचार्य बुद्धघोष युग से प्रारम्भ हुई थी जो आजतक भी चली आ रही है।

'अभिधर्मपिटक' के सभी ग्रन्थों पर आचार्य बुद्धघोष कृत अट्ठकथा ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न कालों में अनेक विद्वानों द्वारा विभिन्न टीकाओं का प्रणयन किया गया है परन्तु राष्ट्रभाषा अर्थात् हिन्दी में इसका अभाव सर्वदा खटकता रहा है। आजतक भी अभिधर्मपिटक के किसी भी ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद कार्य नहीं हुआ है, जिसके कारण हिन्दी भाषा-भाषी विद्यार्थी तथा शोधार्थी इसका पूर्ण लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। अब तो लगभग सभी विश्वविद्यालयों में स्नात्तकोत्तर स्तर पर अभिधर्म की पढ़ाई हो रही है और विद्यार्थियों की हमेशा माँग रही है कि इसका अनुवाद हिन्दी में भी हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैंने 'पुग्गलपञ्ञत्ति' का अनुवाद करने का निश्चय किया और सफलता पूर्वक सम्पन्न भी कर लिया। अनुवाद के साथ प्रस्तावना में विभिन्न प्रकार के पुरुषों की अवधारणाओं पर लघु टिप्पणी भी लिखा गया है जो विद्यार्थियों के लिए अति लाभप्रद सिद्ध होगा। इसके साथ ही पुस्तक में रोमन, बर्मी, सिंहली तथा नालन्दा के पृष्ठों का उद्धरण भी दिया गया है जो शोधार्थियों के लिए उपयोगी होगा। यह संस्करण निम्नांकित ग्रन्थों के पाठों के आधार पर तैयार किया गया है–

नालन्दा-संस्करण	–	श्री नव नालन्दा महाविहार, १९६०
बर्मी-संस्करण	–	छट्ठ-संगायन प्रकाशन, १९५६
स्यामी-संस्करण	–	महामकुट राजविद्यालय प्रकाशन, १९२६
सिंहली-संस्करण	–	श्री पियतिस्सथेर द्वारा सम्पादित, १९५४
सिंहली-संस्करण	–	बुद्ध-जयन्ती त्रिपिटक सीरीज भाग ४७, सिंहली अनुवाद सहित, १९७६
रोमन-संस्करण	–	आर० मोरिस, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लन्दन, १८८३

१. अ० सा०, पृ० २०।

इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में जो-जो कठिनाइयां आयी और जिन-जिन विद्वानों तथा मित्रों ने इन कठिनाइयों को हल करने में मेरी सहायता की उनके प्रति कृतज्ञता के दो शब्द कह देना अपना आवश्यक कर्तव्य समझता हूँ।

सर्वप्रथम प्रो० महेश तिवारी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ने मुझे सर्वदा इसके अनुवाद के लिए प्रोत्साहित किया और समय-समय पर सहायता भी की है। इनके प्रति अपना आभार समर्पित करता हूँ। प्रो० अंगराज चौधरी ने भी इस कार्य में मेरी सहायता की है। उनके प्रति भी हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। प्रो० एन० एच० सम्ताणी, सारनाथ, वाराणसी ने भी इस सम्बन्ध में मेरी सहायता की तथा सर्वदा प्रोत्साहित करते रहे। उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ। प्रो० भिक्षु सत्यपाल, बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ने इस कार्य में समय-समय पर सहायता की तथा सुझाव दिया। इनके प्रति भी हृदय से आभारी हूँ। श्री रामअवध वर्मा ने भी इस कार्य को करने में प्रोत्साहित किया है। उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ।

डा० धनञ्जय चव्हाण, एम०डी०, नाशिक ने समय-समय पर उचित शब्द को उचित स्थान पर प्रयोग करने में मेरी अक्लान्त सहायता की है। ऐसे कल्याणमय भाई के प्रति तो कहने के लिए मेरे पास कोई शब्द ही नहीं है। डा० वीणा गौड़, डा० रमानाथ पाण्डेय तथा श्री मयंक कुमार, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ने प्रूफ-संशोधन का कार्यभार सँभाला। जिसके फलस्वरूप यह पुस्तक इस स्थिति में उपलब्ध हो सकी है। इस पुस्तक को अन्तिम रूप देने में दीपी, दिपांशु, आशीष तथा श्रीमति माधुरी पाण्डेय ने सर्वदा उत्साहित किया।

अन्त में मैं उन प्राचीन तत्त्वचिन्तकों एवं ग्रन्थकारों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता हूँ जिनकी रचनाओं से मैं लाभान्वित हुआ हूँ। इन सभी के प्रति भी नतमस्तक हूँ।

न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित करा कर पुण्य लाभ अर्जित किया है। ए० आर० प्रिन्टर्स भी इसके पुण्य लाभी हैं जिन्होंने समय पर कार्य को सम्पन्न किया।

भवतु सब्ब मङ्गलं !!!

बुद्ध त्रिरत्न मिशन
नयी दिल्ली

ओम प्रकाश पाठक

भूमिका

'पुग्गलपञ्ञत्ति' अभिधम्मपिटक की चतुर्थ पुस्तक है। यहाँ 'पुग्गल' शब्द से मनुष्य गृहीत है। 'पञ्ञत्ति' अवधारणा का द्योतक है। मनुष्य जीवन की उपलब्धि एक दुर्लभ घटना है। वह मात्र एक मांसपुंज ही नहीं है, वरन् जाग़त चेतना का स्रोत है। चित्त को ही चेतना कह सकते हैं। जब चित्त संक्लिष्ट है तो मनुष्य भी संक्लिष्ट है। जब चित्त परिष्कृत एवं परिशुद्ध है तब सत्त्व भी परिष्कृत एवं परिशुद्ध है। उसका परिशुद्ध या मलिन होना चित्त के परिशुद्ध या मलिन होने के आधार पर विनिश्चित होता है। फलतः चित्त की परिशुद्धि या संक्लिष्टता के कारण मनुष्य या पुरुष के कितने प्रकार हो सकते हैं, इसका दिग्दर्शन पुग्गलपञ्ञत्ति में कराया गया है। 'पुग्गलपञ्ञत्ति' अभिधर्म में प्रतिपादित सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप है। इसमें तीन सौ नब्बे प्रकार के पुरुषों का दिग्दर्शन उनके मानसिक धरातल के आधार पर किया गया है।

'पुग्गलपञ्ञत्ति' दो अवयवों से निष्पन्न है – पुग्गल एवं पञ्ञत्ति। 'पुग्गल' का अर्थ पुद्गल, पुरुष, सत्त्व, मनुष्य इत्यादि अभिप्रेत है तथा 'पञ्ञत्ति' का अर्थ प्रज्ञप्ति है। यहाँ पुग्गल का अर्थ किसी आत्मविषयक तत्त्व के लिए नहीं प्रयोग किया गया है, फिर भी यहाँ पर 'कथावत्थु' तथा 'मिलिन्दपञ्ह' का कुछ उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, जिससे दोनों पक्षों का अर्थ स्पष्ट हो जाय।

'पुग्गल' शब्द बौद्ध परम्परा में दो दृष्टियों से प्रयोग में आया है – 'पुरुष के रूप में' तथा 'आत्मा के रूप में'। जब पुग्गल शब्द बौद्ध परम्परा में आत्मा के लिए प्रयुक्त होता है तब आत्मा नित्य, ध्रुव, सद्वस्तु, जीव, पुद्गल आदि सभी एक अर्थ में प्रयुक्त देखे जाते हैं। इस सभी शब्दों में एक नित्य, तटस्थ तत्त्व का द्योतन होता है। 'कथावत्थु' में भी कई परिच्छेदों में पुग्गल शब्द आया है। विशेषकर प्रथम अध्याय तो पुग्गलवग्ग है, जिसमें वज्जिपुत्तिय नामक भिक्षुओं के पुद्गल की अवधारणा का निराकरण किया गया है। ये पुद्गलवादी आत्मवादी थे, जो पंचस्कन्धों से न तो भिन्न और न अभिन्न आत्मा की स्थिति मनुष्य के व्यक्तित्व में स्वीकार करते थे।[१]

---

१. कथा० १–७१

'मिलिन्दपञ्ह' में भी 'पुग्गल' शब्द का प्रयोग आया है। प्रश्नकर्ता की दृष्टि में पुग्गल एक नित्य सद्वस्तु के रूप में है। इसका प्रारम्भ से ही निराकरण करते हुए नागसेन ने स्पष्ट किया है कि नित्य, सद्वस्तु के रूप में पुद्गल जैसी वस्तु की उपलब्धि नहीं होती। यह एक नाम है, व्यवहार है, संकेत मात्र है। इसे लोक प्रचलन कहा जा सकता है।[1] पुद्गल कोई आत्मा, कोई ध्रुव, तटस्थ वस्तु नहीं है। इस प्रकार पुद्गल का एक अवधारणामूलक चिन्तन प्रारम्भ से चला आ रहा है।

प्रकृति प्रसंग में 'पुग्गलपञ्ञत्ति' से निम्नलिखित अर्थ ध्वनित होता है। 'पुग्गल' शब्द यहाँ आत्मा या जीव के लिए प्रयुक्त नहीं है, वरन् मनुष्य मात्र का अधिवचन है। पुरुष, मनुष्य, व्यक्ति, मानव, मनुज, सत्त्व आदि इसके पर्याय कहे जा सकते हैं। पुरुष मात्र के कथन से सभी पुरुष अभिप्रेत होते हैं। उनमें चरित्र भेद स्वभावतः स्पष्ट है। कोई राग विपुल है, किसी में द्वेष की अधिकता है, कोई मोह से परिपूर्ण है, कोई धर्मपथ से दूर है, कोई धर्मपथ से दूर होते हुए भी उस पर आरूढ़ होने के लिए संलग्न है, कोई आरूढ़ हो चुका है तथा अनुक्रमिक विकास कर रहा है तथा कोई उस पथ पर प्रतिपन्न हो आध्यात्मिक लाभ से ऊपर उठकर विहार कर रहा है। ये सभी पुरुष हैं, पर उनके मानसिक धरातल का विश्लेषण करने पर उनमें कुछ भेद देखा जा सकता है। ऐसे पुरुष ही यहाँ पुद्गल शब्द से अभिप्रेत हैं। 'पञ्ञत्ति' उनकी मानसिक दशा का परिचायक है।

'पञ्ञत्ति' शब्द का अर्थ पञ्ञापना, दस्सना, पकासना इत्यादि है।[2] पुग्गलपञ्ञत्ति के इस परम्परा के अनुसार इसका अर्थ पुरुषों को धर्मोपदेश देना, निर्देशित करना, प्रकाशित करना एवं प्रतिस्थापित करना है।[3] अट्ठकथा में भी इस प्रकार के पञ्ञत्ति की विभिन्नता की सूची दी गयी है।[4] इन सबका अभिप्राय यह है कि चरित्र भेद से जो विभिन्न प्रकार के पुरुष हैं, उन पुरुषों के मानसिक धरातल का स्पष्टतः निर्देश करते हुए उन्हें प्रकाश में लाना है। चरित्र भेद से मानसिक विश्लेषण अभिप्रेत है जो चित्त, चेतसिक, रूप और निर्वाण के रूप में विश्लेषित है।

सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक में जो स्वभाव का विश्लेषण है, उसी का अनुसरण करते हुए यहाँ पुद्गल का निर्देश है। इस पुस्तक में विभिन्न प्रकार के पुद्गलों के चरित्र का निर्देश है। इसलिए 'पुग्गलपञ्ञत्ति' को पुरुष के स्वभाव के आधार पर उनके विविध रूप का विश्लेषण ही समझना चाहिए।

इस ग्रन्थ में मूल रूप से पुरुषों के मनःस्थिति का ज्ञान कराना इष्ट है।

---

१. मि० प०, पृ० १६
२. प० प० अट्ठ० १, पृ० ३७
३. प० प० अट्ठ० १, पृ० ३८
४. प० प० अट्ठ० १, पृ० ३८-३६

इसमें दस परिच्छेद हैं, जिसके अन्तर्गत एककपुग्गलपञ्ञत्ति, दुकपुग्गलपञ्ञत्ति, तिकपुग्गलपञ्ञत्ति, चतुक्कपुग्गलपञ्ञत्ति, पञ्चकपुग्गलपञ्ञत्ति, छक्कपुग्गलपञ्ञत्ति, सत्तकपुग्गलपञ्ञत्ति, अट्ठकपुग्गलपञ्ञत्ति, नवकपुग्गलपञ्ञत्ति तथा दसकपुग्गलपञ्ञत्ति है। एककपुग्गलपञ्ञत्ति के अन्तर्गत एक-एक प्रकार के स्वभाव को दर्शाते हुए ५८ प्रकार के पुरुषों का वर्णन उपस्थित है। दुकपुग्गलपञ्ञत्ति के अन्तर्गत २६ प्रकार के पुरुषों का विवरण उनके मानसिक स्वरूप के दो-दो पक्षों को दर्शाते हुए किया गया है। तिकपुग्गलपञ्ञत्ति के अन्तर्गत पुरुषों के मनःस्थिति के अध्ययन के आधार पर तीन-तीन प्रकारों में विभक्त किया गया है। चतुक्कपुग्गलपञ्ञत्ति में चार-चार दृष्टियों से पुरुषों का वर्णन किया गया है। पञ्चकपुग्गलपञ्ञत्ति में पुरुषों की मनःस्थिति पर पाँच-पाँच दृष्टियों से विचार किया गया है। छक्कपुग्गलपञ्ञत्ति में छः प्रकार के ऐसे पुरुषों का वर्णन है जो आध्यात्मिक दृष्टि से समुन्नत तथा परमार्थ लाभी या लाभोन्मुख हैं। सत्तकपुग्गलपञ्ञत्ति के अन्तर्गत मानसिक धरातल की समुन्नति तथा अवनति के अध्ययन पूर्वक पुरुषों को समझाने का यत्न किया गया है। इसके अन्तर्गत कुल १४ पुरुष हैं। अट्ठकपुग्गलपञ्ञत्ति में आध्यात्मिक दृष्टि से समुन्नति अथवा विकास की ओर संलग्न मानसिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए पुरुषों के आठ प्रकार का दिग्दर्शन है, जिनमें चार मार्गस्थ तथा चार फलस्थ हैं। मार्ग एवं फल से लोकोत्तर मार्ग तथा लोकोत्तर फल अभिप्रेत है। नवकपुग्गलपञ्ञत्ति में नव प्रकार के पुरुषों का वर्णन उपस्थित किया गया है, जिनका केवल एक ही समूह है। इसमें सम्मासम्बुद्ध, पच्चेकसबुद्ध, उभतोभागविमुत्त, पञ्ञाविमुत्त, कायसक्खी, दिट्ठिप्पत्त, सद्धाविमुत्त, धम्मानुसारी और सद्धानुसारी पुग्गल का वर्णन किया गया है। दसकपुग्गलपञ्ञत्ति में १० प्रकार के पुरुषों का उल्लेख है, जिनका अध्ययन उनकी मानसिक स्थिति के अध्ययन एवं परीक्षण के आधार पर किया गया है। इसके अन्तर्गत आचारशास्त्रीय आचरण, मानसिक मनोवृत्ति एवं आध्यात्मिक जीवन के बारे में भी बताया गया है जो पुरुषों से सम्बन्धित है। इस ग्रन्थ में ३६० प्रकार के पुरुषों का विवरण है। इसको संक्षिप्त में समझने के लिए निम्नलिखित रेखा चित्र से उनका आकलन किया जा सकता है।

अध्याय	पुद्गलों के समूह	प्रत्येक समूह में पुरुषों की संख्या	पुरुषों की पूर्ण संख्या
१	५४	१	५४
२	२६	२	५२
३	१७	३	५१
४	२६	४	११६

५	१४	५	७०
६	१	६	६
७	२	७	१४
८	१	८	८
९	१	९	९
१०	१	१०	१०
	१४६		**३६०**

प्रस्तुत ग्रन्थ में जो ३६० प्रकार के पुरुषों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है उन सभी का विवेचन करना तो सम्भव नहीं है फिर भी कुछ मुख्य पुरुषों का वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुथुज्जन पुग्गल

'पुथुज्जन' का अर्थ होता है पृथग्जन। पृथग्जन शब्द अपने में एक विशेष अर्थ का द्योतक है। बौद्ध साधना में पृथग्जन का विशेष महत्त्व है क्योंकि पृथग्जन की स्थिति से ही मनुष्य साधना के लिए अग्रसर होता है। यदि वह पृथग्जन की स्थिति में न रहे तो पुनः साधना के लिए प्रवृत्ति का प्रश्न ही कहाँ है ? तब प्रश्न उठता है कि यह पृथग्जन कौन है ? पृथग्जन सामान्य मनुष्य को कहते हैं जिसको अभी धर्मत्व का उदय नहीं हुआ है, जो साधना से बहुत दूर तथा अलग है, उसे 'पृथग्जन' कहा जाता है। इसकी परिभाषा देते हुए कहा गया है कि पृथग्जन वह है जो अश्रुतवान है, जिसने आर्यों या गुरुओं से धर्म की बातें नहीं सुनी है, ऐसे अश्रुत पुरुष को पृथग्जन कहा जाता है। यहाँ आर्य से बुद्ध एवं उनके प्रमुख शिष्य अभिप्रेत हैं। जिसने बुद्ध के बताए हुए मार्ग का दर्शन नहीं किया है तथा उनके पथ में विनीत नहीं है, वह पृथग्जन है।

मूल ग्रन्थ में बताया गया है कि जिस पुरुष के तीन संयोजन अर्थात् सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा तथा शीलव्रतपरामाश अप्रहीण हैं तथा उसके प्रहाण के लिए प्रयत्नशील नहीं है, उसे पृथग्जन कहते हैं। संयोजन का अर्थ है बाँधना। जो धर्म मनुष्यों को संसारचक्र में बाँधते हैं तथा उससे छूटने नहीं देते हैं, उन्हें संयोजन कहा जाता है।[१]

'सत्कायदृष्टि' भी एक प्रकार का संयोजन है। इसी भावना से प्रभावित होकर

१. अ० सा०, पृ० ४१

मनुष्य विभिन्न प्रकार के हिंसोत्पादक कर्मों में प्रवृत्त होता है। पंचस्कन्धात्मक शरीर में अहंकार एवं ममकार रखना सत्कायदृष्टि है। 'विचिकित्सा' का अर्थ है संशय। इस प्रकार के मनुष्यों को बुद्ध, धर्म तथा संघ में संशय बना रहता है। 'शीलब्रतपरामाश' से तात्पर्य ब्रत, उपवास आदि में विश्वास करना या उसके प्रति आसक्ति है। इस प्रकार जो इन तीन संयोजनों से युक्त है, वही 'पृथग्जन' है।

अनरिय पुग्गल

'अनरिय' का अर्थ अनार्य है। जो आर्य नहीं है, उसे अनार्य कहा जाता है। तीन कारणों से युक्त पुरुष को आर्य कहा जाता है – क्लेशों से दूर हो जाने के कारण, मनुष्य के देवलोक में पूज्य होने के कारण तथा परिशुद्ध होने के कारण। जिनमें इन तीन प्रकार की उपलब्धियां न हों, वह अनार्य है। इसका तात्पर्य यह है कि आठ प्रकार के पुरुष विशेषणों को आर्य कहा जाता है। वे हैं – चार मार्गस्थ तथा चार फलस्थ। चार मार्गस्थ हैं – सोतापत्तिमग्ग, सकदागामीमग्ग, अनागामी मग्ग तथा अरहत्तमग्ग। चार फलस्थ हैं – सोतापत्तिफल, सकदागामीफल, अनागामीफल तथा अरहत्तफल। इनको छोड़कर अवशेष कामावचर चित्त सम्पन्न, रूपावचर चित्त सम्पन्न तथा अरूपावचर चित्त सम्पन्न पुरुष अनार्य हैं।

'कामावचर चित्त' का अर्थ है जो चित्त विभिन्न प्रकार के इच्छाओं से वशीभूत होकर प्रवृत्त होता है। कहा भी गया है – "कामे अवचरन्तीति कामावचरा"।[1] यह चित्त फन्दन, चपल, चंचल एवं यत्र-तत्रगामी है। इसे किसी विषय पर एकाग्र कर पाना बहुत कठिन है। इसके समक्ष अनेक विषय होते हैं तथा उनके साथ भ्रमण करता है। कामावचर चित्त सम्पन्न की उपमा एक बन्दर से दी गयी है जो किसी वृक्ष पर रहते हुए किसी एक शाखा पर स्थित नहीं रहता है, वरन् प्रतिक्षण एक शाखा से दूसरी शाखा पर दौड़ता रहता है। ऐसा चित्त 'कामावचर चित्त' कहलाता है।

'रूपावचर चित्त' का अर्थ है जो रूपालम्बन पर एकाग्र होता है। इसके आलम्बन होते हैं – वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और एकाग्रता। इन पर ध्यान करने से चित्त एकाग्र हो जाता है और पुरुष रूपावचर चित्त सम्पन्न कहा जाता है।

'अरूपावचर चित्त' का अर्थ है जो रूपहीन विषय पर एकाग्र होता है। इस'

---

१. अ० सा०, पृ० ४२, ५२

स्थिति में साधक विभिन्न दिशाओं से अपने चित्त को समेटकर अरूप आलम्बन पर एकाग्र करता है। इसमें अरूप के चार आलम्बन होते हैं – आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिन्चन्यायतन तथा नैवसंज्ञानासंज्ञायतन। इन पर ध्यान करने से चित्त एकाग्र हो जाता है और पुरुष अरूपावचर चित्त सम्पन्न कहा जाता है। इस प्रकार कामावचर चित्त सम्पन्न, रूपावचर चित्त सम्पन्न तथा अरूपावचर चित्त सम्पन्न पुरुष 'अनार्य' है।

नेवसेक्खनासेक्ख पुग्गल

सेक्ख (या शैक्ष्य) एवं असेक्ख (या अशैक्ष्य) से भिन्न पुरुष को 'नेवसेक्खनासेक्ख पुरुष' कहा जाता है। शैक्ष्य एवं अशैक्ष्य के अन्तर्गत आठ प्रकार के पुरुष ही प्रमाणित हैं। इन पुरुषों का आठ प्रकार होना, आठ प्रकार के चित्त के कारण है। प्रथम सात लोकोत्तर चित्त अर्थात् सोतापत्तिमग्ग, सोतापत्तिफल, सकदागामीमग्ग, सकदागामीफल, अनागामीमग्ग, अनागामीफल तथा अरहत्तमग्ग से युक्त पुरुष को सात प्रकार से शैक्ष्य कहा जाता है तथा आठवां लोकोत्तर चित्त अर्थात् अरहत्तफल से युक्त पुरुष को अशैक्ष्य कहा जाता है। 'शैक्ष्य' का अर्थ है जिसे सीखना अभी बाकी है तथा 'अशैक्ष्य' का अर्थ है जिसने सब कुछ सीख लिया है अर्थात् इसे कुछ सीखना नहीं है। शैक्ष्य एवं अशैक्ष्य से भिन्न पुरुष कामावचर चित्त सम्पन्न, रूपावचर चित्त सम्पन्न तथा अरूपावचर चित्त सम्पन्न हैं, इन्हें ही 'नेवसेक्खनासेक्ख पुरुष' कहा जाता है।

अनियत पुग्गल

जिसकी गति एवं योनि निश्चित (या नियत) नहीं है अर्थात् भविष्य के सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है, वह अनियत पुरुष है। ग्रन्थ में कहा गया है कि पाँच आनन्तर्य कर्म करने वाले मिथ्या दृष्टि सम्पन्न पुरुष तथा आठ प्रकार के आर्य पुद्गलों को छोड़कर शेष अनियत पुरुष हैं। उनमें कामावचर पुरुष, रूपावचर पुरुष तथा अरूपावचर पुरुष हो सकते हैं। इनकी गति एवं योनि के बारे में अनिश्चितता होती है। टीकाकार ने आकाश में फेंके हुए दण्ड के पतन की उपमा से इस पुरुष को बताने का यत्न किया है। जिस प्रकार आकाश में फेंके हुए दण्ड का आदि भाग गिरेगा, मध्य भाग गिरेगा या अन्त भाग गिरेगा, यह अनिश्चित रहता है, उसी प्रकार यह पुरुष किस रूप में उत्पन्न होगा, यह अनिश्चित है। ऐसे पुरुष को 'अनियत पुरुष' कहा जाता है।

[31]

नियत पुग्गल

'नियत' का अर्थ है निश्चित। नियत पुग्गल से ऐसे पुरुष अभिप्रेत हैं जिनकी गति एवं योनि निश्चित है। ग्रन्थ में कहा गया है कि जो पुरुष आनन्तर्य कर्म करने वाले हैं एवं मिथ्या दृष्टियों से सम्पन्न हैं उनका नरक गमन निश्चित है। साथ ही जो आठ प्रकार के आर्य पुरुष हैं अर्थात् चार मार्गस्थ तथा चार फलस्थ या सोतापत्ति मग्ग एवं फल, सकदागामी मग्ग एवं फल, अनागामी मग्ग एवं फल तथा अरहत्त मग्ग तथा फल हैं, उनके द्वारा निर्वाण प्राप्त करना निश्चित है। इसलिए ये भी नियत पुरुष हैं।

आनन्तर्य कर्म का अर्थ है जो दूसरे जन्म में मुख्य रूप से फल देने वाले होते हैं। ये कर्म पाँच प्रकार के होते हैं, यथा – मातृघातक कर्म, पितृघातक कर्म, अर्हतघातक कर्म, लोहितोत्पादक कर्म तथा संघभेदक कर्म। इन कर्मों का विपाक अकुशल रूप में निश्चित है।

माता की हत्या करने वाली चेतना और पिता की हत्या करने वाली चेतना को 'मातृघातक' एवं 'पितृघातक' कर्म कहा जाता है। माता-पिता को जानबूझकर या अनजाने में मारने की इच्छा से जब हत्या की जाती है तो वह 'मातृ' एवं 'पितृ' घातक कर्म कहा जाता है। अर्हत का घात करने की चेतना को ही 'अर्हतघातक' कर्म कहा जाता है। भगवान बुद्ध के शरीर से लोहित-उत्पाद करने वाली चेतना को ही 'लोहितोत्पादक' कर्म कहते हैं। इसी प्रकार संघ में भेद पैदा करने वाली चेतना को 'संघभेदक' कर्म कहते हैं। एक सीमा में परस्पर मिलकर कर्म न करने देने वाली चेतना या एक सीमा में एक साथ दो भिक्षु-संघों की उपोसथ आदि कर्म करने के लिए प्रेरित करने वाली चेतना संघभेदक कर्म कही जाती है। इस प्रकार का आनन्तर्य कर्म जो पुरुष करेगा तो उसका फल निश्चित रूप से प्राप्त करेगा। जो मिथ्या दृष्टि से परिपूर्ण होगा वह संसार को नहीं समझ सकता है कि संसार शाश्वत है या अशाश्वत। यह भी नियत पुरुष का लक्षण है। कुशल कर्म करने से उत्तम गति को प्राप्त करना निश्चित है तथा अकुशल कर्म करने से हीन गति और योनि में जन्म लेना निश्चित है। यह बौद्धधर्म की परम्परा है।

अभब्बागमन पुग्गल

'अभब्बागमन' दो अवयवों से निष्पन्न है – अभब्ब तथा आगमन। 'अभब्ब' का अर्थ है असमर्थ तथा 'आगमन' का अर्थ है चरमलाभ। यह पुरुष निर्वाण

के चरमलाभ को प्राप्त करने में असमर्थ होता है क्योंकि यह अनेक प्रकार के आवरणों से ढका रहता है। वे कर्म आवरण, क्लेश आवरण तथा विपाक आवरण हैं। इसके साथ यह श्रद्धा से रहित, कुशल कर्म की इच्छा न करने वाला, दुष्प्रज्ञ तथा मूढ़ होता है। भगवान द्वारा प्रतिपादित मार्ग में प्रवेश करने में असमर्थ होता है। जब तक ये सब स्थिति बनी रहती है तब तक वह अभब्बागमन पुरुष कहा जाता है। इन सबके रहते हुए निर्वाण असम्भव है।

यहाँ पर 'कर्म आवरण' का अर्थ है पाँच आनन्तर्य कर्म। यथा – माता की हत्या करना, पिता की हत्या करना, अर्हत की हत्या करना, दुष्ट चित्त द्वारा तथागत के शरीर से रक्त निकालना तथा संघ में फूट पैदा करना। 'क्लेश आवरण' का अर्थ है नियत मिथ्या दृष्टि। मिथ्या दृष्टि तीन प्रकार की होती है – नास्तिक, अहेतुक और अक्रिया दृष्टि। नास्तिक दृष्टि के अन्तर्गत अन्तर्भव में कर्मों का विपाक नहीं होता है।[1] अहेतुक दृष्टि का अर्थ है जिनमें न हेतु और न फल हो।[2] अक्रिया दृष्टि का अर्थ न यह है और न वह है अर्थात् कुशल एवं अकुशल कर्म किए जाने पर भी किसी का कोई फल नहीं होता है।[3] इन दृष्टियों के अन्तर्गत अजितकेसकम्बलि नास्तिक दृष्टि का, मक्खलिगोसाल अहेतुक दृष्टि का और पूरणकस्सप अक्रिया दृष्टि का पुरुष है।

'विपाक आवरण' का अर्थ है अहेतुक-द्विहेतुक प्रतिसन्धि। इस प्रकार से अहेतुक और द्विहेतुक द्वारा प्रतिसन्धि ग्रहण करने वाले पुरुष विपाक आवरण से युक्त होते हैं।

भब्बागमन पुग्गल

यहाँ पर 'भब्ब' का अर्थ है समर्थ तथा 'आगमन' का अर्थ है चरमलक्ष्य अर्थात् जो पुरुष निर्वाण के चरमलक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ हो, उसे 'भब्बागमन पुरुष' कहा जाता है। इसके जीवन में निर्वाण सम्भव है। यह पुरुष किसी भी आवरण से युक्त नहीं होता है। उसे ऐसा ज्ञान होता है कि कैसा कर्म करूँगा तो कैसा फल मिलेगा। इस प्रकार जानकर बुरे कर्म नहीं करता है। इसका मुख्य उद्देश्य उच्च पद की प्राप्ति है अर्थात् निर्वाण की प्राप्ति है।

---

१. दी० नि० १, पृ० ४८

२. दी० नि० अट्ठ० १, पृ० १५०

३. दी० नि० १, पृ० ४५-४६

कुप्पधम्म पुग्गल

'कुप्प' का अर्थ अस्थिर एवं चंचल होता है अर्थात् यह पुरुष अस्थिर एवं चंचल होता है। यह पुरुष रूप तथा अरूप के साथ उत्पन्न होने वाले समापत्तियों का लाभ प्राप्त करता है परन्तु जैसी उसकी इच्छा होती है उस प्रकार वह नहीं प्राप्त कर पाता, किन्तु प्राप्त करने की सम्भावना बनी रहती है। यह पुरुष कामावचर लोक से उत्तीर्ण होकर जब रूपावचर लोक तथा अरूपावचर लोक में प्रवेश करता है तो वह आठ समापत्तियों का लाभ प्राप्त करता है – वितक्क विचार पीति सुखेकग्गता सहितं पठमज्झानं, विचार पीति सुखेकग्गता सहितं दुतियज्झानं, पीति सुखेकग्गता सहितं ततियज्झानं, सुखेकग्गता सहितं चतुत्थज्झानं, आकासानञ्चायतनं, विञ्ञाणानञ्चायतनं, आकिञ्चञ्ञायतनं, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं।

इन आठ समापत्तियों में रूपावचर के चार विपश्यना ध्यान तथा अरूपावचर के चार विपश्यना ध्यान सम्मिलित हैं। इन्हीं को समापत्ति कहा जाता है। साधक इन आठ समापत्तियों का एक-एक करके ध्यान करता है और आगे बढ़ता चला जाता है। इस प्रकार समापत्ति की आठ अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है, परन्तु यह अस्थिर रहता है क्योंकि इन अवस्थाओं में संयोजनों का प्रहाण नहीं कर पाता है, इसलिए इस प्रकार के पुरुष को 'कुप्पधम्म पुग्गल' कहा गया है।

परिहानधम्म पुग्गल

'परिहान' का अर्थ पतन या हानि को प्राप्त करना है। इससे एक प्रकार के पुरुष का बोध होता है जिसमें पतन की सम्भावना रहती है। ऐसी स्थिति आ सकती है कि वह समापत्तियों का लाभ प्राप्त कर सकता है, पर उसमें ऐसी भी सम्भावना बनी रहती है कि प्रमाद के कारण वह उन लाभों से वंचित रह सकता है। ग्रन्थ में ऐसे पुरुष के सम्बन्ध में तीन प्रकार के विशेषण पद कहे गये हैं[1] – न निकामलाभी, न अकिच्छलाभी तथा न अकसिरलाभी। 'निकाम' का अर्थ है इच्छानुसार। 'न' शब्द निषेधात्मक है इसलिए यह इच्छानुसार समापत्तियों को प्राप्त करने में असमर्थ होता है। 'अकिच्छ' का अर्थ है कष्ट रहित। सुगमतया यह समापत्तियों का लाभ नहीं प्राप्त कर सकता है। 'अकसिर' का अर्थ निर्विघ्न होता है। इसमें ऐसी क्षमता नहीं होती है कि वह समापत्तियों का लाभ निर्विघ्नता पूर्वक कर सके। इससे यह ध्वनित होता है कि यह पुरुष विघ्नों के साथ अनेक प्रकार का यत्न करके समापत्तियों का लाभ प्राप्त करता है।

---

१. पु० प०, पृ० ३१

पुनः इसमें तीन प्रकार की असमर्थताएं भी पायी जाती हैं।[1] वह यत्थिच्छकं नहीं होता है। 'यत्थिच्छकं' का अर्थ है जहाँ चाहे वहीं समाधि का लाभ हो जाय। साथ ही वह यदिच्छकं भी नहीं है। 'यदिच्छकं' का अर्थ है वह जब चाहे तब समाधि का लाभ कर सके। ऐसी भी क्षमता इसमें नहीं रहती है। वह यावतिच्छकं भी नहीं है। 'याव' का अर्थ है जब तक। 'न यावतिच्छकं' का अर्थ है – उसमें ऐसी भी क्षमता नहीं होती है कि वह जब तक चाहे तब तक समापत्तियों का लाभ कर सके। इसलिए जहाँ, जब एवं जब तक समाधि लाभ में इसकी असमर्थता होती है। इन परिस्थितियों को प्राप्त पुरुष समापत्तियों का लाभ तो अवश्य करता है, पर वहाँ सम्भावना बनी रहती है कि उन समापत्तियों के लाभ की स्थिति से उसका पतन भी हो सकता है। ऐसी मानसिक स्थिति से युक्त पुरुष को परिहानधम्म पुग्गल कहा गया है।

परिहान धर्म तीन प्रकार के बताए गए हैं[2] – कम्मारामता, भस्सारामता तथा निद्दारामता। वह विभिन्न कर्मों में लगे रहने के कारण 'कम्मारामता' कहा जाता है। निरर्थक वचनों में अनुराग होने के कारण वह 'भस्सारामता' है तथा निद्रा का परित्याग न कर पाने के कारण वह 'निद्दारामता' है। इसलिए इसे 'परिहान धर्म पुरुष' कहा गया है।

अपरिहानधम्म पुग्गल

'अपरिहान' का अर्थ है जो पतन या हानि को प्राप्त न हो। इससे ऐसे पुरुष का बोध होता है, जिसमें पतन की सम्भावना न रहे। यह पुरुष समापत्तियों का लाभ कर सकता है। इस प्रकार के पुरुष के सम्बन्ध में तीन प्रकार के पद कहे गए हैं[3]– निकामलाभी, अकिच्छलाभी तथा अकसिरलाभी। इसका अर्थ है इच्छानुसार, सुगमतयापूर्वक तथा निर्विघ्नता से समापत्तियों का लाभ कर सकता है। इसमें तीन प्रकार की समर्थताएं भी पायी जाती हैं। वे समर्थताएं यत्थिच्छकं, यदिच्छकं एवं यावतिच्छकं हैं।[4] इसका अर्थ है कि जहाँ चाहे, जब चाहे तथा जब तक चाहे तब तक समापत्तियों का लाभ कर सकता है।

अपरिहानधम्म छः प्रकार के होते हैं[5] – न कम्मारामता, न भस्सारामता, न निद्दारामता, न सङ्गणिकारामता, सोवचस्सता तथा कल्याणमित्तता। ऐसे पुरुष के

---

१. पु० प०, पृ० ३१
२. अ० नि० ३, पृ० २६३
३. पु० प०, पृ० ३२
४. वही
५. अ० नि० ३, पृ० ३०

सम्बन्ध में कहा गया है कि वह अनेक प्रकार के कर्मों में आसक्ति नहीं करता है, इसलिए वह 'न कम्मारामता' है। निरर्थक वचनों से विरत रहता है, इसलिए 'न भस्सारामता' है। निद्रा में रत न होने के कारण 'न निद्दारामता' है। संग्रह के कर्मों से विरत रहता है, इस प्रकार वह 'न सङ्गणिकारामता' है। सुन्दरवाणी का प्रयोग करता है, इसलिए उसे 'सोवचस्सता' कहा जाता है। सभी के प्रति कल्याण की भावना रखता है, इसलिए उसे 'कल्याणमित्तता' कहा जाता है।

चेतनाभब्ब पुग्गल

'चेतना' से यहाँ मनोबल, संचेतना, मानसिक दृढ़ता अभिप्रेत है। 'भब्ब' शब्द योग्य, सम्प्रयुक्त, समर्थ आदि अर्थों का द्योतक है। चेतनाभब्ब पुरुष से ऐसे पुरुष का द्योतन होता है, जो संचेतना से युक्त है। इसे रूप ध्यान तथा अरूप ध्यान दोनों प्राप्त रहते हैं। चार रूप ध्यानों को ही चार रूप समापत्ति और चार अरूप ध्यानों को चार अरूप समापत्ति कहते हैं। ये आठों समापत्तियां इसे प्राप्त रहती हैं, पर इसमें ऐसी क्षमता नहीं होती है कि इच्छानुसार, कष्टों से रहित तथा निर्विघ्नता पूर्वक इन्हें वह प्राप्त कर सके। साथ ही उसमें यह भी क्षमता नहीं होती है कि उसे जहाँ चाहे, जब चाहे तथा जब तक चाहे तब तक समापत्तियों का लाभ हो जाय। पर एक ही विशेषता इसमें है – दृढ़ मनोबल।[1] इसलिए जब वह मनोबल के साथ रहता है, तब उन समापत्तियों से च्युत नहीं होता एवं जब मनोबल से युक्त नहीं रहता है, तब उन समापत्तियों से च्युत हो जाता है। इसकी ऐसी चेतना से सम्प्रयुक्त होने की भावना ही 'चेतनाभब्बता' है। इसके कारण ही वह 'चेतनाभब्ब पुरुष' कहा जाता है।

'चेतना' वह है जो चित्त का अभिसंस्कार करती है। चेतना कुशल एवं अकुशल कर्मों में सक्रिय होकर सम्प्रयुक्त धर्मों को दुगुने उत्साह से प्रवृत्त करती है। जिस प्रकार कोई मालिक अपने अधीन काम करने वाले श्रमिकों के साथ स्वयं भी काम में लगकर उत्साह बढ़ाता है, उसी प्रकार यह चेतना भी है।

कुशल एवं अकुशल कायकर्म, वचीकर्म और मनोकर्म के उत्पाद में चेतना ही प्रधान कारण होती है। इसलिए भगवान बुद्ध ने कहा है – "चेतनाहं, भिक्खवे, कम्मं वदामि, चेतयित्वा कम्मं करोति कायेन वाचाय मनसा"।[2]

---

१. पु० प०, पृ० ३३

२. अ० सा०, पृ० ७३; अ० नि० ३, पृ० १२०

[36]

अनुरक्खणाभब्ब पुग्गल

'अनुरक्खण' का अर्थ है जागरूकता तथा 'भब्ब' का अर्थ है समर्थ, योग्य। अर्थात् जो अनुरक्षण समर्थ है वह 'अनुरक्खणाभब्ब पुग्गल' कहा जाता है। जो अनुपकारी धर्मों का परित्याग कर, उपकारी धर्मों का सेवन करता है, उसी को अनुरक्षण कहा जाता है।

यह पुरुष चार रूप ध्यान तथा चार अरूप ध्यान से युक्त होता है। उसे आठ समापत्तियों का लाभ तो अवश्य रहता है, पर इच्छानुसार, कष्ट रहित तथा निर्विघ्नतापूर्वक लाभ नहीं हो पाता है। साथ ही वह जहाँ कहीं, जब कभी तथा जितने समय तक न तो साधना में प्रविष्ट होता है और न ही उससे उठ ही पाता है, पर उसकी एक विशेषता यह है कि अनुरक्षण की क्षमता होने के कारण, जब उन समापत्तियों का अनुरक्षण करता है तो वह नष्ट नहीं होती हैं। जब अनुरक्षण नहीं करता है, तब नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार अनुरक्षण समर्थ होने के कारण ही उसे अनुरक्षण भव्य पुद्गल कहा गया है। समर्थ या भव्य पुरुष दो प्रकार का होता है[1]– चेतनाभब्ब तथा अनुरक्खणाभब्ब

इसके अन्तर्गत जो चेतनाभब्ब पुरुष है उसको यह ज्ञान नहीं रहता है कि कौन-सा धर्म ग्रहण करने योग्य है और कौन-सा धर्म ग्रहण करने योग्य नहीं है, परन्तु अनुरक्खणाभब्ब पुरुष को दोनों धर्मों का ज्ञान होता है। इसलिए जो ग्रहण करने योग्य है, उसे ग्रहण करता है और जो ग्रहण करने योग्य नहीं है, उसे ग्रहण नहीं करता है।

चेतनायुक्त और अनुरक्षणयुक्त पुरुषों को उदाहरण के द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है। किसी कृषक के दो बालक हैं। उनमें से एक रोगग्रस्त है और दूसरा रोगरहित। जो रोगग्रस्त है वह शीत, उष्ण और वर्षा को सहन नहीं कर सकता है और कहीं आ जा भी नहीं सकता है, परन्तु रोगरहित को इस प्रकार की बाधा नहीं रहती हैं। यह सब कुछ सहन कर सकता है। ऐसा भी सम्भव है कि व्यक्ति खेत में बीज बोते हैं, फसल उग आती है तथा दाना भी लग जाता है। इसके उपरान्त खेत की रक्षा की आवश्यकता होती है परन्तु रोगग्रस्त व्यक्ति अपने खेतों की रक्षा नहीं कर पाता क्योंकि वह चलने में असमर्थ होता है, इसलिए उन खेतों का अन्न पशु-पक्षी आदि नष्ट कर देते हैं। इसलिए वह बोया हुआ बीज भी नहीं प्राप्त कर पाता। रोगरहित व्यक्ति अपने खेतों की

---

१. प० प० अट्ठ० १, पृ० ४८

रक्षा कर सकता है और जितना चाहे उतना अन्न भी प्राप्त कर सकता है। इसलिए कहा जा सकता है कि रोगग्रस्त व्यक्ति 'चेतना सम्प्रयुक्त' तथा रोगरहित व्यक्ति 'अनुरक्षण सम्प्रयुक्त' है।

अकुप्पधम्म पुग्गल

'अकुप्पधम्म पुग्गल' वह है जो स्थिर एवं अचंचल हो अर्थात् इसे इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि इसका चित्त एकाग्र रहता है। यह पुरुष समापत्तियों का लाभ प्राप्त करता है। जिस प्रकार वह प्राप्त करना चाहता है वैसा वह प्राप्त करता है। इसमें उसे किसी प्रकार की बाधा नहीं होती है क्योंकि वह पांच संयोजनों का प्रहाण कर चुका होता है और अनागामी की अवस्था प्राप्त रहता है।[1] 'अनागामी' का अर्थ है कभी भी इस मनुष्य लोक में न आने वाला अर्थात् उसे संसार में जन्म लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वह केवल देवलोक में ही जन्म ग्रहण कर सकता है। उसने समापत्तियों का लाभ कर लिया है और आस्रवों का भी प्रहाण कर दिया है। इसका अर्थ यह है कि पुरुष सम्यक पथ पर आरूढ़ है। वह समाधि के द्वारा नीवरणों को समाप्त कर देता है और विपश्यना में पूर्णरूप से लग जाता है। यदि उसके सम्मुख किसी प्रकार की बाह्य बाधाएं भी आकर विवादित करने का यत्न करती हैं तो भी उसका ध्यान भग्न नहीं होता है। इस प्रकार का पुरुष अकुप्पधम्म वाला होता है।

दिट्ठिप्पत्त पुग्गल

'दिट्ठिप्पत्त' का अर्थ है दृष्टिप्राप्त। जिस पुरुष ने दृष्टि प्राप्त कर लिया है तथा चार आर्यसत्यों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वह 'दृष्टिप्राप्त पुरुष' है। चार आर्यसत्य का अर्थ है – दुःख आर्यसत्य, दुःखसमुदय आर्यसत्य, दुःखनिरोध आर्यसत्य तथा दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य।

'दुःख' का अर्थ है किसी वस्तु से लगाव होने पर उस वस्तु को प्राप्त करने की जो इच्छा है उसको न प्राप्त होने पर कष्ट का अनुभव। जन्म लेना भी दुःख है, वृद्ध अवस्था को प्राप्त होना भी दुःख है, रोग होना भी दुःख है, मरना भी दुःख है, किसी से सम्प्रयोग और वियोग भी दुःख है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान भी दुःख है। जो पुरुष इस दुःख को जानकर प्रज्ञा के द्वारा इसका साक्षात्कार कर लेता है, वह 'दृष्टिप्राप्त पुरुष' कहलाता है।

---

१. प० प० अट्ठ० १, पृ० ४७

महात्मा बुद्ध तथा अन्य भारतीय विद्वानों का कथन है कि सांसारिक सुखों को यथार्थ सुख समझना केवल अदूरदर्शिता है। सांसारिक सुख वास्तविक सुख नहीं है। वे क्षणिक सुख हैं। उनके नष्ट हो जाने पर दुःख ही होता है। ऐसे सुखों के साथ बराबर यह चिन्ता लगी रहती है कि कहीं वे नष्ट न हो जाएं। इस तरह के अनेक दुःखद परिणाम हैं, जिनके कारण सांसारिक सुख वास्तविक सुख नहीं समझे जा सकते हैं। वे तो आशंका और चिन्ता के मूल कारण हैं। प्रज्ञा के द्वारा इसको जानना आवश्यक है। तभी उसे दृष्टिप्राप्त पुरुष कहा जा सकता है।

'दुःखसमुदय' द्वितीय आर्यसत्य है। 'समुदय' का अर्थ है कारण। अतः दुःख का कारण है। बिना कारण के कार्य उत्पन्न नहीं होता है। जब दुःख कार्य है तब उसका कारण भी अवश्य होगा। इसमें तीन तृष्णाओं का उदय होता है – कामतण्हा अर्थात् विभिन्न प्रकार की इन्द्रियों से सम्बन्धित इच्छा, भवतण्हा अर्थात् जन्म सम्बन्धी तृष्णा, विभव तण्हा अर्थात् दूसरों की नाश सम्बन्धी तृण्णा। इन्हीं का समुदय होता है।

'दुःखनिरोध' का अर्थ है दुःखों का अन्त कर देना। संसार में दुःख के समुदय के साथ-साथ दुःख का निरोध भी होता है। इस प्रकार इसका निरोध करके ज्ञान प्राप्त कर लेना ही दृष्टिप्राप्त पुरुष कहा जाता है।

चतुर्थ आर्यसत्य 'दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा' है, जो निर्वाण प्राप्त करने के लिए एक मार्ग है। जिन कारणों के द्वारा दुःखों की उत्पत्ति होती है उनको नष्ट कर देने पर ही निर्वाण के मार्ग की प्राप्ति हो जाती है। इसे 'मध्यम मार्ग' भी कहते हैं जो आठ प्रकार के होते हैं – सम्यक-दृष्टि, सम्यक-संकल्प, सम्यक-वाणी, सम्यक-कर्मान्त, सम्यक-आजीव, सम्यक-व्यायाम, सम्यक-स्मृति और सम्यक-समाधि। जिसने इन मार्गों पर चलकर इनको अच्छी तरह समझ लिया है, वह 'दृष्टिप्राप्त पुरुष' कहा जाता है।

सद्धाविमुत्त पुग्गल

'सद्धा' का अर्थ है विश्वास तथा 'विमुत्त' का अर्थ है मुक्ति प्राप्त अर्थात् श्रद्धा द्वारा मुक्त पुरुष को सद्धाविमुक्त पुरुष कहा जाता है। जिसने चार आर्यसत्यों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तथागत द्वारा उपदिष्ट पथ पर जिसने विचरण कर लिया है, प्रज्ञा के आधार पर जिसके कुछ आस्रव क्षीण हो चुके हैं, ऐसा पुरुष श्रद्धाविमुक्त है। यह पुरुष दृष्टिप्राप्त पुरुष जैसे ही है, पर

दोनों में पार्थक्य रेखा भी है। पार्थक्य प्राप्ति की दिशा में दृष्टिप्राप्त पुरुष आध्यात्मिक उत्थान के लाभ के लिए यत्न करते हुए क्लेशों का विखम्भन करता है तो अल्प दुःख तथा अल्प संताप के साथ करता है, पर श्रद्धाविमुक्त के मार्ग में उपलब्धि प्राप्त करने के यत्न में बाधाएं बहुत आती हैं। दृष्टिप्राप्त पुरुष की विपश्यना बलवती होती है तथा सद्धाविमुत्त की विपश्यना दुर्बल होती है।

धम्मानुसारी पुग्गल

यहाँ धर्म का अनुसरण करने वाला पुरुष धम्मानुसारी है। 'धर्म' शब्द यहाँ प्राविधिक अर्थ में प्रयुक्त देखा जाता है। यह लोकोत्तर मार्ग का अधिवचन है, जो सोतापत्ति मग्ग को प्राप्त कर लेता है एवं उसकी प्राप्ति के अनन्तर सोतापत्ति फल का साक्षात्कार करने के लिए प्रतिपन्न है। इसमें प्रज्ञा बलवती होती है एवं वही अग्रसर होती है। यह पुरुष सोतापत्ति मार्गस्थ अवश्य है पर सोतापत्ति फल की प्राप्ति नहीं हुई रहती है। उसकी प्राप्ति के लिए वह प्रतिपन्न है। अतः सोतापत्ति मार्गस्थ तथा सोतापत्ति फल के लिए यत्नवान पुरुष धम्मानुसारी है। सोतापत्तिफल प्राप्त करने में लगे हुए जिस पुरुष का प्रज्ञेन्द्रिय प्रबल होता है और प्रज्ञा को आगे करके आर्यमार्ग की भावना करता है, उसे 'धर्मानुसारी पुरुष' कहते हैं।[१]

सद्धानुसारी पुग्गल

'सद्धानुसारी' से ऐसा पुरुष अभिप्रेत है, जिसकी श्रद्धा बलवती होती है, जो श्रद्धा को ही अग्रमान कर, उनका अनुसरण करते हुए लोकोत्तर भूमि में प्रविष्ट है। जो उत्तरोत्तर विकास के लिए यत्नवान होता है। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह सोतापत्ति मग्ग की स्थिति प्राप्त किए हुए रहता है तथा सोतापत्ति फल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न होता है। इसमें विशेषता यह देखी जाती है कि इसके पक्ष में श्रद्धा बलवती होती है और वही अग्रगमन में सहायक होती है। इसे सोतापत्ति फल की स्थिति प्राप्त नहीं रहती है, पर उसके लिए वह पूर्णरूप से यत्नवान रहता है। सोतापत्ति फल प्राप्त करने में लगे हुए जिस पुरुष का श्रद्धेन्द्रिय प्रबल होता है और श्रद्धा को आगे करके आर्यमार्ग की भावना करता है, उसे 'श्रद्धानुसारी पुरुष' कहते हैं।[२]

---

१. सं० नि० ४, पृ० १७७
२. वही

तेविज्ज पुग्गल

तीन प्रकार की विद्या से युक्त पुरुष को 'तेविज्ज' कहते हैं। तीन विद्याएं हैं[1] – पूर्वनिवास ज्ञान, दिव्यचक्षु ज्ञान तथा अर्हतफल ज्ञान।

शील, समाधि तथा प्रज्ञा को भी तीन विद्या कहते हैं। ये विद्याएं क्या हैं ? जब बौद्ध साधना पद्धति के अनुसार रूप एवं अरूप समाधियों का पूर्ण अभ्यास हो जाता है, तब उसके अनन्तर कुछ विशेष ज्ञान का लाभ होता है, उसे 'अभिज्ञा' कहते हैं। दिव्यचक्षु, पूर्वनिवास अनुस्मरण अभिज्ञा के अन्तर्गत आता है अथवा बुद्ध को बुद्धत्व लाभ के पूर्व भी इन ज्ञानों का अधिगम हुआ था। अर्हतमग्ग के उपरान्त अर्हतफल की प्राप्ति 'अर्हतफल ज्ञान' है।

'पूर्वनिवास ज्ञान' के सम्बन्ध में कहा गया है कि इसके द्वारा अनन्त कल्पों तक पूर्व की स्थिति का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। वह पुरुष इसके पूर्व किन-किन गति एवं योनियों में था तथा किस-किस वर्ण, आकार, स्वभाव में सम्पन्न था, इसका पूर्ण विवरण ज्ञात हो जाता है। भगवान बुद्ध के जीवन प्रसंग में ऐसा हुआ था। उन्हें बोधिलाभ से पूर्व रात्रि के प्रथम प्रहर में पूर्वनिवास ज्ञान की प्राप्ति हुई। दीघनिकाय के विवरण से यह सत्यापित है[2] – "चित्त के परिशुद्ध, मृदु, कामलायक, स्थिर, पूर्व जन्मों की स्मृति ज्ञान के लिए चित्त को मैंने झुकाया। फिर मैं पूर्वकृत अनेक पूर्व जन्मों को स्मरण करने लगा – जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी ... आकार सहित, पूर्वकृत अनेक पूर्व निवासों को स्मरण करने लगा। इस प्रकार प्रमाद रहित, तत्पर हो आत्म संयम युक्त विहरते हुए मुझे रात्रि के प्रथम याम में यह विद्या प्राप्त हुई, जिसके कारण अविधा दूर हो गयी और विद्या उत्पन्न हुई।"

'दिव्यचक्षु ज्ञान' का अर्थ है एक अपूर्व दर्शन शक्ति से सम्पन्न होना। यह एक प्रकार का ऋद्धिमय ज्ञान है। इसके द्वारा दृश्य आलम्बन के देखने में देश और कालगत बाधा नहीं रहती है। दूरस्थ तथा निकटस्थ सभी आलम्बनों को वह ऐसे ही देखता है जैसे कोई हस्तगत रूप हो अथवा मनुष्य लोक, देवलोक, ब्रह्मलोक आदि की बातों को वह सुगमतया पूर्वक देख लेता है। इतना ही नहीं, वह विभिन्न प्राणियों के कुशल एवं अकुशल कर्म विपाक एवं गतियोनी की प्रक्रिया को भी देख लेता है।

---

१. प० प० अट्ठ० १, पृ० ५४

२. दी० नि० १, पृ० ७१-७२

'अर्हत फल ज्ञान' से अर्हत फल की स्थिति का ज्ञान अभिप्रेत है। कहा जाता है कि साधक रूपराग, अरूपराग, मान, उद्धच्च तथा अविज्जा नामक अन्तिम पाँच संयोजनों के समूल नाश पूर्वक़ अर्हत्व की प्राप्ति करता है। मार्ग क्षण में वह उसे नष्ट करता है तथा फल क्षण में वह जान लेता है कि वे नष्ट हो गए। इस स्थिति में अर्हत हो जाता है। चार आर्यसत्यों को पूर्ण रूप से जान लेता है। उन्हें यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन-मरण परम्परा क्षीण हो गयी है और अब यहाँ आना नहीं है। ये समस्त ज्ञान अर्हत फल की स्थिति में होते हैं। ऐसे ज्ञानों की अवस्था को 'अर्हत फल ज्ञान' कहते हैं।

छळभिञ्ञ पुग्गल

छः अभिज्ञाओं से युक्त पुरुष को 'छळभिञ्ञ पुग्गल' कहते हैं। समाधि प्राबल्य के कारण शक्ति तीव्र हो जाने से विशेष रूप से जानने वाला रूपावचर पंचम ध्यानगत ज्ञान 'अभिज्ञा' है। अभिज्ञा में 'अभि' विशेष का वाचक है 'ज्ञा' का अर्थ ज्ञान होता है। जिस पुरुष ने अभी पारमिताओं की पूर्ति नहीं की है, उसे अभिज्ञा की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम पृथ्वी कसिण तथा आपो कसिण आदि आलम्बनों का आलम्बन करके अनेक बार ध्यानों का समावर्जन करना पड़ता है। ऐसा करने पर ही अभिज्ञा की प्राप्ति सम्भव हो सकती है। जिन पुरुषों ने पारमिताओं को प्राप्त कर लिया है, उन्हें पूर्वोक्त विधि से भावना न करने पर भी मार्ग की प्राप्ति मात्र से ही अभिज्ञा की प्राप्ति हो जाती है। अभिज्ञा छः प्रकार की होती है– इद्धिविधा, दिब्बसोत, परचेतोञ्ञाण, पुब्बेनिवासञ्ञाण,दिब्बचक्खु तथा आसवक्खयञ्ञाण।

जो सिद्ध होती है वह 'इद्धि' है। जिस ज्ञान की इद्धि में प्रकार होते हैं वह 'इद्धिविधा' होता है। अनेक प्रकार की इद्धियों से सम्पन्न ज्ञान को 'इद्धिविधा' कहा जाता है। इसको प्राप्त करने की इच्छा वाले प्रारम्भिक साधक को अवदात कसिण तथा आठों कसिणों में आठ-आठ समापत्तियों को उत्पन्न कर कसिण के अनुलोम, प्रतिलोम, अनुलोम-प्रतिलोम से, ध्यान के अनुलोम, प्रतिलोम, अनुलोम-प्रतिलोम से, ध्यान को पार करने से, कसिण को पार करने से, ध्यान और कसिण को पार करने से, अंग के व्यवस्थापन से, आलम्बन के व्यवस्थापन से, अंग और आलम्बन के व्यवस्थापन इत्यादि चौदह आकारों से चित्त का भली-भाँति से दमन करना पड़ता है। चित्त का दमन हो जाने पर चतुर्थ ध्यान प्राप्त करने के पश्चात साधक एकाग्र, शुद्ध, क्लेशों से रहित, निश्चल चित्त वाला हो जाता है। तब वह इद्धिविधा को प्राप्त करता है और विभिन्न प्रकार की इद्धियों

का अनुभव करने लग जाता है जैसे अधिष्ठान इद्धि, विकुर्वण इद्धि, मनोमय इद्धि, ज्ञानविस्फार इद्धि, समाधिविस्फार इद्धि, आर्य इद्धि, कर्मविपाकज इद्धि, पुण्यवान इद्धि, विद्यामय इद्धि तथा उन-उन स्थानों पर सम्यक प्रयोग के कारण सिद्धि होने के अर्थ में इद्धि। इन इद्धियों को प्राप्तकर साधक अनेक प्रकार का आलौकिक कार्य करता है। यदि वह चाहे तो चाँद और सूर्य को भी इस शरीर से स्पर्श कर सकता है।

देवभूमि में होने वाले श्रोत को 'दिब्बसोत' कहते हैं। चतुर्थ ध्यान से उठकर जब साधक दिब्बसोत ज्ञान की प्राप्ति के लिए अनेक बार चित्त को लगाता है, तब वह अपने आलौकिक शुद्ध दिव्य श्रोत से दोनों प्रकार के मनुष्यों और देवताओं के भी शब्द को सुनने में संमर्थ हो जाता है।

अपने चित्त से दूसरे पुरुष के चित्त को जानने के ज्ञान को 'परचेतोञ्ञाण' कहते हैं। यह सब साधना के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है। पूर्वजन्मों की बातों के ज्ञान को 'पुब्बेनिवासञ्ञाण' कहते हैं। अनेक पूर्व भवों में जिन-जिन योनियों में निवास किया गया है उन्हें 'पूर्वनिवास' कहते हैं। इसमें पुरुष अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करता है, जैसे कि एक जन्म को भी, दो जन्म को भी। इसी प्रकार आकार और उद्देश्य सहित अनेक प्रकार के पूर्व निवासों का स्मरण करता हुआ इनका साक्षात्कार कर लेता है। 'दिब्बचक्खु' से युक्त पुरुष अत्यन्त दूरस्थ एवं अत्यन्त सूक्ष्म रूपों को भी देखने में समर्थ होता है। यह ऐसा साधक होता है जो आलोक फैलाकर नरक एवं स्वर्ग के सभी जीवों के कर्मों तथा उनके विपाकों को जान लेता है।

आस्रव धर्मों का क्षय करने वाले अर्हत-मार्गज्ञान को 'आसवक्खयञ्ञाण' कहते हैं। यह अभिज्ञा लोकोत्तर की होती है। शेष पाँच लौकिक होती है क्योंकि प्रथम पाँच में आस्रवों का क्षय नहीं हो पाता है इसलिए लौकिक है और अन्तिम अभिज्ञा में आस्रवों का क्षय हो जाता है इसलिए लोकोत्तर कहा जाता है। लोकोत्तर की अवस्था में ही आस्रवों का क्षय होता है और निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

गोत्रभू पुग्गल

एक-एक जाति परम्परा से निबद्ध संसार रेखा को 'गोत्र' कहते हैं। गोत्र के दो प्रकार हैं– आर्यगोत्र और अनार्यगोत्र। 'अनार्यगोत्र' की परिसमाप्ति पर 'आर्यगोत्र' में प्रविष्ट पुरुष को 'गोत्रभू' कहते हैं। यहाँ जिन धर्मों के समानान्तर आर्यधर्म की अवक्रान्ति या उदय होता है, उस आर्य से युक्त पुरुष को 'गोत्रभू' कहा जा सकता है अर्थात् जिस पुरुष का अनार्यगोत्र समाप्त हो गया है, उसे 'गोत्र' कहा जाता है।

इस प्रसंग में देखा जाता है कि कामावचर भूमि, रूपावचर भूमि, अरूपावचर भूमि का अभिभवन कर लोकोत्तर भूमि में प्रविष्ट पुरुष को 'गोत्रभू' कहा जा सकता है। वह लोकोत्तर भूमि में प्रविष्ट हो क्रमशः सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी तथा अर्हत स्थितियों को प्राप्त किए रहता है तथा अनुक्रमिक विकास करता है तथा निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

'गोत्रभू' शब्द आर्यगोत्र के लिए आया हुआ है, जो एक क्रमानुसार है। जब पुरुष आध्यात्मिक दृष्टि से अपना उद्धार करता है तो वह कामादि भूमि को छोड़कर आर्य भूमि में चला जाता है। जो पुरुष आर्य भूमि में पहुँच जाता है तो उसका एक ही उद्देश्य होता है– निर्वाण प्राप्त करना। गोत्रभू पुरुष का चित्त जब निर्वाण की अन्तिम अवस्था में पहुँच जाता है तो उस क्षण उसका एक दूसरा नाम दिया जाता है– 'वोदान (व्यवदान)'[१]

गोत्रभू पुरुष निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है, किन्तु मोह का प्रहाण नहीं कर सकता है, जैसे एक चक्षुष्मान पुरुष नक्षत्रयोग को जानने के लिए रात्रि में घर से बाहर निकलकर चन्द्रमा को देखता है, किन्तु चन्द्रमा घने बादलों से ढके होने के कारण वह उसे देख नहीं पाता, तब उसी समय एक हवा आकर घने बादलों को, दूसरी हवा मध्यम बादलों को तथा तीसरी हवा सूक्ष्म बादलों को भी उड़ा देती है। अब वह पुरुष चन्द्रमा को स्पष्ट रूप से देखने लग जाएगा।

यहाँ तीन प्रकार के बादलों के सदृश स्थूल, मध्यम और सूक्ष्म मोह रूपी अन्धकार है। तीन हवाओं के सदृश तीन (परिकर्म, उपचार एवं अनुलोम) अनुलोम चित्त है। चक्षुष्मान पुरुष के सदृश गोत्रभू ज्ञान है। चन्द्रमा के सदृश निर्वाण है। बादलों से रहित आकाश में उस पुरुष द्वारा विशुद्ध चन्द्र देखे जाने के सदृश सत्य (निर्वाण) को ढकने वाला मोहरूपी अन्धकार के दूर हो जाने पर वह गोत्रभू ज्ञान द्वारा विशुद्ध निर्वाण देखता है।

जिस प्रकार तीन हवाएं चन्द्रमा को ढकने वाले बादलों को ही उड़ा सकती हैं, चन्द्रमा को नहीं देख सकतीं, ऐसे ही अनुलोम ज्ञान मोह को ही नष्ट कर सकता है, निर्वाण को नहीं देख सकता। जैसे वह पुरुष चन्द्रमा को ही देख सकता है, बादलों को नहीं उड़ा सकता, ऐसे ही गोत्रभू ज्ञान निर्वाण को ही देख पाता है परन्तु क्लेश रूपी अन्धकार को नष्ट करने में समर्थ नहीं है।

समसीसी पुग्गल

'समसीसी' शब्द दो पदों से युक्त है सम तथा सीसी। 'सम' का अर्थ है एक स्थिति, एक ही क्षण एवं एक ही अवस्था। 'सीस' शब्द का अर्थ प्रबल, परम रूप कहा जा सकता है। जब एक ही क्षण में क्लेशों के प्रहाण पूर्वक निर्वाण का

---

१. क० आ० फि०, पृ० ६८

लाभ तथा जीवन का क्षय दोनों होता है तब इसे 'समसीस भाव' कहा जाता है। जो इस स्थिति को प्राप्त करने वाला पुरुष है उसको 'समसीसी' कहते हैं। इससे यह फलित होता है कि समसीसी ऐसा पुरुष है जिसके क्लेशों या आस्रवों का परियादान या जीवन का परियादान या समाप्ति एक ही क्षण में होता है।[1] अट्ठकथाकार ने तीन प्रकार के सीस का वर्णन किया है[2] – इरियापथ-समसीसी, रोग-समसीसी और जीवित-समसीसी।

'इरियापथ' का अर्थ है चार प्रकार के काय संस्कार, जिन्हें उठना, बैठना, स्थित रहना एवं पड़े रहना कहा जा सकता है। इस प्रकार की परम्परा है कि भिक्षु अपने क्लेशों के निवारण के लिए चंक्रमण के रूप में इरियापथ पूर्ण करता है। जिस समय इसका चंक्रमण चलता रहता है उसी समय संवेदनाओं को देखते हुए, विपश्यना की वृद्धि कर, अनित्य बोध की पुष्टि करते हुए, क्लेशों के विनाश पूर्वक परिनिर्वाण की प्राप्ति हो जाती है। इसे 'इरियापथ-समसीसी' कहते हैं। इसके उदाहरण में 'कोटपब्बतविहारवासी तिस्सत्थेर' की उपमा दी जाती है। कहा जाता है कि वे बैठे हुए स्थिति में विपश्यना का अनुभव करते हुए परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।[3]

'रोग-समसीसी' से ऐसे पुरुष अभिप्रेत हैं जो रूग्ण हैं। वह इसके प्रति ही अनित्य, दुःख और अनात्म भाव को जानकर विपश्यना की वृद्धि कर परिनिर्वाण की प्राप्ति करता है। ऐसा पुरुष 'रोग-समसीसी' है।[3]

'जीवित' का अर्थ है जीवितिन्द्रिय । इस प्रसंग में तेरह सीसों का वर्णन है[3] – 'पलिबोधसीसञ्च तण्हा, बन्धनसीसञ्च मानो, परामाससीसञ्च दिट्ठि, विक्खेपसीसञ्च उद्धच्चं, किलेससीसञ्च अविज्जा, अधिमोक्खसीसञ्च सद्धा, पग्गहसीसञ्च विरियं, उपट्ठानसीसञ्च सति, अविक्खेपसीसञ्च समाधि, दस्सनसीसञ्च पञ्ञा, पवत्तसीसञ्च जीवितिन्द्रियं, गोचरसीसञ्च विमोक्खो, सङ्खारसीसञ्च निरोधो'ति।

जब जीवितिन्द्रिय किसी प्रकार की अविद्यामूलक चित्त उत्पन्न नहीं कर सकती है, एवं उसी क्षण परिनिर्वाण की ही प्राप्ति होती है तो उसे 'जीवित-समसीसी' कहते हैं।

यहाँ पर समसीसी के अन्तर्गत 'क्लेश-सीस' तथा 'प्रवृत्ति-सीस' दो सीस हैं। चित्तमल को 'क्लेश' कहते हैं। प्रवृत्ति चित्त को 'जीवितिन्द्रिय' कहते हैं। अविद्या

---

१. पु० प०, पृ० ३७
२-२ प० प० अट्ठ० १, पृ० ५१-५२
३. प० प० अट्ठ० १, पृ० ५२

को उत्पन्न करने वाला चित्त 'क्लेश सीस' है। प्रवृत्ति को बनाए रखने वाला चित्त जीवितिन्द्रिय है। जब दोनों सीस एक क्षण में तथा एक ही बार में नष्ट हो जाते हैं तो उसे 'जीवित-समसीसी' कहते हैं।

पटिपन्नक पुग्गल

'पटिपन्न' का अर्थ है आरूढ़। विशेष रूप से आर्य मार्ग पर आरूढ़ पुरुष ही इससे अभिप्रेत है। आर्य मार्ग चार हैं– सोतापत्ति मग्ग, सकदागामी मग्ग, अनागामी मग्ग, तथा अरहत्त मग्ग। इन मार्गों पर प्रतिपन्न पुरुष ही 'पटिपन्नक' है। इससे स्पष्ट है कि जिसने प्रथम तीन संयोजनों अर्थात् सक्कायदिट्ठि, विचिकिच्छा तथा सीलब्बतपरामास को नष्ट कर दिया है, वह पुरुष 'सोतापत्ति मग्ग' में प्रतिपन्न है। जिसने कामराग तथा पटिघ नामक संयोजनों को दुर्बल कर दिया है, वह पुरुष 'सकदागामी मग्ग' में प्रतिपन्न है। जिसे उन दो दुर्बल संयोजनों को नष्ट कर दिया है, वह पुरुष 'अनागामी मग्ग' में प्रतिपन्न है और जिसने अवशेष पाँच संयोजनों अर्थात् रूपराग, अरूपराग, मान, उद्धच्च तथा अविज्जा को नष्ट कर दिया है, वह 'अरहत्त मग्ग' में प्रतिपन्न है। ऐसे मार्गस्थ पुरुष ही 'पटिपन्नक पुग्गल' हैं–"चत्तारो मग्गसमङ्गिनो पुग्गला पटिपन्नका"।[१]

फलठित पुग्गल

'फलठित पुग्गल' का अर्थ है फल की स्थिति को प्राप्त पुरुष। यहाँ फल से चार प्रकार के आर्यफल अभिप्रेत हैं– सोतापत्ति फल, सकदागामी फल, अनागामी फल तथा अर्हत फल।

इसका वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि फल में स्थित पुरुष वह है जो फल प्राप्ति के लाभ से युक्त है। ये स्थितियाँ संयोजनों के अनुक्रमिक प्रहाण एवं उनके ज्ञान से प्राप्त होती हैं। प्रथम तीन संयोजनों के प्रहाण एवं उनके ज्ञान से 'सोतापत्ति फल' की स्थिति प्राप्त होती है। कामराग तथा पटिघ के दुर्बलीकरण एवं उनके ज्ञान से 'सकदागामी फल' की स्थिति प्राप्त होती है। इन दुर्बलीकरण के विनाश एवं उनके ज्ञान से 'अनागामी फल' की स्थिति प्राप्त होती है। अवशेष संयोजनों के प्रहाण एवं उनके ज्ञान से 'अरहत्त फल' की स्थिति प्राप्त होती है। इस प्रकार जो पुरुष इन चार फलों की स्थितियों को प्राप्त किया हुआ है वह 'फलठित पुग्गल' है।

---

१. पु० प०, पृ० ३७

ठितकप्पी पुग्गल

'ठित' का अर्थ स्थित है। 'कप्प' शब्द नियतकाल या निश्चित बेला का अधिवचन है। जिसका कल्प स्थित या जो कल्प को स्थित करने में समर्थ हो, वही 'ठितकप्पी' है। यह शब्द एक विशेष प्रकार के पुरुषों के लिए प्रयुक्त है। इसके अन्तर्गत सभी मार्गस्थ पुरुष अभिप्रेत हैं तथा जो सोतापत्ति फल की प्राप्ति के लिए यत्नवान है। इसलिए कहा गया है–"अयञ्च पुग्गलो सोतापत्ति-फलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो"।[1]

सोतापत्ति फल की प्राप्ति के लिए एक निश्चित अवधि होती है। वह अवधि यह है कि तीन संयोजन नष्ट कर दिया जाए और यह भी जान लिया जाय कि संयोजन नष्ट हो गए। यह उपलब्धि जब तक नहीं हो जाती, तब तक उसकी अवधि नष्ट नहीं होती है। इसलिए इसे 'ठितकप्पी' कहा जाता है। यह सभी मार्गस्थ पुरुषों का एक प्राविधिक नाम है।[2]

इस प्रसंग में यह दर्शनीय है कि यह मार्गस्थ पुरुष सोतापत्ति फल की स्थिति में कैसे जाता है ? उसकी एक विधा है। जिस क्षण में मार्ग चित्त की उत्पत्ति होती है, उस समय चित्त भवंग से चलकर मनोद्वारावज्जन तक जाता है। तब चार जवन की उत्पत्ति होती है– परिकम्म, उपचार, अनुलोम और गोत्रभू। अर्पणा का उत्पाद करने वाला चित्त 'परिकम्म' कहलाता है। 'अर्पणा' एक वितर्क का नाम है अर्थात् सम्प्रयुक्त चित्त को आलम्बन में अभिनिरोपित करने वाला वितर्क ही 'अर्पणा' है। जो चित्त अर्पणा के समीप उत्पन्न होता है उसे 'उपचार' कहते हैं। जो चित्त 'परिकम्म' एवं 'अर्पणा' के अनुकूल होता है, वह 'अनुलोम चित्त' कहलाता है। पृथग्जन गोत्र का अभिभवन करने वाला चित्त 'गोत्रभू चित्त' कहलाता है। यह मार्ग के निकट पहुँच जाता है और जवन की स्थिति आ जाती है। इसमें एक मार्ग, दो फल और पाँच पञ्चवेक्खण ज्ञान प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही वह अपने पद पर स्थित हो जाता है। इसी को कल्प कहते हैं। चित्त का एक क्षण से दूसरे क्षण में जाना ही कल्प कहलाता है। उदाहरण द्वारा इसे इस प्रकार समझा जा सकता है– सोतापत्ति-मग्ग-समग्गी पुरुष के ऊपर एक बहुत बड़ी-सी चट्टान तीन सबल रस्सियों से बंधी हो। यदि एक रस्सी को काटते हैं तो दो रस्सियां शेष रहती हैं। उनमें से एक को और काट दें तो एक और शेष रहती है। यदि उसको भी काट दें तो वह उससे मुक्त हो जाता है अर्थात् वह स्थित हो जाता है। जिसने संयोजनों का प्रहाण किया है एवं उनके नष्ट होने के ज्ञान के लिए प्रतिपन्न है वे 'ठितकप्पी' हैं।

---

१. पु० प०, पृ० ३७

२. 'सब्बे पि मग्गसमङ्गिनो पुग्गला ठितकप्पिनो'। – पु० प०, पृ० ३८

भयूपरत पुग्गल

भयूपरत शब्द 'भय' एवं 'उपरत' दो पदों से निष्पन्न है। भय से उपरत पुरुष को ही 'भयूपरत' कहते हैं। 'उपरत' का अर्थ है घिरा हुआ। इस प्रकार भय से आक्रान्त पुरुष को 'भयूपरत पुग्गल' कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ में कहा गया है कि सात प्रकार के सेक्ख पुरुष तथा शीलवान पुरुष ही भयूपरत पुरुष हैं। इसका कारण क्या है ? सेक्ख पुरुष भव परम्परा से भयभीत होकर पाप कर्म नहीं करते हैं। वस्तुतः भय चार प्रकार के होते हैं[1]– दुर्गति भय, संसार वृत्त में आने का भय, क्लेश भय तथा निन्दा भय।

इन चार भयों से भयभीत होकर पापकर्म न करने के कारण 'भयूपरत पुग्गल' कहे जाते हैं। इनमें अपाय या निम्नकोटि के योनि को प्राप्त करने एवं उनकी दुर्गति से भयभीत होने को 'दुर्गति भय' कहते हैं। यह संसार आदि अन्तरहित है। इसमें पुनः पुनः जन्म लेना, मरना आदि पड़ता है इसलिए इसे 'वृत्त भय' या 'मार्ग भय' कहते हैं। सभी अकुशल धर्मों को 'क्लेश भय' कहते हैं। निन्दा को उपवाद भय कहते हैं। इन भयों से भयभीत होकर पापकर्म नहीं करता है। इनमें सोतापन्न, सकदागामी तथा अनागामी दुर्गति भय से मुक्त हुए रहते हैं। वे केवल अन्य तीन भयों से भयभीत होकर पापकर्म नहीं करते हैं। मार्गस्थ सेक्ख भी संसार में आगमन की दृष्टि से, भय से मुक्त नहीं रहता । इसलिए उसे 'भयूपरत पुरुष' कहते हैं।

अभयूपरत पुग्गल

जो भय से रहित हो, वह 'अभयूपरत पुरुष' कहा जाता है। अर्हत ही एक ऐसा पुरुष है जो भय से रहित होता है। इसे असेक्ख की संज्ञा दी जाती है। असेक्ख का अर्थ है जिसे कुछ नहीं सीखना है अर्थात् वह सब कुछ सीख चुका होता है।

अर्हत फल को ही असेक्ख कहा जाता है। अर्हत मार्ग की अवस्था में पांच संयोजनों अर्थात् रूपराग, अरूपराग, मान, उद्धच्च एवं अविज्जा को नष्ट कर देता है, पर इसका साक्षात्कार नहीं कर पाता है। जब इसका साक्षात्कार कर लेता है तो वह अर्हत फल की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था को प्राप्त किए हुए पुरुष को किसी प्रकार का भय नहीं रहता है। इसलिए उसे 'अभयूपरत पुग्गल' कहा जाता है।

---

१. प० प० अट्ठ० १, पृ० ४६

सत्तक्खत्तुपरम पुग्गल

यहाँ पर 'सत्तक्खत्तुपरम' का अर्थ है अधिक से अधिक सात बार जन्म लेने वाला। ऐसा पुरुष देवलोक तथा मनुष्य लोक में जन्म ग्रहण कर निर्वाण प्राप्त करता है। यह पुरुष लोकिय अवस्था का प्रहाण करके लोकोत्तर अवस्था में पहुँचकर तीन संयोजनों अर्थात् सक्कायदिट्ठि, विचिकिच्छा तथा सीलब्बतपरामास का प्रहाण कर सोतापन्न की स्थिति प्राप्त कर लेता है।[1] इस प्रकार इसे सात बार से अधिक जन्म लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। सात बार प्रतिसन्धि होने के अनन्तर वह एकान्त रूप में अर्हत होता है। उसका आठवां प्रतिसन्धि या आठवां भव कथमपि नहीं हो सकता है।[2] अभिधम्मत्थसंगहो में भी कहा गया है –'' सत्तक्खत्तुं सत्तसु वारेसु कामसुगतियं पटिसन्धिग्गहणं परमं एतस्सा ति 'सत्तक्खत्तुपरमो' न पन अट्ठमादिकामभवगामीत्यधिप्पायो''।[3]

कोलङ्कोल पुग्गल

सत्तक्खत्तु का दूसरा नाम 'कोलङ्कोल' है। 'कोलङ्कोल' का अर्थ है एक कुल से दूसरे कुल में जाना, ''कुलतो कुलं गच्छतीति कोलङ्कोलो'' अर्थात् एक कुल से दूसरे कुल में प्रतिसन्धि लेकर जाने वाला पुरुष 'कोलङ्कोल सोतापन्न' कहलाता है।[4] यह पुरुष भी सत्तक्खत्तुपरम की तरह ही तीन संयोजनों का प्रहाण करके ही 'कोलङ्कोल सोतापन्न पुरुष' होता है। यह भी अपाय भूमि में जन्म ग्रहण नहीं कर सकता है क्योंकि यह सम्बोधि परायण होता है। यह केवल दो या तीन कुल तक ही जन्म ग्रहण कर सकता है, चौथे कुल में प्रवेश नहीं कर सकता है। यह अधिक से अधिक छः बार प्रतिसन्धि ग्रहण कर सकता है।[5] यह सोतापत्ति फल की स्थिति प्राप्त किए हुए रहता है इसलिए निम्न कुल में जन्म ग्रहण नहीं करता है।[6]

एकबीजी पुग्गल

यह पुरुष मनुष्य लोक में केवल एक बार उत्पन्न होकर निर्वाण प्राप्त कर लेता है। यह तीन संयोजनों का प्रहाण कर सोतापन्न होता है। सोतापन्न का

---

१. पु० प०, पृ० ४४
२. विभ०, पृ० ३६६
३. अभि० स०, पृ० २६०
४. सं० नि० ४, पृ० १७७
५. प० प० अट्ठ० १, पृ० ६१
६. वही

'एक प्रतिसन्धि' नामक भव बीज होता है, इसलिए उसे 'एकबीजी' कहते हैं।[1] 'एकबीजी सोतापन्न' सोतापन्न की स्थिति प्राप्त होने के अनन्तर एक भव में प्रतिसन्धि लेकर उसी भव में सकदागामी, अनागामी एवं अरहत्त हो जाता है।

सत्तक्खत्तुपरम, कोलङ्कोल और एकबीजी पुरुष का अध्ययन करने पर पता चलता है कि एक के बाद एक इनकी अवस्था है, परन्तु ऐसा कुछ नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि सोतापन्न को ही अलग-अलग तीन नामों से पुकारा गया है। इनका विश्लेषण करने पर हम देखेंगे कि ये तीनों एक दूसरे से ही सम्बद्ध हैं। 'सत्तक्खत्तुपरम' में 'परम' शब्द द्वारा प्रतिसन्धि लेने की अधिकतम सीमा कही गयी है। इसका आशय यह है कि सात से कम प्रतिसन्धियां भी हो सकती हैं। इसलिए केवल एक भव मात्र में प्रतिसन्धि लेने वाला 'एकबीजी सोतापन्न', दो से छः भव के बीच यथायोग्य प्रतिसन्धि लेने वाला 'कोलङ्कोल सोतापन्न' तथा सात भव पर्यन्त प्रतिसन्धि लेने वाला 'सत्तक्खत्तुपरम सोतापन्न' होता है।

अपनी स्वभावभूत पारमिता के अनुसार श्रद्धा, प्रज्ञा आदि इन्द्रियां भी मृदु, मध्य या तीक्ष्ण होती हैं। जिसकी श्रद्धा, प्रज्ञा आदि इन्द्रियां मृदु होती हैं, उसे 'मृद्विन्द्रिय पुरुष', जिसकी श्रद्धा, प्रज्ञा आदि इन्द्रियां मध्य होती हैं, उसे 'मध्येन्द्रिय पुरुष' तथा जिसकी श्रद्धा, प्रज्ञा आदि इन्द्रियां तीक्ष्ण होती हैं, उसे 'तीक्ष्णेन्द्रिय पुरुष' कहते हैं। इस प्रकार श्रद्धा, प्रज्ञा आदि इन्द्रियों के मृदु, मध्य, तीक्ष्ण क्रम के अनुसार सोतापन्न का ही तीन नाम है। इनमें मृद्विन्द्रिय पुरुष 'सत्तक्खत्तुपरम सोतापन्न', मध्येन्द्रिय पुरुष 'कोलङ्कोल सोतापन्न' तथा तीक्ष्णेन्द्रिय पुरुष 'एकबीजी सोतापन्न' होते हैं।[2]

अट्ठकथा में कहा गया है कि ऊपर के मार्गों के लिए आरब्ध विपश्यना जब तीक्ष्ण होती है तब 'एकबीजी', जब मध्य होती है तब 'कोलङ्कोल' तथा जब मृदु (मन्द) होती है तब 'सत्तक्खत्तुपरम' सोतापन्न होता है।[3]

अन्तरापरिनिब्बायी पुग्गल

'अन्तरापरिनिब्बायी' दो अवयवों से युक्त है– अन्तरा तथा परिनिब्बायी। 'अन्तरा' का अर्थ है मध्य या बीच मार्ग में। 'परिनिब्बायी' का अर्थ है परिनिर्वाण प्राप्त। इस प्रकार 'अन्तरापरिनिब्बायी' का अर्थ हुआ, जिसने मध्य मार्ग में ही निर्वाण प्राप्त कर लिया हो। अट्ठकथाकार ने 'अन्तरा' का अर्थ उपपन्न समनन्तरा

१. 'एकं बीजं यस्साति एकबीजी'। अभि० स० (हिन्दी) २, पृ० ६६१
२. विभ० अट्ठ, पृ० ४३३; अभि० स० १२१
३. प० प० अट्ठ० १, पृ० ६१-६२; विभ० अट्ठ०, पृ० ४३३

किया है। इसका अर्थ है कि यह पुरुष देवलोक में उत्पन्न होने के अनन्तर ही अथवा आयु-प्रमाण के पूर्ण होने के पूर्व ही परिनिर्वाण को प्राप्त करने के कारण परिनिवृत्त हो जाता है। यह पुरुष पांच उपरस्थ संयोजनों के प्रहाण पूर्वक ही परिनिवृत्त होता है।

उपहच्चपरिनिब्बायी पुग्गल

'उपहच्च' का अर्थ है आधे से अधिक पार करना। कुछ ऐसे पुरुष होते हैं जो पांच ओरम्भागीय संयोजनों के परिक्षीण करने के उपरान्त ओपपातिक अर्थात् देवलोकवासी बनते हैं। वे पुनः मनुष्यलोक में नहीं आते, वरन् वहीं देवलोक से ही परिनिवृत्त हो जाते हैं। देवलोक में ऐसे पुरुषों की आयु की एक निश्चित अवधि होती है। यथा किसी पुरुष विशेष को देवलोक में उत्पन्न होने के उपरान्त एक हजार कल्प आयु की प्राप्ति होती है। उस आयु प्रमाण में वह पांच सौ कल्पों को परिसमाप्ति कर छः सौवें या सात सौवें कल्प के मध्य क्लेशों की परिसमाप्ति के उपरान्त अर्हत की प्राप्ति करता है अर्थात् आयु प्रमाण के अत्यन्त निकट जाकर अर्हत्व की प्राप्ति करता है, इसलिए उसे 'उपहच्चपरिनिब्बायी पुग्गल' कहते हैं।

असङ्खारपरिनिब्बायी पुग्गल

इसका अभिप्राय उस पुरुष से है जो अनामागी होकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और अल्प प्रयत्न से ही ऊपरी संयोजनों अर्थात् रूपराग, अरूपराग, मान, उद्धच्च एवं अविज्जा को नष्ट करने के लिए आर्यमार्ग को उत्पन्न कर परिनिवृत्त होता है। इस प्रकार अल्प दुःख, अल्प यत्न के साथ सुखपूर्वक जो परिनिवृत्त होता है, वह 'असङ्खारपरिनिब्बायी पुग्गल' है। यहाँ 'संङ्खार' शब्द यत्न, कष्ट के लिए प्रयुक्त है, 'असङ्खार' से दुःखरहित, बाधारहित आदि अर्थ फलित होता है।[1]

ससङ्खारपरिनिब्बायी पुग्गल

जो पुरुष अनागामी होकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और वह बाधाओं के साथ उर्ध्वभागीय संयोजनों को विनष्ट कर परिनिर्वाण को प्राप्त करता है, उसे परिनिर्वाण अधिगम में दुःख की अधिकता के कारण 'ससङ्खारपरिनिब्बायी पुरुष' कहा जाता है। बुद्धघोष ने 'ससङ्खार' का अर्थ दुःखसहित, कष्टसहित,

---

१. प० प० अट्ठ० १, पृ० ६४

बाधासहित बताया है। जो दुःख बहुलता से ऊपर के पांच संयोजनों को विनष्ट करता है और परिनिर्वाण प्राप्त करता है, उसे ही 'ससङ्खारपरिनिब्बायी पुग्गल' कहते हैं।[1]

उद्धंसोत अकनिट्ठगामी पुग्गल

यह एक ऐसे पुरुष विशेष की अवधारणा है जो पांच ओरम्भागीय संयोजनों को विनष्ट करने के उपरान्त देवलोक में जन्म ग्रहण करता है। वहाँ से पुनः मनुष्यलोक में उसकी आने की स्थिति नहीं है। वह क्रमशः 'अकनिट्ठ लोक' से ऊपर की ओर जाने वाला होता है। वह 'अविह' ब्रह्मलोक से च्युत होकर 'अतप्प' ब्रह्मलोक को जाता है और 'अतप्प' से च्युत होकर 'सुदस्स' ब्रह्मलोक में जाता है, वहाँ से च्युत होकर 'सुदस्सी' ब्रह्मलोक को जाता है और वहाँ से च्युत होकर 'अकनिट्ठ' ब्रह्मलोक में जाकर ऊपरी संयोजनों को नष्ट करने के लिए आर्यमार्ग उत्पन्न करता है। ऐसे पुरुष को 'उद्धंसोत अकनिट्ठगामी पुग्गल' कहते हैं।

अरिय पुग्गल

'अरिय' शब्द का अर्थ आर्य है। कोई पुरुष तीन कारणों से आर्य कहलाता है– क्लेशों से दूर चले जाने के कारण[2], विशिष्ट उपलब्धियों द्वारा देवताओं तथा मनुष्यों में पूज्य होने के कारण[3] और परिशुद्धि दृष्टि होने के कारण[4]। ऐसे पुरुष 'चार मार्गस्थ' तथा 'चार फलस्थ' होते हैं।

सेक्ख पुग्गल

'सेक्ख' शब्द शैक्ष्य का अधिवचन है। इसका शब्दगत अर्थ है – सीखने वाला। यह पुरुष किसी सामान्य वस्तु का ग्रहण करने वाला या उसे सीखने वाला नहीं होता है, वरन् वह रूप समाधि एवं अरूप समाधि का पूर्णतः अभ्यास (विपश्यना) करने के उपरान्त लोकोत्तर चित्त भूमि में प्रवेश कर चुका होता है। वहाँ जाकर वह संयोजनों के विनाश में संलग्न होता है, जिसके कारण कुछ संयोजन पूर्ण रूप से विनष्ट हो चुके होते हैं एवं कुछ संयोजन अभी विनष्ट होने शेष रहते हैं। जहाँ तक वे विनष्ट हो चुके हैं वहाँ तक की उपलब्धि को हस्तगत

---

१. प० प० अट्ठ १, पृ० ६४

२. 'किलेसेहि आरकत्ता अरिया'। –प० प० अट्ठ० १, पृ० ५३

३. 'सदेवकेन लोकेन अरणीयत्ता अरिया'। –प० प० अट्ठ० १, पृ० ५३

४. 'अरियट्ठो नाम परिसुद्धट्ठोति परिसुद्धत्तापि अरिया'। – प० प० अट्ठ० १, पृ० ५३

करने के कारण वह सीख चुका है एवं अवशेष संयोजनों के विनाशपूर्वक उनके ज्ञान से वंचित रहने के कारण उसे सीखना अवशेष है। इसी अर्थ में उसे 'सेक्ख' कहा जाता है। ऐसे 'चार मार्गस्थ' तथा 'तीन फलस्थ' पुरुष हैं।[1]

असेक्ख पुग्गल

'असेक्ख' का अर्थ है जिसने विपश्यना के द्वारा सब कुछ सीख लिया है, उसको अब सीखने के लिए कुछ भी अवशेष नहीं है। जिसने रूप समापत्ति तथा अरूप समापत्ति का क्रमशः लाभ प्राप्त कर लिया है साथ ही जिसने दस संयोजनों को समूल विनष्ट कर अर्हत्व की प्राप्ति कर ली है, वह पुरुष 'असेक्ख' है।[2]

समयविमुत्त पुग्गल

यह पुरुष समय-समय पर ध्यान के द्वारा आठ विमोक्षों का अनुभूत ज्ञान प्राप्त करता है और प्रज्ञा के द्वारा ही कुछ पापयुक्त आस्रवों का प्रहाण कर देता है जिससे वह 'समयविमुक्त पुरुष' कहा जाता है।

यहाँ पर आठ विमोक्ष का तात्पर्य मुक्ति से है। आठ विमोक्ष के अन्तर्गत रूपी, अरूपसंज्ञी, शुभ, आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन और संज्ञावेदयित निरोध हैं।

१. *रूपी* – 'रूपी रूपानि पस्सति'[3] अर्थात् रूपी रूपों को देखता है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि कौन 'रूपी' और कौन 'रूप' है ? इसके अन्तर्गत एक आयतन है और दूसरा आलम्बन है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'रूपी' आयतन है और 'रूप' आलम्बन अर्थात् चक्षु आयतन रूप आलम्बनों को देखता है। चक्षु में देखने का गुण होता है। उसी के द्वारा रूपालम्बन का ग्रहण होता है। इसका तात्पर्य है ध्यान पर स्थित चित्त। चित्त की इस अवस्था में ध्यान का विषय रूपवान पदार्थ या बाह्य जगत का कोई दृश्य पदार्थ ही होता है। अतः इसे रूप सम्बन्धी ध्यान का चित्त कहा जाता है। रूप पर एकाग्रता प्राप्त कर आगे की ओर अग्रसर होता है। इसे विमोक्ष की पहली अवस्था कही जाती है।

२. *अरूपसंज्ञी* – 'अज्झत्तं अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति'[4] अर्थात्

---

१. चत्तारो मग्गसमङ्गिनो तयो फलसमङ्गिनो पुग्गला सेक्खा। – पु० प०, पृ० ३८
२. 'अरहा असेक्खो'। –पु० प०, पृ० ३८
३. दी० नि० ३, पृ० २०२, २३२; अं० नि० ३, पृ० ३६४; म० नि० २, पृ० २३६
४. वही

अध्यात्म अरूपसंज्ञी बाहर रूपों को देखता है। इसमें रूपवान वस्तु नहीं होती है परन्तु ध्यान द्वारा अन्दर की वस्तुओं को जानते हैं और आभास होने लगता है कि हम बाह्य वस्तुओं को देख रहे हैं लेकिन वह अरूप वस्तु होती है। इस प्रकार पुरुष विमोक्ष के दूसरे ध्यान को प्राप्त कर आगे की ओर अग्रसर होता है।

३. *शुभ* – अरूपसंज्ञी को जानकर ध्यान के द्वारा वह शुभ या कुशल में प्रवेश करता है। यहाँ पर पुरुष यह अनुभव करने लगता है कि यह शुभ या कुशल है, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इस प्रकार अगले अवस्था का अनुभव करने लगता है।

४. *आकाशानन्त्यायतन* – इसके अन्तर्गत तीन अवयव हैं– आकाश, आनन्त्य एवं आयतन। नौ कसिण धर्मों में से किसी एक को उद्घाटित करने पर प्राप्त होने वाली आकाश प्रज्ञप्ति ही 'आकाश' है। यह अरूपावचर चित्त की प्रथम ध्यान अवस्था है। इस अवस्था में चित्त बाह्य दृश्य पदार्थ के चिन्तन से हटकर आन्तरिक और किसी रूपरहित आलम्बन (या कर्मस्थान) का चिन्तन करने लग जाता है। उसका आलम्बन आकाश की अनन्तता होता है। आकाश की कोई सीमा नहीं होती है। इसी आलम्बन पर चित्त के द्वारा ध्यान किया जाता है और ध्यान करते-करते यह अनुभव होने लगता है कि आकाश अनन्त है। इस प्रकार इसको प्राप्त कर आगे की ओर अग्रसर हो जाता है।

५. *विज्ञानानन्त्यायतन* – विज्ञान का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान की अनन्तता पर ध्यान करते हैं। सर्वथा आकाश अनन्त आयतन का अतिक्रमण कर विज्ञान अनन्त है, इसको प्राप्त कर विहरता है, परन्तु इसी पर वह सन्तुष्ट नहीं हो पाता, इसलिए आगे की ओर जाने का प्रयत्न करता है।

६. *आकिंचन्यायतन* – इसमें वह अनन्त आकिंचन्य विषय पर ध्यान करता है और ज्ञात हो जाता है कि सब कुछ शून्य है। जैसे-जैसे पुरुष विपश्यना ध्यान में आगे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे उसका चित्त स्वच्छ, विरल होता जाता है। इससे भी वह सन्तुष्ट नहीं हो पाता है, इसलिए आगे बढ़ने का यत्न करता है।

७. *नैवसंज्ञानासंज्ञायतन* – जब आकिंचन्य आयतन का अतिक्रमण कर विपश्यना ध्यान करते हुए वह नैवसंज्ञा-न-असंज्ञा आयतन की अवस्था में पहुँचता है और अनुभव करता है तो उसे आभास होने लगता है कि न इसे चेतना ही कहा जा सकता और न अचेतना ही। चित्त की वह सूक्ष्म अवस्था जिसमें न यह कहा जा सके कि संज्ञा है और न यह कहा जा सके कि संज्ञा नहीं है, इस प्रकार की अवस्था को वह प्राप्त कर लेता है और आगे बढ़ता है।

८. *संज्ञावेदयितनिरोध* – इस अवस्था में पुरुष नैवसंज्ञा-न-असंज्ञा आयतन का अतिक्रमण कर संज्ञावेदयित निरोध को प्राप्त हो विहार करता है। इसमें उपर्युक्त सात अवस्थाओं का निरोध हो जाता है तथा प्रज्ञा की प्राप्ति हो जाती है, इस प्रकार पुरुष आठ विमोक्षों का विपश्यना ध्यान कर विहार करता है और तत्पश्चात प्रज्ञा को भी जान जाता है।

असमयविमुत्त पुग्गल

यह पुरुष समाधि के द्वारा आठ विमोक्षों का ज्ञान प्राप्त करता है। कभी-कभी इसकी समाधि बीच में ही भंग हो जाती है परन्तु इन विमोक्षों का ज्ञान सर्वदा रहता है। प्रज्ञा के उपस्थित रहते हुए वह चार आस्रवों को पूर्ण रूप से नष्ट कर देता है।

'आस्रव' एक प्रकार का मल है। संसार में प्राचीन काल से रखी हुई मदिरा को 'आस्रव' कहते हैं, जैसे पुरुष मदिरा का सेवन करने से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर विभिन्न अकरणीय आचरण कर बैठते हैं, फलस्वरूप उन्हें नाना प्रकार के दुःखों का अनुभव करना पड़ता है तथा आदरणीय पुरुषों द्वारा बहिष्कृत किए जाते हैं और निन्दा के पात्र होते हैं, उसी प्रकार पृथग्जनों के स्कन्धरूपी मद्यपात्र में अनादिकाल से लोभ, द्वेष एवं मोहरूपी मद्य रखा हुआ है। जैसे पुराना मद्य अधिक खमीर से युक्त होता है उसी प्रकार लोभ, द्वेष, मोह भी अधिक शक्तिशाली होते हैं। ये अधिक शक्तिशाली होने के कारण जब इनका वेग संयमित नहीं हो पाता तब पृथग्जन किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं और उनके लिए कुछ भी अकरणीय नहीं रहता। फलस्वरूप उन्हें अपायभूमि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है। वे आर्य पुरुषों द्वारा भी बहिष्कृत एवं निन्दित होते हैं। इसीलिए आस्रव या आसव सदृश होने के कारण लोभ, द्वेष एवं मोह को 'आस्रव' कहते हैं।[1]

'आसव' चार प्रकार के होते हैं– कामासव, भवासव, दिट्ठासव एवं अविज्जासव। कामगुणों में आसक्ति तृष्णा को 'कामासव' कहते हैं। जन्म लेने की इच्छारूपी मल ही 'भवासव' है। मल से परिपूर्ण ज्ञान ही 'दिट्ठासव' है। वह समझ नहीं पाता कि यह संसार शाश्वत है या अशाश्वत, अनन्त है या अअनन्त। इसी प्रकार का आसव 'दिट्ठासव' है। अज्ञान रूपी मल ही 'अविज्जासव' है।

---

१. अ० सा०, पृ० ४१

कायसक्खी पुग्गल

शरीर (नामकाय) से सत्य का साक्षात्कार करने वाला पुरुष 'कायसक्खी' कहा जाता है। यह आठ विमोक्षों से युक्त हो विहार करता है। प्रज्ञा के द्वारा कुछ आस्रवों का प्रहाण भी कर देता है। अट्ठकथाकार ने बताया है कि जब पुरुष एक ध्यान से दूसरे ध्यान, इसी प्रकार कई ध्यान की अवस्थाओं पर समाधि को प्राप्त होता है तब निर्वाण का साक्षात्कार कर लेता है। रूप ध्यान, अरूप ध्यान, सोतापत्तिफल, सकदागामीफल, अनागामीफल तथा अरहत्तमग्ग तक की जो अवस्थाएं होती हैं, वे 'कायसक्खी' कहलाती हैं।

उभतोभागविमुत्त पुग्गल

दो प्रकार से विमुक्त पुरुष को उभतोभागविमुक्त पुरुष कहा गया है। ये दो प्रकार क्या हो सकते हैं ? यह ऐसे पुरुष का अधिवचन है जिसने आठ प्रकार के विमोक्षों का साक्षात्कार किया है एवं उनकी उपलब्धियों के साथ विहार करता है। विमोक्षों की उपलब्धियों से वह चित्त विमोक्ष से मुक्त हो जाता है। पुनः यह दर्शाया गया है कि प्रज्ञा के द्वारा उसने आर्यसत्यों का साक्षात्कार किया है तथा उन्हें पूर्णतः जान लिया है, जिससे उसके चार प्रकार के आस्रव क्षीण हो चुके हैं। यह उसकी दूसरे प्रकार की विमुक्ति है। इन्हीं दो विमुक्तियों से युक्त पुरुष 'उभतोभागविमुत्त' है।

अट्ठकथाकार ने प्रसंग को स्पष्ट करते हुए कहा है– चूलनाग स्थविर के अनुसार समापत्तियों द्वारा जिसने चित्तमलों को विखम्भित या दुर्बल कर दिया है, उनके प्राबल्य से मुक्त हो चुका है और पुनः मार्ग द्वारा उन चित्तमलों को जिसने समुच्छेद किया है, ऐसे दो प्रकार से मुक्त पुरुष ही 'उभतोभागविमुत्त' है।

बुद्धघोष ने दर्शाया है कि अरूप समापत्ति के लाभ द्वारा वह रूपकाय से मुक्त होता है तथा मार्ग द्वारा नामकाय से मुक्त होता है। इस प्रकार यह 'उभतोभागविमुत्त' है। ऐसा भी कहा जाता है कि आठ समापत्तियों के लाभ के अनन्तर वह अनागामी भाव को साक्षात्कार करता है एवं उससे उठकर विपश्यना को बढ़ाते हुए अर्हत्व की स्थिति को प्राप्त करता है। इस दृष्टि से उसे 'उभतोभागविमुत्त' कहा जाता है।[1] इसे इस प्रकार भी दर्शाया जा सकता है कि साधक अरूपावचर स्थिति द्वारा नामकाय से विमुक्त तथा रूपकाय से विमुक्त

---

१. प० प० अट्ठ० १, पृ० ५६

होता है तथा उसी विमुक्ति की अवस्था को आधारभूत विपश्यना ध्यान मानकर अर्हत्व की प्राप्ति करता है। इन उपलब्धियों द्वारा नामरूप और जीवनमरण परम्परा से दो विमुक्तियां हैं। इसे भी 'उभतोभागविमुत्त पुरुष' कहते हैं।

पञ्ञाविमुत्त पुग्गल

'पञ्ञा' अविधान में दो पद देखे जाते हैं– पञ्ञा एवं विमुक्त। 'पञ्ञा' का अर्थ है प्रज्ञा एवं 'विमुत्त' का अर्थ विमुक्ति है, इस प्रकार जो प्रज्ञा से विमुक्त है वह 'प्रज्ञाविमुक्त' है। प्रज्ञा यहाँ विशिष्ट ज्ञान का अधिवचन है, जिसके द्वारा वस्तु का बाह्यरूप, उसका लक्षण तथा उन्हें वैसा जानकर निर्वेद की प्राप्ति होती है। जब वह इस स्वभाव को सम्यक रूप से जान लेता है कि सभी संस्कार अनित्य हैं, दुःख हैं तथा सभी धर्म अनात्म हैं, तब वह उनसे आसक्ति का निवारण करता है। इस प्रकार प्रज्ञा से विमुक्त पुरुष को 'प्रज्ञाविमुक्त' कहते हैं।

इस पुरुष को आठ प्रकार के विमोक्षों का अधिगम नहीं रहता है और न ही रूप समापत्ति एवं अरूप समापत्ति का अभ्यास किए हुए रहता है पर रूप ध्यान के किसी भी अंग का ध्यान करने के उपरान्त उससे उठते ही अर्हत्व की प्राप्ति कर लेता है। अतः उनकी अर्हत्व प्राप्ति में ध्यानबल की पृष्ठभूमि नहीं होती है वरन् प्रज्ञा पृष्ठभूमि होती है, इसलिए ऐसे पुरुष को 'प्रज्ञाविमुक्त' कहते हैं।

सोतापन्न पुग्गल

'सोत' में आपन्न या आरूढ़ पुरुष को 'सोतापन्न' कहते हैं। यहाँ सोत या स्रोत शब्द मार्ग का अधिवचन है। इससे लोकोत्तर मार्ग अभिप्रेत है। लोकोत्तर मार्ग में प्रविष्ट पुरुष निर्वाण का सर्वप्रथम दर्शन करता है और क्रमशः संयोजनों का विनाश करते हुए उसका साक्षात्कार करता है।

गंगा आदि के प्रवाह को 'सोत' या 'स्रोत' कहा जाता है। उस प्रवाह के समान होने से 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' को भी स्रोत कहा जाता है।[1] जिस प्रकार गंगा, यमुना आदि महानदियों की धारा हिमालय से उद्भूत होकर मार्ग में बिना रुके वेग से समुद्र की ही ओर अग्रसर होती हुई अन्त में समुद्र में ही मिल जाती हैं, उसी प्रकार सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प आदि आर्य अष्टांगिक मार्ग अपने प्रथम उत्पाद क्षण से आरम्भ होकर वेगपूर्वक अग्रसर होते हुए अन्त में निर्वाण रूपी

---

१. प० प० अट्ठ० १, पृ० ५३-५४

समुद्र तक पहुँच जाते हैं। इसे पीछे लौटने का भय नहीं रहता है। वह सर्वदा आगे की ओर ही अग्रसर होता चला जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि सोतापन्न पुरुष कैसा है ? इस क्रम में संयोजनों का प्रहाण करता है। जो धर्म पुरुषों को संसार चक्र में बाँधते हैं उन्हें 'संयोजन' कहा जाता है।[१] ये संख्या में दस हैं– सक्कायदिट्ठि, विचिकिच्छा, सीलब्बतपरामास, कामराग, पटिघ, रूपराग, अरूपराग, मान, उद्धच्च एवं अविज्जा। सोतापन्न पुरुष इन दस संयोजनों में से प्रथम तीन अर्थात् सक्कायदिट्ठि, विचिकिच्छा तथा सीलब्बतपरामास का समूल विनाश करता है। 'सक्कायदिट्ठि' का अर्थ है सत्काय दृष्टि अर्थात् नाम या रूप से सम्बन्धित किसी भी अवस्था को 'मैं', 'मेरा' अथवा 'मेरी आत्मा' स्वीकार कर उसे नित्य, शाश्वत, ध्रुव मान लेना। 'विचिकिच्छा' अर्थात् संशय यानी मार्ग एवं मार्ग की उपलब्धि के प्रति सन्देह करना। बुद्ध, धम्म, संघ के प्रति भी संदेह करना। 'सीलब्बतपरामास' अर्थात् किसी भी शील या व्रत को मुक्ति प्रदायक मानकर उसे अतियों तक ले जाना और उसके प्रति आसक्त हो जाना।

इन तीन संयोजनों के प्रहाण पूर्वक सोतापन्न नामक आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इसमें दो क्षण होते हैं। जिस क्षण वह संयोजनों को विनष्ट करता है, उसे 'सोतापत्ति मग्ग' कहते हैं अर्थात् वह पुरुष मार्गस्थ सोतापन्न होता है। पुनः वे संयोजन नष्ट हो गये, इसे वह जान लेता है, तब वह फलस्थ सोतापन्न पुरुष कहा जाता है। मार्ग के क्षण वह संयोजनों को भग्न करता है तथा फल के क्षण वह जान लेता है कि संयोजन भग्न हो गए। इन दो स्थितियों को प्राप्त पुरुष 'सोतापन्न' है। सोतापत्ति फल सबसे श्रेष्ठ है, इसलिए कहा गया है–

''पथव्या एकरज्जेन, सग्गस्स गमनेन वा।
सब्बलोकाधिपच्चेन, सोतापत्तिफलं वरं''।।[२]

अर्थात् इस संसार में पृथ्वी का राजा बन जाय, स्वर्ग में इधर-उधर भ्रमण करे, सभी लोक का अधिपति हो जाय, फिर भी इन सबके उपरान्त 'सोतापत्ति फल' सबसे श्रेष्ठ है।

सकदागामी पुग्गल

जो पुरुष इस लोक में केवल एक बार ही आने वाला होता है, उसे 'सकदागामी' कहते हैं। यह एक ऐसे पुरुष का अधिवचन है जिसने एक प्रकार का आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर लिया है, जिसके परिणामस्वरूप क्लेशों का बल

१. ''संयोजेन्ति, बन्धेन्तीति संयोजना''। – अ० सा०, पृ० ४१
२. ध० प० १७८

इतना क्षीण हो चुका है कि वह केवल एक बार ही इस लोक में आ सकता है। यह पुरुष कामराग एवं पटिघ नामक संयोजनों को दुर्बल करता है। 'कामराग' अर्थात् प्रिय व्यक्ति, वस्तु, स्थिति आदि को प्राप्त करने की तीव्र कामना भरा राग। इसमें कामवासना से सम्बन्धित राग प्रमुख होता है। 'पटिघ' या प्रतिघ यानी प्रतिघात अर्थात् अप्रिय व्यक्ति, वस्तु, स्थिति आदि को दूर करने या दूर रखने के लिए प्रतिघात करना यानी उसके प्रति तीव्र द्वेष उत्पन्न करना। इनके दुर्बल होने पर जिस स्थिति को प्राप्त होता है उस स्थिति का नाम सकदागामी है। इसमें भी दो क्षण होते हैं, जिन्हें मार्गस्थ सकदागामी तथा फलस्थ सकदागामी कहते हैं। मार्ग के क्षण वह उन संयोजनों को दुर्बल करता है और फल के क्षण वह जान लेता है कि ये दुर्बल कर दिए गये। इन दोनों स्थितियों को प्राप्त पुरुष 'सकदागामी' है।

अनागामी पुग्गल

'अन' एवं 'आगामी', इन दो पदों का यौगिक अर्थ है– इस लोक में न आनेवाला पुरुष। इस लोक का अभिप्राय है मनुष्य लोक। अतः जिसने इस प्रकार का आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर लिया है, वह इस लोक में जन्म लेने वाले कारणों से मुक्त है। यह कैसे ? जिसने कामराग एवं पटिघ नामक क्रमभूत संयोजनों को समूल नष्ट कर दिया है और उससे जिस आध्यात्मिक अवस्था की प्राप्ति होती है, उसे अनागामी भाव कहते हैं तथा उस पुरुष को 'अनागामी' कहते हैं।

अनागामी पुरुष का कामराग तथा पटिघ सर्वथा प्रहीण हो चुका रहता है, इसलिए वह कामभूमि में पुनः जन्म नहीं लेता। कामभूमि से च्युत होने के अनन्तर यदि वह अर्हत नहीं होता है तो भी वह ब्रह्मलोक में प्रतिसन्धि लेता है। कामभूमि में आने की कोई सम्भावना नहीं रहती है। वह न तो मनुष्य लोक और न किसी दिव्य लोक में ही जन्म ले सकता है, परन्तु रूपराग एवं अरूपराग का प्रहाण न कर सकने के कारण वह रूप या अरूप भूमि में प्रतिसन्धि ले सकता है।

अरहत्त पुग्गल

बौद्ध परम्परा में अर्हत एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है। यह सामान्यतया 'अरह' धातु से निष्पन्न बताया जाता है, जिसका अर्थ होता है योग्य होना। इसलिए अर्हत ऐसे पुरुष का अधिवचन है जो समर्थ एवं योग्य है। इसका अर्थ है भवचक्र को भग्ग करने में समर्थ होना। जिसने लोकोत्तर भूमि में प्रविष्ट होकर अनवरत सम्यक व्यायाम द्वारा सम्पूर्ण संयोजनों को नष्ट कर दिया है और उनके समूल

नाश के साथ समस्त तृष्णाओं के विनाश से भव परम्परा को नष्ट करने में समर्थता प्राप्त की है, उसे 'अरहत्त' कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'आरक' से भी की जाती है। आरा या आरक का अर्थ है दूर होना। जो समस्त क्लेशों से दूर हो चुका है, वह अर्हत है। ग्रन्थ में बताया गया है कि जिसने रूपराग, अरूपराग, मान, उद्धच्च एवं अविज्जा का समूल विनाश कर दिया है, वह पुरुष अर्हत है। 'रूपराग' अर्थात् रूप ब्रह्मलोक के प्रति आसक्त रहना। 'अरूपराग' अर्थात् अरूप ब्रह्मलोक के प्रति आसक्त रहना। 'मान' यानी अस्मिताभाव, अहंभाव। रूप एवं अरूप ब्रह्मलोकों की भव तृष्णा सूक्ष्म अहंभाव कायम रखती है। 'उद्धच्च' या बेचैनी अर्थात् भव तृष्णा के कारण सूक्ष्म अवस्था में बेचैनी कायम रहना। 'अविज्जा' या अविद्या अर्थात् भव तृष्णा के कारण ही अविद्या की पतली परतें कायम रहती हैं जो मुक्ति में बाधक बनती है। इनका समूल नाश कर पुरुष अर्हत होता है। इस अवस्था में भी मार्ग और फल की दृष्टि से दो भेद देखे जाते हैं। जब वह अन्तिम पाँच संयोजनों को समूल नष्ट करने में प्रतिपन्न रहता है, तब उस क्षण को अर्हत मार्ग कहते हैं और जब ये संयोजन नष्ट हो गए और जान लेता है, तब उस स्थिति को अर्हत फल कहते हैं। यह पुरुष लोक में अग्र, दक्षिणेय्य माना जाता है।

पच्चेकसम्बुद्ध पुग्गल

जिसने अपूर्व एवं अनुश्रुत धर्म एवं चार आर्यसत्यों के यथार्थ अवबोध पूर्वक प्रत्येक बोधि को प्राप्त किया है, उसे 'पच्चेकसम्बुद्ध' पुरुष कहा जाता है। वह अनाचर्यक होता है अर्थात् उसे किसी आचार्य की सेवा में रहकर विविध उपलब्धियों को प्राप्त करने का अवसर प्राप्त नहीं रहता है। वह स्वयं बुद्ध होता है पर किसी को उपदेश नहीं दे सकता है। वह स्वयं तीर्ण रहता है पर दूसरों को तार नहीं सकता है। उसे न तो सर्वज्ञता प्राप्त रहती है और न दस बलों पर वशीभाव का ही अधिगम रहता है। वह गैंडे की तरह एकान्त विहार करता है। वह कभी उपदेश नहीं देता है, पर यदा-कदा उसके उद्‌गार होते हैं, जिन्हें उदान कहते हैं। ऐसे उदानों का संग्रह सुत्तनिपात के खग्गविसाण सुत्त में उपलब्ध हैं।

सम्मासम्बुद्ध पुग्गल

सम्यक रूप से सम्बोधि को प्राप्त पुरुष 'सम्मासम्बुद्ध' है। यह शब्द सम्बोधि प्राप्त किए हुए महापुरुष के लिए प्रयोग में आता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति करने से इसके तीन खण्ड होते हैं– सम्मा+सं+बुद्ध। इनमें 'सम्मा' का अर्थ सम्यक

है, 'सं' का अर्थ है पूर्णरूप से तथा 'बुद्ध' का अर्थ प्रबुद्ध है, इसलिए 'सम्मासम्बुद्ध' का अर्थ हुआ, जिसने सम्यक रूप से, पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

वह अपूर्व एवं अनुश्रुत सत्यों का साक्षात्कार करता है। वह सर्वज्ञ होता है। देश एवं कालगत आवरण इसके सम्मुख नहीं रहते हैं। दस प्रकार के बलों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है। यह पुरुष 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' प्रतिपन्न रहता है।

इसके अतिरिक्त पुग्गलपञ्ञत्ति में विभिन्न प्रकार के पुरुषों का वर्णन प्रस्तुत है, जैसे– क्रोधी पुरुष, अक्रोधी पुरुष, मायावी पुरुष, अमायावी पुरुष, धूर्त पुरुष, अधूर्त पुरुष, लज्जालु पुरुष, अलज्जालु पुरुष, शील-विपन्न पुरुष, शील-सम्पन्न पुरुष, दुर्लभ पुरुष, निरास पुरुष, अन्धा पुरुष, एक चक्षु वाला पुरुष, दो चक्षु वाला पुरुष, वीतरागी पुरुष, अवीतरागी पुरुष, शीलपरिपूरकारी पुरुष, समाधिपरिपूरकारी पुरुष, प्रज्ञापरिपूरकारी पुरुष, पापी पुरुष, कल्याणकारी पुरुष, प्रयत्न के फल पर निर्भर पुरुष, पुण्य के फल पर निर्भर पुरुष, न प्रयत्न के फल पर निर्भर और न ही पुण्य के फल पर निर्भर पुरुष, अन्धकार में जाने वाले पुरुष, प्रकाश में जाने वाले पुरुष, स्वयं तपने वाले पुरुष, दूसरे को तपाने वाले पुरुष, न तो स्वयं तपने वाले न दूसरे को तपाने वाले पुरुष इत्यादि।

इस पुस्तक में कुछ ऐसे पुरुषों की भी चर्चा है जिनकी तुलना पाषाण पर लिखे गए अक्षर के सदृश, पृथ्वी पर लिखे गये अक्षर के सदृश, पानी पर लिखे गए अक्षर के सदृश किया गया है। इसके अतिरिक्त पुरुषों की तुलना चार प्रकार के बादलों के सदृश, चार प्रकार के चूहों के सदृश, चार प्रकार के आमों के सदृश, चार प्रकार के घड़े के सदृश, चार प्रकार के तालाब के सदृश, चार प्रकार के साँपों के सदृश, चार प्रकार के बलिबद्द इत्यादि के सदृश किया गया है, जो बड़ा ही रोचक है और जीवन में उतारने लायक है। इस प्रकार की सदृश्यता यहीं विरमित नहीं होती, वरन् पुरुषों की तुलना पाँच प्रकार के योद्धाओं से भी की गयी है। इसमें बताया गया है कि एक योद्धा जब युद्ध क्षेत्र में जाता है तो कैसे भयभीत हो जाता है और क्यों भयभीत होता है, इसका क्या कारण है ? इसका पूर्ण विवरण इस ग्रन्थ में उपलब्ध है।

बुद्ध पूर्णिमा

ओम प्रकाश पाठक

संकेत-सूची

अ० नि०	अङ्गुत्तरनिकाय	नालन्दा संस्करण
अ० सा०	अट्ठसालिनी	बम्बई संस्करण
अभि० स०	अभिधम्मत्थसङ्गहो	वाराणसी संस्करण
कथा०	कथावत्थु	नालन्दा संस्करण
क० आ० फि०	कम्पेडियम ऑफ फिलासफी	लन्दन संस्करण
दी० नि० अट्ठ०	दीघनिकाय-अट्ठकथा	नालन्दा संस्करण
ध० प०	धम्मपद	नालन्दा संस्करण
प० प० अट्ठ०	पञ्चप्पकरण-अट्ठकथा	नालन्दा संस्करण
पु० प०	पुग्गलपञ्ञत्ति	वर्तमान संस्करण
म० नि०	मज्झिमनिकाय	नालन्दा संस्करण
मि० प०	मिलिन्दपञ्ह	वाराणसी संस्करण
विभ० अट्ठ०	विभङ्ग-अट्ठकथा	नालन्दा संस्करण
सं० नि०	संयुत्तनिकाय	नालन्दा संस्करण

पादटिप्पणी

ना०	नालन्दा संस्करण
म०	बर्मी संस्करण
रो०	रोमन संस्करण
सी०	सिंहली संस्करण
स्या०	स्यामी संस्करण

In the Pāli Text

B.	Burmese Edition
N.	Nālandā Edition
R.	Roman Edition
S.	Sinhalese Edition

।। नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।।

पुग्गलपञ्ञत्तिपालि[1]

मातिकाउद्देसो

छ पञ्ञत्तियो

१. [N.3; R.1; B.101; S.240] छ पञ्ञत्तियो– खन्धपञ्ञत्ति, आयतनपञ्ञत्ति, धातुपञ्ञत्ति, सच्चपञ्ञत्ति, इन्द्रियपञ्ञत्ति, पुग्गलपञ्ञत्तीति ।

मातिका संकेत

छः प्रज्ञप्तियां

१. छः प्रज्ञप्तियां – स्कन्ध-प्रज्ञप्ति, आयतन-प्रज्ञप्ति, धातु-प्रज्ञप्ति, सत्य-प्रज्ञप्ति, इन्द्रिय-प्रज्ञप्ति तथा पुद्गल-प्रज्ञप्ति ।

१. खन्धानं खन्धपञ्ञत्ति

२. कित्तावता खन्धानं खन्धपञ्ञत्ति ?

यावता पञ्चक्खन्धा– रूपक्खन्धो, वेदनाक्खन्धो, सञ्ञाक्खन्धो, सङ्खारक्खन्धो, विञ्ञाणक्खन्धो; एत्तावता खन्धानं खन्धपञ्ञत्ति ।

१. स्कन्धों की स्कन्ध-प्रज्ञप्ति

२. किस प्रकार स्कन्धों की स्कन्ध-प्रज्ञप्ति है ?

जिस प्रकार पांच स्कन्ध हैं– रूप-स्कन्ध, वेदना-स्कन्ध, संज्ञा-स्कन्ध, संस्कार-स्कन्ध, विज्ञान-स्कन्ध । इसी प्रकार स्कन्धों की स्कन्ध-प्रज्ञप्ति है ।

---

१. पुग्गलपञ्ञत्तिप्पकरणं – सी०; पुग्गलपञ्ञत्ति – स्या०, रो० ।

२. आयतनानं आयतनपञ्ञत्ति

३. कित्तावता आयतनानं आयतनपञ्ञत्ति ?

यावता द्वादसायतनानि– चक्खायतनं[1], रूपायतनं, सोतायतनं, सद्दायतनं, घानायतनं, गन्धायतनं, जिव्हायतनं, रसायतनं, कायायतनं, फोट्ठब्बायतनं, मनायतनं धम्मायतनं; एत्तावता आयतनानं आयतनपञ्ञत्ति।

२. आयतनों की आयतन-प्रज्ञप्ति

३. किस प्रकार आयतनों की आयतन-प्रज्ञप्ति है ?

जिस प्रकार बारह आयतन हैं– चक्षु-आयतन, रूप-आयतन, श्रोत्र-आयतन, शब्द-आयनन, घ्राण-आयतन, गन्ध-आयतन, जिह्वा-आयतन, रस-आयतन, काय-आयतन, स्पृष्टव्य-आयतन, मन-आयतन, धर्म-आयतन। इसी प्रकार आयतनों की आयतन-प्रज्ञप्ति है।

३. धातूनं धातुपञ्ञत्ति

४. कित्तावता धातूनं धातुपञ्ञत्ति ?

यावता अट्ठारस धातुयो– चक्खुधातु, रूपधातु, चक्खुविञ्ञाणधातु, सोतधातु, सद्दधातु, सोतविञ्ञाणधातु, घानधातु, गन्धधातु, घानविञ्ञाणधातु, जिव्हाधातु, रसधातु, जिव्हाविञ्ञाणधातु, कायधातु, फोट्ठब्बधातु, कायविञ्ञाणधातु, मनोधातु, धम्मधातु, मनोविञ्ञाणधातु; एत्तावता धातूनं धातुपञ्ञत्ति।

३. धातुओं की धातु-प्रज्ञप्ति

४. किस प्रकार धातुओं की धातु-प्रज्ञप्ति है ?

जिस प्रकार अठारह धातु हैं– चक्षु-धातु, रूप-धातु, चक्षु-विज्ञान-धातु, श्रोत्र-धातु, शब्द-धातु, शब्द-विज्ञान-धातु, घ्राण-धातु, गन्ध-धातु, घ्राण-विज्ञान-धातु, जिह्वा-धातु, रस-धातु, जिह्वा-विज्ञान-धातु, काय-धातु, स्पृष्टव्य-धातु, काय-विज्ञान-

---

१. चक्ख्वायतनं– स्या०, एवमुपरि पि।

धातु, मन-धातु, धर्म-धातु, मन-विज्ञान-धातु। इसी प्रकार धातुओं की धातु-प्रज्ञप्ति है।

४. सच्चानं सच्चपञ्ञत्ति

५. [N.4; R.2; B.102] कित्तावता सच्चानं सच्चपञ्ञत्ति ?

यावता चत्तारिसच्चानि– दुक्खसच्चं, समुदयसच्चं, निरोधसच्चं, मग्गसच्चं; एत्तावता सच्चानं सच्चपञ्ञत्ति।

४. सत्यों की सत्य-प्रज्ञप्ति

५. किस प्रकार सत्यों की सत्य-प्रज्ञप्ति है ?

जिस प्रकार चार (आर्य) सत्य हैं– दुःख-सत्य, समुदय-सत्य, निरोध-सत्य, मार्ग-सत्य। इसी प्रकार सत्यों की सत्य-प्रज्ञप्ति है।

५. इन्द्रियानं इन्द्रियपञ्ञत्ति

६. [S.242] कित्तावता इन्द्रियानं इन्द्रियपञ्ञत्ति ?

यावता बावीसतिन्द्रियानि– चक्खुन्द्रियं, सोतिन्द्रियं, घानिन्द्रियं, जिव्हिन्द्रियं, कायिन्द्रियं, मनिन्द्रियं, इत्थिन्द्रियं, पुरिसिन्द्रियं, जीवितिन्द्रियं, सुखिन्द्रियं, दुक्खिन्द्रियं, सोमनस्सिन्द्रियं, दोमनस्सिन्द्रियं, उपेक्खिन्द्रियं, सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं[1], सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं, अनञ्ञातञ्ञस्सामीतिन्द्रियं[2], अञ्ञिन्द्रियं, अञ्ञाताविन्द्रियं; एत्तावता इन्द्रियानं इन्द्रियपञ्ञत्ति।

५. इन्द्रियों की इन्द्रिय-प्रज्ञप्ति

६. किस प्रकार इन्द्रियों की इन्द्रिय-प्रज्ञप्ति है ?

जिस प्रकार बाईस इन्द्रियां हैं– चक्षु-इन्द्रिय, श्रोत्र-इन्द्रिय, घ्राण-इन्द्रिय, जिह्वा-इन्द्रिय, काय-इन्द्रिय, मन-इन्द्रिय, स्त्री-इन्द्रिय, पुरुष-इन्द्रिय, जीवित-इन्द्रिय,

---

१. वीरियिन्द्रियं – म०, एवमुपरि पि।

२. अनञ्ञातञ्ञस्सामितिन्द्रियं – सी०; अनञ्ञतञ्ञस्सामीतिन्द्रियं – स्या०।

सुख-इन्द्रिय, दुःख-इन्द्रिय, सौमनस्य-इन्द्रिय, दौर्मनस्य-इन्द्रिय, उपेक्षा-इन्द्रिय, श्रद्धा-इन्द्रिय, वीर्य-इन्द्रिय, स्मृति-इन्द्रिय, समाधि-इन्द्रिय, प्रज्ञा-इन्द्रिय, अनाज्ञातमाज्ञास्यामीन्द्रिय, आज्ञेन्द्रिय, आज्ञातावीन्द्रिय। इसी प्रकार इन्द्रियों की इन्द्रिय-प्रज्ञप्ति है।

६. पुग्गलानं पुग्गलपञ्ञत्ति

७. कित्तावता पुग्गलानं पुग्गलपञ्ञत्ति ?

६. पुद्गलों की पुद्गल-प्रज्ञप्ति

७. किस प्रकार पुद्गलों की पुद्गल-प्रज्ञप्ति है ?

पुग्गलपञ्ञत्तिमातिका

पुद्गल-प्रज्ञप्ति-मातिका

१. एको पुग्गलो

एक-एक प्रकार के पुरुष

(१) समयविमुत्तो	समयविमुक्त
(२) असमयविमुत्तो	असमयविमुक्त
(३) कुप्पधम्मो	चंचलधर्मा
(४) अकुप्पधम्मो	स्थिरधर्मा
(५) परिहानधम्मो	परिहानधर्मा
(६) अपरिहानधम्मो	अपरिहानधर्मा
(७) चेतनाभब्बो	संचेतना भव्य
(८) अनुरक्खणाभब्बो[1]	अनुरक्षण भव्य
(९) पुथुज्जनो	पृथकजन
(१०) गोत्रभू	गोत्रभू

१. अनुरक्खनाभब्बो – सी०, स्या०।

(११) भयूपरतो	भय उपरत
(१२) [N.5] अभयूपरतो	भय रहित
(१३) भब्बागमनो	भव्यगमन
(१४) अभब्बागमनो	अभव्यगमन
(१५) नियतो	नियत
(१६) अनियतो	अनियत
(१७) [B.103] पटिपन्नको	आरूढ़
(१८) फले[१] ठितो[१]	फल में स्थित
(१९) समसीसी	समसीसी
(२०) ठितकप्पी	स्थितकल्पी
(२१) अरियो	आर्य
(२२) अनरियो	अनार्य
(२३) सेक्खो[२]	शैक्ष्य
(२४) असेक्खो	अशैक्ष्य
(२५) नेवसेक्खनासेक्खो[३]	न शैक्ष्य न अशैक्ष्य
(२६) तेविज्जो	तेविद्य
(२७) छळभिञ्ञो	छः अभिज्ञा
(२८) [R.3] सम्मासम्बुद्धो	सम्यकसम्बुद्ध
(२९) पच्चेकसम्बुद्धो[४]	प्रत्येकसम्बुद्ध

१-१. फलेट्ठितो – स्या०।

२. सेखो – स्या०, एवमुपरि पि।

३. नेवसेक्खा नासेक्खो – सी०; नेवसेखोनासेखो – स्या०; नेवसेक्खो नासेक्खो – रो०।

४. पच्चेकबुद्धो – सी०।

(३०) उभतोभागविमुत्तो	दोनों प्रकार से विमुक्त
(३१) पञ्ञाविमुत्तो	प्रज्ञाविमुक्त
(३२) कायसक्खी	कायसाक्षी
(३३) दिट्ठिप्पत्तो[१]	दृष्टिप्राप्त
(३४) सद्धाविमुत्तो	श्रद्धाविमुक्त
(३५) धम्मानुसारी	धर्मानुसारी
(३६) सद्धानुसारी	श्रद्धानुसारी
(३७) सत्तक्खत्तुपरमो[२]	सात बार जन्म ग्रहण करने वाला
(३८) कोलङ्कोलो	एक कुल से दूसरे कुल में जाने वाला
(३९) [N.6] एकबीजी	एक बीज वाला
(४०) [B.104] सकदागामी	सकृदागामी
(४१) अनागामी	अनागामी
(४२) अन्तरापरिनिब्बायी[३]	मध्य मार्ग में निर्वाण प्राप्त
(४३) उपहच्चपरिनिब्बायी	आधे से अधिक पार करने पर निर्वाण प्राप्त
(४४) असङ्खारपरिनिब्बायी	असंस्कारपरिनिर्वृत्त
(४५) ससङ्खारपरिनिब्बायी	ससंस्कारपरिनिर्वृत्त
(४६) उद्धंसोतो अकनिट्ठगामी	मार्ग स्रोत तथा ऊपर की ओर जाने वाला
(४७) [S.244] सोतापन्नो	स्रोतापन्न

---

१. दिट्ठिप्पत्तो – रो०।
२. सत्तक्खत्तुंपरमो – स्या०, रो०।
३. अन्तरापरिनिब्बायि – सी०, एवमुपरि पि।

(४८) सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो	स्रोतापत्तिफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न
(४९) सकदागामी	सकृदागामी
(५०) सकदागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो	सकृदागामीफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न
(५१) अनागामी	अनागामी
(५२) अनागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो	अनागामीफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न
(५३) अरहा	अर्हत
(५४) अरहत्तफलसच्छिकिरियाय[1] पटिपन्नो	अर्हतफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न

२. द्वे[२] पुग्गला[२]

दो-दो प्रकार के पुरुष

(१)	क. कोधनो च	क्रोधी और
	ख. उपनाही च	उपनाही
(२)	क. मक्खी च	निन्दक और
	ख. पळासी[३] च	झगड़ालू
(३)	क. इस्सुकी च	ईर्ष्यालु और
	ख. मच्छरी च	कंजूस
(४)	क. सठो च	धूर्त और
	ख. मायावी च	मायावी

---

१. अरहत्ताय – रो०।

२-२. स्या० पोत्थके नत्थि।

३. पलासी – स्या०।

(५) क. [B.105] अहिरिको च — निर्लज्ज और
ख. अनोत्तप्पी च — अनपत्राप्यी

(६) क. [N.7] दुब्बचो च — अवज्ञाकारी और
ख. पापमित्तो च — पापमित्र

(७) क. [R.4] इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारो च — इन्द्रिय द्वारों पर असंयत और
ख. भोजने अमत्तञ्ञू च — भोजन में अमात्रज्ञ

(८) क. मुट्ठस्सति च — विस्मरणशील और
ख. असम्पजानो च — असम्प्रजन्य

(९) क. सीलविपन्नो च — शीलविपन्न और
ख. दिट्ठिविपन्नो च — दृष्टिविपन्न

(१०) क. अज्झत्तसंयोजनो[1] च — आन्तरिक संयोजन और
ख. बहिद्धासंयोजनो च — बाहरी संयोजन

(११) क. अक्कोधनो च — अक्रोधी और
ख. अनुपनाही च — अनुपनाही

(१२) क. अमक्खी च — अनिन्दक और
ख. अपळासी च — अझगड़ालू

(१३) क. अनिस्सुकी च — अईर्ष्यालु और
ख. अमच्छरी च — अकंजूस

(१४) क. असठो च — अधूर्त और
ख. अमायावी च — अमायावी

---

१. अज्झत्तसञ्ञोजनो – सी०, स्या०, रो०, एवमुपरि पि।

(१५) क. हिरिमा[1] च — लज्जालु और
ख. ओत्तप्पी च — अपत्राप्यी

(१६) क. सुवचो च — आज्ञाकारी और
ख. कल्याणमित्तो च — कल्याणमित्र

(१७) क. इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो च — इन्द्रिय द्वारों पर संयत और
ख. भोजने मत्तञ्ञू च — भोजन में मात्रज्ञ

(१८) क. उपट्ठितस्सति[2] च — स्मृति के साथ उपस्थित और
ख. सम्पजानो च — सम्प्रजन्य

(१९) क. [N.8] सीलसम्पन्नो च — शीलसम्पन्न और
ख. दिट्ठिसम्पन्नो च — दृष्टिसम्पन्न

(२०) द्वे पुग्गला दुल्लभा लोकस्मिं — लोक में दो दुर्लभ पुरुष

(२१) द्वे पुग्गला दुत्तप्पया — सरलता पूर्वक सन्तुष्ट न किये जा सकने वाले दो पुरुष

(२२) द्वे पुग्गला सुतप्पया — सरलता पूर्वक सन्तुष्ट किये जा सकने वाले दो पुरुष

(२३) द्विन्नं पुग्गलानं आसवा वड्ढन्ति — दो प्रकार के पुरुषों के आस्रवों में वृद्धि होती है।

(२४) द्विन्नं पुग्गलानं आसवा न वड्ढन्ति — दो प्रकार के पुरुषों के आस्रवों में वृद्धि नहीं होती है।

(२५) क. हीनाधिमुत्तो च — नीच प्रवृत्ति से युक्त और
ख. पणीताधिमुत्तो च — श्रेष्ठ प्रवृत्ति से युक्त

(२६) क. तित्तो च — सन्तुष्ट और
ख. तप्पेता च — सन्तुष्ट करने वाला

---

१. हिरीमा – रो०।
२. उपट्ठितसति – सी०, रो०।

३. तयो पुग्गला

तीन-तीन प्रकार के पुरुष

(१) क. [B.106; S.246] निरासो — निराश

ख. आसंसो — आशायुक्त

ग. विगतासो — जिसकी आशा चली गयी

(२) तयो गिलानूपमा पुग्गला — तीन प्रकार के रोगी सदृश पुरुष

(३) क. कायसक्खी — कायसाक्षी

ख. दिट्ठिप्पत्तो — दृष्टिप्राप्त

ग. सद्धाविमुत्तो — श्रद्धाविमुक्त

(४) क. गूथभाणी — बुरा बोलने वाला

ख. पुप्फभाणी — ठीक बोलने वाला

ग. मधुभाणी — मधुर बोलने वाला

(५) क. अरुकूपमचित्तो[1] पुग्गलो — व्रण सदृश चित्त वाला पुरुष

ख. विज्जूपमचित्तो पुग्गलो — बिजली सदृश चित्त वाला पुरुष

ग. वजिरूपमचित्तो पुग्गलो — वज्र सदृश चित्त वाला पुरुष

(६) क. अन्धो — अन्धा

ख. एकचक्खु — एक चक्षु वाला

ग. द्विचक्खु[2] — दो चक्षु वाला

(७) क. [N.9] अवकुज्जपञ्ञो पुग्गलो — अधोमुख प्रज्ञा वाला पुरुष

---

१. अरुकुपमचित्तो – सी०; अरुणूपमचित्तो – रो०।

२. द्वेचक्खु – रो०।

	ख. उच्छङ्गपञ्ञो[1] पुग्गलो	वलित प्रज्ञा वाला पुरुष
	ग. पुथुपञ्ञो पुग्गलो	विशाल प्रज्ञा वाला पुरुष
(८)	क. [R.5] अत्थेकच्चो पुग्गलो कामेसु च भवेसु च अवीतरागो	एक पुरुष जो कामों और भवों में रागयुक्त
	ख. अत्थेकच्चो पुग्गलो कामेसु वीतरागो भवेसु अवीतरागो	एक पुरुष जो कामों में राग रहित तथा भवों में रागयुक्त
	ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो कामेसु च भवेसु च वीतरागो	एक पुरुष जो कामों और भवों में राग रहित
(९)	क. पासाणलेखूपमो पुग्गलो	पाषाण पर लिखी हुई उपमा सदृश पुरुष
	ख. पथविलेखूपमो[2] पुग्गलो	पृथ्वी पर लिखी हुई उपमा सदृश पुरुष
	ग. उदकलेखूपमो पुग्गलो	पानी पर लिखी हुई उपमा सदृश पुरुष
(१०)	तयो पोत्थकूपमा पुग्गला	तीन प्रकार के जूट के वस्त्र सदृश पुरुष
(११)	तयो कासिकवत्थूपमा पुग्गला	तीन प्रकार के काशी के वस्त्र सदृश पुरुष
(१२)	क. सुप्पमेय्यो	आसानी से मापे जाने वाले
	ख. दुप्पमेय्यो	कठिनाई से मापे जाने वाले
	ग. अप्पमेय्यो	न मापे जाने वाले

---

१. उच्चङ्गपञ्ञो – स्या०।
२. पठवीलेखूपमो – स्या०।

(१३) क. अत्थेकच्चो पुग्गलो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो।

एक पुरुष जो न सेवा करता है, न आदर करता है, न संगति करता है।

ख. अत्थेकच्चो पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो।

एक पुरुष जो सेवा करता है, आदर करता है, संगति करता है।

ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो सक्कत्वा गरुं कत्वा सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो।

एक पुरुष जो आदर, सम्मान के साथ सेवा करता है, आदर करता है, संगति करता है।

(१४) क. [B.107] अत्थेकच्चो पुग्गलो जिगुच्छितब्बो, न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो।

एक पुरुष जो घृणा के कारण न सेवा करता है, न आदर करता है, न संगति करता है।

ख. अत्थेकच्चो पुग्गलो अज्झुपेक्खितब्बो, न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो।

एक पुरुष जो उपेक्षा के कारण न सेवा करता है, न आदर करता है, न संगति करता है।

ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो।

एक पुरुष जो सेवा करता है, आदर करता है, संगति करता है।

(१५) क. [N.10; S.248] अत्थेकच्चो पुग्गलो सीलेसु परिपूरकारी[१], समाधिस्मिं मत्तसो कारी, पञ्ञाय मत्तसो कारी।

एक पुरुष जो शील में परिपूर्ण रहता है लेकिन समाधि में अपरिपूर्ण और प्रज्ञा में भी अपरिपूर्ण रहता है।

---

१. परिपूरीकारी – स्या०, एवमुपरि पि।

ख. अत्थेकच्चो पुग्गलो सीलेसु च परिपूरकारी समाधिस्मिं च परिपूरकारी, पञ्ञाय मत्तसो कारी।

एक पुरुष जो शील में परिपूर्ण रहता है और समाधि में भी परिपूर्ण रहता है लेकिन प्रज्ञा में अपरिपूर्ण रहता है।

ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो सीलेसु च परिपूरकारी समाधिस्मिं च परिपूरकारी पञ्ञाय च परिपूरकारी।

एक पुरुष जो शील में परिपूर्ण रहता है, समाधि में परिपूर्ण रहता है और प्रज्ञा में भी परिपूर्ण रहता है।

(१६) तयो सत्थारो — तीन शास्ता

(१७) अपरे पि तयो सत्थारो — इससे ऊपर के तीन शास्ता

४. चत्तारो पुग्गला

चार-चार प्रकार के पुरुष

(१) क. असप्पुरिसो — असत्पुरुष

ख. असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो — असत्पुरुष से अधिक असत्पुरुष

ग. सप्पुरिसो — सत्पुरुष

घ. सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो — सत्पुरुष से अधिक सत्पुरुष

(२) क. पापो — पापी

ख. पापेन पापतरो — पापी से अधिक पापी

ग. कल्याणो — कल्याण करने वाला

घ. कल्याणेन कल्याणतरो — कल्याण से अधिक कल्याण करने वाला

(३) क. [R.6] पापधम्मो — पापधर्मा

ख. पापधम्मेन पापधम्मतरो — पापधर्मा से अधिक पापधर्मा

ग. कल्याणधम्मो — कल्याणधर्मा

घ. कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरो — कल्याणधर्मा से अधिक कल्याण-धर्मा

(४) क. सावज्जो — निन्दनीय

ख. वज्जबहुलो — अत्यधिक निन्दनीय

ग. अप्पवज्जो[1] — अल्प निन्दनीय

घ. अनवज्जो — निर्दोष

(५) क. [N.11] उग्घटितञ्ञू — उपदेश देते ही अर्थ को जान लेने वाला

ख. विपञ्चितञ्ञू[2] — विस्तार से धर्मोपदेश देने पर धर्म को जान सकने वाला

ग. नेय्यो — धर्म को जान सकने वाला

घ. पदपरमो — जीवन भर भी धर्म का उपदेश दिए जाने पर भी न जान सकने वाला

(६) क. [B.108] युत्तप्पटिभानो[3], नो मुत्तप्पटिभानो

ठीक उत्तर देने वाला किन्तु शीघ्र उत्तर न देने वाला

ख. मुत्तप्पटिभानो, नो युत्तप्पटिभानो

शीघ्र उत्तर देने वाला किन्तु ठीक उत्तर न देने वाला

ग. युत्तप्पटिभानो च मुत्तप्पटिभानो च

ठीक उत्तर देने वाला और शीघ्र उत्तर देने वाला

---

१. अप्पसावज्जो – स्या०, रो०।

२. विपचितञ्ञू – सी०; विपच्चितञ्ञू – रो०।

३. युत्तपटिभाणो – स्या०, रो०; युत्तपटिभानो – सी०, एवमुपरि पि।

घ. नेव युत्तप्पटिभानो नो मुत्तप्पटिभानो

न तो ठीक उत्तर देने वाला और न ही शीघ्र उत्तर देने वाला

(७) चत्तारो धम्मकथिका पुग्गला

चार प्रकार के धर्म-कथिक पुरुष

(८) चत्तारो वलाहकूपमा पुग्गला

चार प्रकार के मेघ सदृश पुरुष

(९) चत्तारो मूसिकूपमा पुग्गला

चार प्रकार के चूहे सदृश पुरुष

(१०) चत्तारो अम्बूपमा पुग्गला

चार प्रकार के आम सदृश पुरुष

(११) चत्तारो कुम्भूपमा पुग्गला

चार प्रकार के घड़े सदृश पुरुष

(१२) चत्तारो उदकरहदूपमा पुग्गला

चार प्रकार के तालाब सदृश पुरुष

(१३) चत्तारो बलीबद्दूपमा[1] पुग्गला

चार प्रकार के वृषभ सदृश पुरुष

(१४) चत्तारो आसीविसूपमा[2] पुग्गला

चार प्रकार के सर्प सदृश पुरुष

(१५) क. [S.250] अत्थेकच्चो पुग्गलो अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासिता होति।

एक पुरुष जो बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए अप्रशंसनीय की प्रशंसा करता है।

ख. अत्थेकच्चो पुग्गलो अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति।

---

१. बलिवद्दूपमा – सी०, रो०; बलिबद्धूपमा – स्या०।

२. आसिविसूपमा – सी०, स्या०।

एक पुरुष जो बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए प्रशंसनीय की अप्रशंसा करता है।

ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो[1] अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने पसादं उपदंसिता[2] होति।

एक पुरुष जो बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए अश्रद्धेय स्थान पर श्रद्धा व्यक्त करता है।

घ. अत्थेकच्चो पुग्गलो अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसिता होति।

एक पुरुष जो बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए श्रद्धेय स्थान पर अश्रद्धा व्यक्त करता है।

(१६) क. [N.12] अत्थेकच्चो पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति।

एक पुरुष जो विचार कर, परीक्षण कर अप्रशंसनीय की अप्रशंसा करता है।

ख. अत्थेकच्चो पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति।

एक पुरुष जो विचार कर, परीक्षण कर प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है।

ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसिता होति।

एक पुरुष जो विचार कर, परीक्षण कर अश्रद्धेय स्थल पर अश्रद्धा व्यक्त करता है।

घ. अत्थेकच्चो पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने पसादं उपदंसिता होति।

एक पुरुष जो विचार कर, परीक्षण कर श्रद्धेय स्थल पर श्रद्धा व्यक्त करता है।

---

१. रो० पोत्थके नत्थि।

२. उपधंसिता – सी०, एवमुपरि पि।

(१७) क. अत्थेकच्चो पुग्गलो अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च खो वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन।

एक पुरुष जो अप्रशंसनीय की अप्रशंसा करते हुए (उसके बारे में) ठीक समय पर सत्य बोलता है, लेकिन प्रशंसनीय की प्रशंसा करते हुए (उसके बारे में) ठीक समय पर सत्य नहीं बोलता है।

ख. अत्थेकच्चो पुग्गलो वण्णारहस्स वण्णं [B.109] भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च खो अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन।

एक पुरुष जो प्रशंसनीय की प्रशंसा करते हुए (उसके बारे में) ठीक समय पर सत्य बोलता है, लेकिन अप्रशंसनीय की अप्रशंसा करते हुए (उसके बारे में) ठीक समय पर सत्य नहीं बोलता है।

ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो अवण्णारहस्स च अवण्णं भासिता होति [R.7] भूतं तच्छं कालेन, वण्णारहस्स च[1] वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन।

एक पुरुष जो अप्रशंसनीय की अप्रशंसा करते हुए (उसके बारे में) ठीक समय पर सत्य बोलता है, और प्रशंसनीय की प्रशंसा करते हुए भी (उसके बारे में) ठीक समय पर सत्य बोलता है।

घ. अत्थेकच्चो पुग्गलो नेव अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च[2] वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन।

एक पुरुष जो न तो अप्रशंसनीय की अप्रशंसा करते हुए (उसके बारे में) ठीक समय पर सत्य बोलता है, और न ही प्रशंसनीय की प्रशंसा करते हुए (उसके बारे में) ठीक समय पर सत्य बोलता है।

---

१. सी०, रो० पोत्थकेसु नत्थि।
२. पि – रो०।

(१८) क. [S.252] उट्ठानफलूपजीवी, नो पुञ्ञफलूपजीवी
प्रयास के फल पर निर्भर, किन्तु पुण्य के फल पर निर्भर नहीं

ख. पुञ्ञफलूपजीवी, नो उट्ठानफलूपजीवी
पुण्य के फल पर निर्भर, किन्तु प्रयास के फल पर निर्भर नहीं

ग. उट्ठानफलूपजीवी च पुञ्ञफलूपजीवी च
प्रयास के फल पर निर्भर तथा पुण्य के फल पर (भी) निर्भर

घ. नेव उट्ठानफलूपजीवी नो पुञ्ञफलूपजीवी
न तो प्रयास के फल पर निर्भर, न ही पुण्य के फल पर निर्भर

(१९) क. [N.13] तमो तमपरायनो
अन्धकार से अन्धकार में जाने वाला

ख. तमो जोतिपरायनो
अन्धकार से प्रकाश में जाने वाला

ग. जोति तमपरायनो
प्रकाश से अन्धकार में जाने वाला

घ. जोति जोतिपरायनो
प्रकाश से प्रकाश में जाने वाला

(२०) क. ओणतोणतो
नीचे से नीचे की ओर जाने वाला

ख. ओणतुण्णतो
नीचे से ऊपर की ओर जाने वाला

ग. उण्णतोणतो
ऊपर से नीचे की ओर जाने वाला

घ. उण्णतुण्णतो
ऊपर से ऊपर की ओर जाने वाला

(२१) चत्तारो रुक्खूपमा पुग्गला

चार प्रकार के वृक्ष सदृश पुरुष

(२२) क. रूपप्पमाणो[1] रूपप्पसन्नो

रूप को प्रमाण मानने वाला तथा रूप पर प्रसन्न होने वाला

ख. घोसप्पमाणो[2] घोसप्पसन्नो

शब्द को प्रमाण मानने वाला तथा शब्द पर प्रसन्न होने वाला

ग. लूखप्पमाणो लूखप्पसन्नो

रुक्षता को प्रमाण मानने वाला तथा रुक्षता पर प्रसन्न होने वाला

घ. धम्मप्पमाणो धम्मप्पसन्नो

धर्म को प्रमाण मानने वाला तथा धर्म पर प्रसन्न होने वाला

(२३) क. अत्थेकच्चो पुग्गलो अत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय।

एक पुरुष अपने हित के लिए प्रतिपन्न होता है, पर दूसरे के हित के लिए नहीं।

ख. अत्थेकच्चो पुग्गलो परहिताय पटिपन्नो होति, नो अत्तहिताय।

एक पुरुष दूसरे के हित के लिए प्रतिपन्न होता है, पर अपने हित के लिए नहीं।

ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो होति परहिताय च।

एक पुरुष अपने हित के लिए प्रतिपन्न होता है और दूसरे हित के लिए भी।

घ. अत्थेकच्चो पुग्गलो नेव अत्तहिताय पटिपन्नो होति नो परहिताय।

---

१. रूपप्पमानो – सी०।

२. घोसप्पमानो – सी०।

एक पुरुष न तो अपने हित के लिए प्रतिपन्न होता है और न ही दूसरे हित के लिए।

(२४) क. अत्थेकच्चो पुग्गलो अत्तन्तपो होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

एक पुरुष अपने को तपाने वाला तथा अपने को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला।

ख. अत्थेकच्चो पुग्गलो परन्तपो होति परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

एक पुरुष दूसरे को तपाने वाला तथा दूसरे को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला।

ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो अत्तन्तपो च होति [B.110] अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

एक पुरुष अपने को तपाने वाला तथा अपने को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला और दूसरे को तपाने वाला तथा दूसरे को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला।

घ. [N.14; S.254] अत्थेकच्चो पुग्गलो नेव अत्तन्तपो होति न अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो— सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो[1] दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो[2] सुखप्पटिसंवेदी[3] ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति।

एक पुरुष न तो अपने को तपाने वाला, न ही अपने को कष्ट देने में लगा रहने वाला और न तो दूसरे को तपाने वाला, न ही दूसरे को कष्ट देने में लगा रहने वाला— वह अपने को अनुतप्त करने वाला नहीं होता है, वह इसी जीवन में तृष्णाविहीन होकर, निर्वृत्त होकर, शान्तभाव को प्राप्त होकर, सुख का अनुभव करता हुआ, सर्वश्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर, स्वयं विहार करता है।

---

१. अपरन्तेहि – रो०।

२. सीतिभूतो – सी०, रो०।

३. सुखपटिसंवेदी – सी०, स्या०, रो०।

(२५) क. सरागो — राग-युक्त

ख. सदोसो — द्वेष-युक्त

ग. समोहो — मोह-युक्त

घ. समानो — मान-युक्त

(२६) क. अत्थेकच्चो पुग्गलो लाभी होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स, न लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

एक पुरुष जो आन्तरिक चित्त की शमथ-भावना का लाभी होता है किन्तु श्रेष्ठ प्रज्ञा और विपश्यना धर्म का लाभी नहीं होता है।

ख. [R.8] अत्थेकच्चो पुग्गलो लाभी होति अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय, न लाभी अज्झत्तं चेतोसमथस्स।

एक पुरुष जो श्रेष्ठ प्रज्ञा और विपश्यना धर्म का लाभी होता है किन्तु आन्तरिक चित्त की शमथ-भावना का लाभी नहीं होता है।

ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स, लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

एक पुरुष जो आन्तरिक चित्त की शमथ-भावना का लाभी होता है और श्रेष्ठ प्रज्ञा तथा विपश्यना धर्म का भी लाभी होता है।

घ. अत्थेकच्चो पुग्गलो नेव लाभी होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स, न लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

एक पुरुष जो न तो आन्तरिक चित्त की शमथ-भावना का लाभी होता है और न ही श्रेष्ठ प्रज्ञा तथा विपश्यना धर्म का लाभी होता है।

(२७) क. अनुसोतगामी पुग्गलो — अनुस्रोतगामी पुरुष

ख. पटिसोतगामी पुग्गलो — प्रतिस्रोतगामी पुरुष

ग. ठितत्तो पुग्गलो — स्थित पुरुष

घ. तिण्णो पारङ्गतो[1] थले तिट्ठति ब्राह्मणो

तीर्ण, पारंगत, स्थल पर स्थित ब्राह्मण

---

१. पारगतो – सी०, स्या०।

(२८) क. अप्पस्सुतो[1], सुतेन अनुपपन्नो
थोड़ा सुना हुआ, लेकिन सुने हुए के अनुसार आचरण न करने वाला

ख. अप्पस्सुतो, सुतेन उपपन्नो
थोड़ा सुना हुआ, लेकिन सुने हुए के अनुसार आचरण करने वाला

ग. [N.15] बहुस्सुतो, सुतेन अनुपपन्नो
बहुत सुना हुआ, लेकिन सुने हुए के अनुसार आचरण न करने वाला

घ. बहुस्सुतो, सुतेन उपपन्नो
बहुत सुना हुआ, और सुने हुए के अनुसार आचरण करने वाला

(२९) क. समणमचलो — अचल-श्रमण

ख. समणपदुमो — पद्म-श्रमण

ग. समणपुण्डरीको — पुण्डरीक-श्रमण

घ. समणेसु समणसुखुमालो — श्रमणों में सुकुमार-श्रमण

५. पञ्च पुग्गला

पाँच-पाँच प्रकार के पुरुष

(१) क. [S.256] अत्थेकच्चो पुग्गलो आरभति[2] च विप्पटिसारी च होति, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति, यत्थस्स ते उप्पन्ना [B.111] पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

एक पुरुष जो दोष भी करता है और पश्चात्ताप भी करता है, वह चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को यथार्थ रूप से नहीं जानता है, किन्तु उसके प्राप्त (या उत्पन्न) हो जाने पर शेष अकुशल पाप-धर्मों का मूलोच्छेद हो जाता है।

---

१. अप्पसुतो – रो०, एवमुपरि पि।
२. आरम्भति – स्या०।

ख. अत्थेकच्चो पुग्गलो आरभति न विप्पटिसारी च[1] होति, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति, यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

एक पुरुष जो दोष तो करता है किन्तु पश्चात्ताप नहीं करता है, वह चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को यथार्थ रूप से नहीं जानता है, किन्तु उसके प्राप्त (या उत्पन्न) हो जाने पर शेष अकुशल पाप-धर्मों का मूलोच्छेद हो जाता है।

ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो नारभति विप्पटिसारी च[2] होति, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति, यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

एक पुरुष जो दोष नहीं करता है किन्तु पश्चात्ताप करता है, वह चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को यथार्थ रूप से नहीं जानता है, किन्तु उसके प्राप्त (या उत्पन्न) हो जाने पर शेष अकुशल पाप-धर्मों का मूलोच्छेद हो जाता है।

घ. अत्थेकच्चो पुग्गलो नारभति न विप्पटिसारी होति, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति, यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

एक पुरुष जो न दोष करता है और न पश्चात्ताप करता है, लेकिन वह चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को यथार्थ रूप से नहीं जानता है, किन्तु उसके प्राप्त (या उत्पन्न) हो जाने पर शेष अकुशल पाप-धर्मों का मूलोच्छेद हो जाता है।

ङ. अत्थेकच्चो[3] पुग्गलो नारभति न विप्पटिसारी होति, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं पजानाति, यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति[3]।

---

१. स्या०, रो० पोत्थकेसु नत्थि।

२. सी०, स्या०, रो० पोत्थकेसु नत्थि।

३-३. रो० पोत्थके न दिस्सति।

एक पुरुष जो न दोष करता है और न पश्चात्ताप करता है, और वह चित्त-विमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्ति को यथार्थ रूप से जानता है, और उसके प्राप्त (या उत्पन्न) हो जाने पर शेष अकुशल पाप-धर्मों का मूलोच्छेद हो जाता है।

(२) क. [N.16; R.9] दत्वा अवजानाति — देकर अवज्ञा करने वाला

ख. संवासेन अवजानाति — साथ रखकर अवज्ञा करने वाला

ग. आधेय्यमुखो होति — मुँह से धारण करने वाला

घ. लोलो[1] होति — लोभ करने वाला

ङ. मन्दो मोमूहो होति — मन्द-बुद्धि वाला मूढ़

(३) पञ्च योधाजीवूपमा पुग्गला — पाँच प्रकार के योद्धा सदृश पुरुष

(४) पञ्च पिण्डपातिका — पाँच पिण्डपातिक

(५) पञ्च खलुपच्छाभत्तिका — पाँच सामान्य समय के बाद भिक्षा को अस्वीकार करने वाले

(६) पञ्च एकासनिका — पाँच एक ही आसन पर बैठकर भिक्षा ग्रहण करने वाले

(७) पञ्च पसुकूलिका — पाँच धूल में पड़े चिथड़ों का बना हुआ चीवर पहनने वाले

(८) पञ्च तेचीवरिका — पाँच तीन प्रकार के चीवर पहनने वाले

(९) पञ्च आरञ्ञिका — पाँच अरण्य में रहने वाले

(१०) पञ्च रुक्खमूलिका — पाँच वृक्ष के मूल में रहने वाले

(११) पञ्च अब्भोकासिका — पाँच खुले आकाश में रहने वाले

(१२) पञ्च नेसज्जिका — पाँच बैठे ही रहने वाले

(१३) पञ्च यथासन्थतिका — पाँच को जैसा भी आसन मिले वैसा ही ग्रहण करने वाले

(१४) पञ्च सोसानिका — पाँच श्मशान में रहने वाले

---

१. लोळो – रो०।

६. छ पुग्गला

छः प्रकार के पुरुष

(१) क. [B.112; S.258] अत्थेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति, तत्थ च सब्बञ्ञुतं पापुणाति बलेसु[१] च वसीभावं।

एक पुरुष जो पूर्व में न सुने गये धर्मों को सम्यक रूप से स्वयं जानता है, और उसमें सर्वज्ञता प्राप्त रहता है और बलों पर (फलों पर) पूर्ण अधिकार होता है।

ख. अत्थेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति, न च तत्थ सब्बञ्ञुतं पापुणाति न च बलेसु[१] वसीभावं।

एक पुरुष जो पूर्व में न सुने गए धर्मों को सम्यक रूप से स्वयं जानता है, लेकिन उसमें सर्वज्ञता प्राप्त नहीं रहता है और न ही बलों पर पूर्ण अधिकार होता है।

ग. अत्थेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अनभिसम्बुज्झति[२], दिट्ठेव[३] धम्मे दुक्खस्सन्तकरो होति सावकपारमिं च[४] पापुणाति।

एक पुरुष जो पूर्व में न सुने गये धर्मों को सम्यक रूप से स्वयं नहीं जानता है, लेकिन इसी जीवन में दुःख का अन्त करने वाला होता है और श्रावक पारमी को पूर्ण करता है।

घ. [N.17] अत्थेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अनभिसम्बुज्झति, दिट्ठेव धम्मे दुक्खस्सन्तकरो होति, न च सावकपारमिं पापुणाति।

१-१. फलेसु – रो०।
२. अभिसम्बुज्झति – रो०।
३. दिट्ठे चेव – म०।
४. सी० पोत्थके नत्थि।

एक पुरुष जो पूर्व में न सुने गये धर्मों को सम्यक रूप से स्वयं नहीं जानता है, लेकिन इसी जीवन में दुःख का अन्त करने वाला होता है, परन्तु श्रावक पारमी को पूर्ण नहीं करता है।

ङ. अत्थेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अनभिसम्बुज्झति, न[1] च[1] दिट्ठेव धम्मे दुक्खस्सन्तकरो होति, अनागामी होति अनागन्ता[2] इत्थत्तं।

एक पुरुष जो पूर्व में न सुने गए धर्मों को सम्यक रूप से स्वयं नहीं जानता है और न इसी जीवन में दुःख का अन्त करने वाला होता है। अनागामी होता है तथा यहां कभी नहीं आने वाला होता है।

च. अत्थेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अनभिसम्बुज्झति, न त्र दिट्ठेव धम्मे दुक्खस्सन्तकरो होति, आगामी[3] (सकदागामी) होति आगन्ता इत्थत्तं।

एक पुरुष जो पूर्व में न सुने गए धर्मों को सम्यक रूप से स्वयं नहीं जानता है, और न इसी जीवन में दुःख का अन्त करने वाला होता है परन्तु सकृदागामी होता है तथा यहां आने वाला होता है।

७. सत्त पुग्गला

सात-सात प्रकार के पुरुष

(१) [R. 10] सत्त उदकूपमा पुग्गला

सात प्रकार के उदक सदृश पुरुष

क. सकिं निमुग्गो निमुग्गो व होति

एक बार डुबकी लगाकर पुनः डूब जाने वाला

ख. उम्मुज्जित्वा निमुज्जति[4]

बाहर निकलकर पुनः डूब जाने वाला

१-१. रो० पोत्थके नत्थि।

२. अनागन्त्वा – स्या०, रो०।

३. सोतापन्नसकदागामी – स्या०; सकदागामी – रो०।

४. निम्मुज्जति – स्या०।

ग. उम्मुज्जित्वा ठितो होति
बाहर निकलकर स्थित हो जाने वाला

घ. उम्मुज्जित्वा विपस्सति विलोकेति
बाहर निकलकर पूर्ण रूप से देखने वाला

ङ. उम्मुज्जित्वा पतरति
बाहर निकलकर पार चला जाने वाला

च. उम्मुज्जित्वा पटिगाधप्पत्तो[1] होति
बाहर निकलकर स्थिरता प्राप्त कर लेने वाला होता है

छ. उम्मुज्जित्वा तिण्णो होति पारङ्गतो थले तिट्ठति ब्राह्मणो
बाहर निकलकर तीर्ण, पारंगत, स्थल पर स्थित होने वाला ब्राह्मण होता है

(२) क. [B.113] उभतोभागविमुत्तो — दोनों प्रकार से विमुक्त

ख. पञ्ञाविमुत्तो — प्रज्ञाविमुक्त

ग. कायसक्खी — कायसाक्षी

घ. दिट्ठिप्पत्तो — दृष्टिप्राप्त

ङ. सद्धाविमुत्तो — श्रद्धाविमुक्त

च. [N.18] धम्मानुसारी — धर्मानुसारी

छ. सद्धानुसारी — श्रद्धानुसारी

८. अट्ठ पुग्गला

आठ प्रकार के पुरुष

(१) [S.260] चत्तारो मग्गसमङ्गिनो, चत्तारो फलसमङ्गिनो पुग्गला।
चार मार्गसम्पन्न, चार फलसम्पन्न पुरुष

---

१. पटिगाधपत्तो – रो०।

९. नव पुग्गला

नौ प्रकार के पुरुष

(१) क. सम्मासम्बुद्धो — सम्यकसम्बुद्ध
ख. पच्चेकसम्बुद्धो — प्रत्येकसम्बुद्ध
ग. उभतोभागविमुत्तो — दोनों प्रकार से विमुक्त
घ. पञ्ञाविमुत्तो — प्रज्ञाविमुक्त
ङ. कायसक्खी — कायसाक्षी
च. दिट्ठिप्पत्तो — दृष्टिप्राप्त
छ. सद्धाविमुत्तो — श्रद्धाविमुक्त
ज. धम्मानुसारी — धर्मानुसारी
झ. सद्धानुसारी — श्रद्धानुसारी

१०. दस पुग्गला

दस प्रकार के पुरुष

(१) पञ्चन्नं इध निट्ठा, पञ्चन्नं इध विहाय निट्ठा।

पाँच यहां पर पूर्णता को प्राप्त, पाँच यहां को छोड़कर पूर्णता को प्राप्त।

मातिकाउद्देसो निट्ठितो[१]।

❑❑

१. ना०, रो०, सी०, स्या०, म०, पोत्थकेसु नत्थि।

पठमो परिच्छेदो

मातिकानिद्देसो

१. एककपुग्गलपञ्ञत्ति

(१) समयविमुत्तो पुग्गलो

१. [N.19; R.11; B.114; S.262] कतमो च पुग्गलो समयविमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो कालेन कालं समयेन समयं अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा[1] विहरति, पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो "समयविमुत्तो"।

मातिकाओं की विश्लेषणात्मक व्याख्या

१. एक-एक प्रकार के पुरुषों का प्रज्ञापन

(१) समयविमुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष (ऐसा है जो) समयविमुक्त है ?

यहां कोई एक पुरुष समय-समय पर, अवधि-अवधि पर आठ (प्रकार के) विमोक्षों को शरीर (नामकाय) से स्पर्श या साक्षात्कार (या अनुभव) करके विहार करता है और प्रज्ञा द्वारा देखकर वह कुछ आस्रवों को पूर्ण रूप से नष्ट कर देता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "समयविमुक्त" कहा जाता है।

(२) असमयविमुत्तो पुग्गलो

२. कतमो च पुग्गलो असमयविमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो न हेव खो कालेन कालं समयेन समयं अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति, पञ्ञाय चस्स दिस्वा आसवा

---

१. फस्सित्वा – सी०, एवमुपरि पि।

परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो ''असमयविमुत्तो''। सब्बेपि अरियपुग्गला अरिये विमोक्खे असमयविमुत्ता।

(२) असमयविमुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष (ऐसा है जो) असमयविमुक्त है ?

यहां कोई एक पुरुष असमय-असमय पर, बिना अवधि-अवधि पर आठ (प्रकार के) विमोक्षों को शरीर (नामकाय) से स्पर्श या साक्षात्कार (या अनुभव) करके विहार करता है और प्रज्ञा द्वारा देखकर वह आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है। (इस प्रकार) यह पुरुष ''असमयविमुक्त'' कहा जाता है। वस्तुतः सम्पूर्ण आर्य पुरुष तथा आर्य विमोक्ष (पुरुष) असमयविमुक्त हैं।

(३) कुप्पधम्मो पुग्गलो

३. कतमो च पुग्गलो कुप्पधम्मो ?

इधेकच्चो पुग्गलो लाभी होति रूपसहगतानं वा अरूपसहगतानं वा समापत्तीनं। सो च खो न निकामलाभी होति न अकिच्छलाभी न अकसिरलाभी; न यत्थिच्छकं यदिच्छकं यावतिच्छकं समापज्जति पि वुट्ठाति पि। ठानं खो पनेतं विज्जति यं तस्स पुग्गलस्स पमादमागम्म ता समापत्तियो कुप्पेय्युं। अयं वुच्चति पुग्गलो ''कुप्पधम्मो''।

(३) चंचल स्वभाव से युक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष चंचल स्वभाव का है ?

यहां कोई एक पुरुष रूपसहगत या अरूपसहगत समापत्तियों का लाभी होता है (अर्थात् समापत्तियों को प्राप्त करने वाला होता है)। (पर) वह (उसे) कठिनाई से प्राप्त करने वाला, सुगमता से प्राप्त न करने वाला तथा विपुलता से प्राप्त न करने वाला होता है। वह जहाँ कहीं ध्यान करना चाहता है, जिस आलम्बन पर ध्यान करना चाहता है तथा जिस काल या अवधि तक ध्यान करना चाहता है, ध्यान नहीं कर पाता। वहां इस पुरुष के लिए ऐसी सम्भावना विद्यमान है कि प्रमाद के आने पर समापत्तियों से विचलित हो सकता है। (इस प्रकार) यह पुरुष ''चंचल स्वभाव वाला'' कहा जाता है।

(४) अकुप्पधम्मो पुग्गलो

४. कतमो च पुग्गलो अकुप्पधम्मो ?

इधेकच्चो पुग्गलो लाभी होति रूपसहगतानं वा अरूपसहगतानं वा समापत्तीनं। सो च खो निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी; यत्थिच्छकं यदिच्छकं यावतिच्छकं समापज्जति पि वुट्ठाति पि। अट्ठानमेतं अनवकासो यं तस्स पुग्गलस्स पमादमागम्म ता [N.20] समापत्तियो कुप्पेय्युं। अयं वुच्चति पुग्गलो "अकुप्पधम्मो"। सब्बेपि अरियपुग्गला अरिये विमोक्खे अकुप्पधम्मा।

(४) स्थिर स्वभाव से युक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष स्थिर स्वभाव का है ?

यहां कोई एक पुरुष रूपयुक्त या अरूपयुक्त समापत्तियों का लाभी होता है। वह बिना कठिनाई से प्राप्त करने वाला, सुगमता से प्राप्त करने वाला तथा विपुलता से प्राप्त करने वाला होता है। वह जहां कहीं ध्यान करना चाहता है, जिस आलम्बन पर ध्यान करना चाहता है तथा जिस अवधि तक ध्यान करना चाहता है, ध्यान करता है। वहां इस पुरुष के लिए कोई अवसर नहीं है कि प्रमाद के आने पर समापत्तियों से विचलित हो जाय। (इस प्रकार) यह पुरुष "स्थिर स्वभाव का" कहा जाता है। वस्तुतः सम्पूर्ण आर्य पुरुष तथा आर्य विमोक्ष (पुरुष) स्थिर स्वभाव के होते हैं।

(५) परिहानधम्मो पुग्गलो

५. [S.264] कतमो च पुग्गलो परिहानधम्मो ?

इधेकच्चो पुग्गलो लाभी होति रूपसहगतानं वा [R.12] अरूपसहगतानं वा समापत्तीनं। सो च खो न निकामलाभी होति न अकिच्छलाभी न अकसिरलाभी; [B.115] न यत्थिच्छकं यदिच्छकं यावतिच्छकं समापज्जति वुट्ठाति पि। ठानं खो पनेतं विज्जति यं सो पुग्गलो पमादमागम्म ताहि समापत्तीहि परिहायेय्य। अयं वुच्चति पुग्गलो "परिहानधम्मो"।

(५) परिहान स्वभाव का पुरुष

कौन-सा पुरुष परिहान स्वभाव का है ?

यहां कोई एक पुरुष रूपयुक्त या अरूपयुक्त समापत्तियों का लाभ प्राप्त करता है। (पर) वह (उसे) कठिनाई से प्राप्त करने वाला, सुगमता से न प्राप्त करने वाला तथा विपुलता से न प्राप्त करने वाला होता है। वह जहां कहीं ध्यान करना चाहता है, जिस आलम्बन पर ध्यान करना चाहता है तथा जिस अवधि तक ध्यान करना चाहता है, ध्यान नहीं कर पाता है। वहां इस पुरुष के लिए ऐसी सम्भावना है कि प्रमाद के आने पर समापत्तियों से विचलित हो सकता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "परिहान स्वभाव का" कहा जाता है।

(६) अपरिहानधम्मो पुग्गलो

६. कतमो च पुग्गलो अपरिहानधम्मो ?

इधेकच्चो पुग्गलो लाभी होति रूपसहगतानं वा अरूपसहगतानं वा समापत्तीनं। सो च खो निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी; यत्थिच्छकं यदिच्छकं यावतिच्छकं समापज्जति पि वुट्ठाति पि। अट्ठानमेतं अनवकासो यं सो पुग्गलो पमादमागम्म ताहि समापत्तीहि परिहायेय्य[1]। अयं वुच्चति पुग्गलो "अपरिहानधम्मो"। सब्बेपि अरियपुग्गला अरिये विमोक्खे अपरिहानधम्मा।

(६) अपरिहान स्वभाव का पुरुष

कौन-सा पुरुष अपरिहान स्वभाव का है ?

यहां कोई एक पुरुष रूपयुक्त या अरूपयुक्त समापत्तियों का लाभ प्राप्त करने वाला होता है। वह बिना कठिनाई के प्राप्त करने वाला, सुगमता से प्राप्त करने वाला तथा विपुलता से प्राप्त करने वाला होता है। वह जहां कहीं ध्यान करना चाहता है, जिस आलम्बन पर ध्यान करना चाहता है तथा जिस अवधि तक ध्यान करना चाहता है, ध्यान करता है। वहां इस पुरुष के लिए कोई सम्भावना नहीं है कि प्रमाद के आने पर समापत्तियों से विचलित हो जाय। (इस प्रकार) यह पुरुष "अपरिहान स्वभाव का" कहा जाता है। वस्तुतः सम्पूर्ण आर्य पुरुष आर्य विमोक्ष से युक्त होने के कारण अपरिहान स्वभाव के कहे जाते हैं।

---

१. परिहारेय्य – रो०।

(७) चेतनाभब्बो पुग्गलो

७. कतमो च पुग्गलो चेतनाभब्बो ?

इधेकच्चो पुग्गलो लाभी होति रूपसहगतानं वा अरूपसहगतानं वा समापत्तीनं। सो च खो न निकामलाभी होति न अकिच्छलाभी न अकसिरलाभी; न[1] यत्थिच्छकं यदिच्छकं यावतिच्छकं समापज्जति पि वुट्ठाति पि। सचे अनुसञ्चेतेति, न[2] परिहायति ताहि समापत्तीहि। सचे न अनुसञ्चेतेति, परिहायति ताहि समापत्तीहि। अयं वुच्चति पुग्गलो "चेतनाभब्बो"।

(७) संचेतना से युक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष संचेतना (मनोबल) से युक्त है ?

यहां कोई एक पुरुष रूपयुक्त या अरूपयुक्त समापत्तियों का लाभी होता है। (पर) वह (उसे) कठिनाई से प्राप्त करने वाला, सुगमता से प्राप्त न करने वाला तथा विपुलता से प्राप्त न करने वाला होता है। वह जहां कहीं ध्यान करना चाहता है, जिस आलम्बन पर ध्यान करना चाहता है तथा जिस अवधि तक ध्यान करना चाहता है, ध्यान नहीं कर पाता है। यदि संचेतना (मनोबल) से युक्त होता है तब उन समापत्तियों से च्युत नहीं होता है। यदि संचेतना से युक्त नहीं होता है तब उन समापत्तियों से च्युत हो जाता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "संचेतना (मनोबल) से युक्त" कहा जाता है।

(८) अनुरक्खणाभब्बो पुग्गलो

८. कतमो च पुग्गलो अनुरक्खणाभब्बो[3] ?

[N.21] इधेकच्चो पुग्गलो लाभी होति रूपसहगतानं वा अरूपसहगतानं वा समापत्तीनं। सो च खो न निकामलाभी होति न अकिच्छलाभी न अकसिरलाभी; न यत्थिच्छकं यदिच्छकं यावतिच्छकं समापज्जति पि वुट्ठाति पि। सचे अनुरक्खति, न परिहायति ताहि समापत्तीहि। सचे न अनुरक्खति, परिहायति ताहि समापत्तीहि। अयं वुच्चति पुग्गलो "अनुरक्खणाभब्बो"।

---

१. सी० पोत्थके नत्थि।

२. स्या० पोत्थके नत्थि।

३. अनुरक्खनाभब्बो – सी०, स्या०, एवमुपरि पि।

(८) अनुरक्षण भव्य पुरुष

कौन-सा पुरुष अनुरक्षण भव्य (समर्थ) है ?

यहां कोई एक पुरुष रूपयुक्त या अरूपयुक्त समापत्तियों का लाभी होता है। (पर) वह (उसे) कठिनाई से प्राप्त करने वाला, सुगमता से न प्राप्त करने वाला तथा विपुलता से न प्राप्त करने वाला होता है। वह जहां कहीं ध्यान करना चाहता है, जिस आलम्बन पर ध्यान करना चाहता है तथा जिस अवधि तक ध्यान करना चाहता है, ध्यान नहीं कर पाता है। यदि अनुरक्षण करता है तब उन समापत्तियों से च्युत नहीं होता है। यदि अनुरक्षण नहीं करता है तब उन समापत्तियों से च्युत हो जाता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "अनुरक्षण समर्थ" कहा जाता है।

(९) पुथुज्जनो पुग्गलो

९. [S.266] कतमो च पुग्गलो पुथुज्जनो ?

यस्स पुग्गलस्स तीणि संयोजनानि[1] अप्पहीनानि; न च तेसं धम्मानं पहानाय पटिपन्नो। अयं वुच्चति पुग्गलो "पुथुज्जनो"।

(९) पृथकजन पुरुष

कौन-सा पुरुष पृथकजन है ?

जिस पुरुष के तीन संयोजन प्रहीण नहीं हुए रहते हैं और न ही उन धर्मों (संयोजनों) के प्रहाण के लिए प्रतिपन्न रहता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "पृथकजन" कहा जाता है।

(१०) गोत्रभू पुग्गलो

१०. कतमो च पुग्गलो गोत्रभू ?

[R.13] येसं धम्मानं समनन्तरा अरियधम्मस्स अवक्कन्ति होति, तेहि धम्मेहि समन्नागतो[2]। अयं वुच्चति पुग्गलो "गोत्रभू"।

---

१. सञ्ञोजनानि – स्या०, रो०।

२. समन्नागतो पुग्गलो – स्या०, रो०।

(१०) गोत्रभू पुरुष

कौन-सा पुरुष गोत्रभू है ?

जिन धर्मों के समानान्तर आर्य धर्म की अवक्रान्ति (उदय) होती है और (जो) उन धर्मों से युक्त होता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "गोत्रभू" कहा जाता है।

(११-१२) भयूपरतो अभयूपरतो पुग्गलो

११. [B.116] कतमो च पुग्गलो भयूपरतो ?

सत्त सेक्खा[1] भयूपरता, ये च[2] पुथुज्जना सीलवन्तो। अरहा अभयूपरतो।

(११-१२) भय से आक्रान्त (उपरत) तथा भय से रहित पुरुष

कौन-सा पुरुष भय से आक्रान्त (उपरत) है ?

सात (प्रकार के) शैक्ष्य पुरुष तथा शीलवान पुरुष भय से आक्रान्त (उपरत) हैं। अर्हत (अशैक्ष्य) भय से रहित है।

(१३) अभब्बागमनो पुग्गलो

१२. कतमो च पुग्गलो अभब्बागमनो ?

ये ते पुग्गला कम्मावरणेन समन्नागता, किलेसावरणेन समन्नागता, विपाकावरणेन समन्नागता, अस्सद्धा अच्छन्दिका दुप्पञ्ञा एळा[3], अभब्बा नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं। इमे वुच्चन्ति पुग्गला "अभब्बागमना"।

(१३) चरमलाभ प्राप्त करने में असमर्थ पुरुष

कौन-सा पुरुष चरमलाभ प्राप्त करने में असमर्थ है ?

जो पुरुष कर्म आवरण से युक्त, क्लेश आवरण से युक्त, विपाक आवरण से युक्त है और श्रद्धा से रहित, (कुशल कर्म की) इच्छा न करने वाला, दुष्प्रज्ञ, मूढ़ है। तथा नशे में धुत्त के कारण कुशल धर्मों के नियमों को जानने

---

१. सेखा – स्या०।

२. च पुग्गला – स्या०।

३. एला – सी०; जळा – स्या०, रो०।

में असमर्थ है। (इसलिए) इसे "चरम लाभ प्राप्त करने में असमर्थ" पुरुष कहा जाता है।

(१४) भब्बागमनो पुग्गलो

१३. कतमो च पुग्गलो भब्बागमनो ?

ये ते पुग्गला न कम्मावरणेन समन्नागता न किलेसावरणेन समन्नागता न विपाकावरणेन समन्नागता, सद्धा छन्दिका पञ्ञवन्तो[1] [N.22] अनेळा[2], भब्बा नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं। इमे वुच्चन्ति पुग्गला "भब्बागमना"।

(१४) चरमलक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ पुरुष

कौन-सा पुरुष चरमलक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ है ?

जो पुरुष कर्म आवरण से युक्त नहीं है, क्लेश आवरण से युक्त नहीं है, विपाक आवरण से युक्त नहीं है और श्रद्धा से युक्त, (कुशल कर्म की) इच्छा करने वाला, प्रज्ञावान, निर्दोष (निर्मल) है तथा प्रसन्नचित्त होने के कारण कुशल धर्मों के नियमों को जानने में समर्थ है। (इस प्रकार) ऐसे पुरुष को "चरमलक्ष्य की प्राप्ति में समर्थ" कहा जाता है।

(१५-१६) नियतो अनियतो पुग्गलो

१४. कतमो च पुग्गलो नियतो ?

पञ्च पुग्गला आनन्तरिका[3] ये च मिच्छादिट्ठिका नियता अट्ठ च अरियपुग्गला नियता। अवसेसा पुग्गला अनियता।

(१५-१६) नियत तथा अनियत पुरुष

कौन-सा पुरुष नियत है ?

पाँच (प्रकार के) आनन्तर्य कर्म करने वाले तथा मिथ्या दृष्टियों से सम्पन्न पुरुष नियत हैं और आठ (प्रकार के) आर्य पुरुष भी नियत हैं। शेष पुरुष अनियत हैं।

---

१. पञ्ञवन्ता – सी०।

२. सी०, रो० पोत्थकेसु नत्थि।

३. आनन्तरियका – रो०।

(१७-१८) पटिपन्नको फले ठितो पुग्गलो

१५. कतमो च पुग्गलो पटिपन्नको ?

चत्तारो मग्गसमङ्गिनो पुग्गला पटिपन्नका; चत्तारो फलसमङ्गिनो पुग्गला फले[१] ठिता[१]।

(१७-१८) आरूढ़ तथा फल में स्थित पुरुष

कौन-सा पुरुष (मार्ग में) आरूढ़ है ?

चार (प्रकार के) मार्ग सम्पन्न पुरुष (मार्ग में) आरूढ़ हैं। चार फल सम्पन्न पुरुष फल में स्थित हैं।

(१६) समसीसी पुग्गलो

१६. कतमो च पुग्गलो समसीसी ?

यस्स पुग्गलस्स अपुब्बं अचरिमं आसवपरियादानं च होति जीवितपरियादानं च। अयं वुच्चति पुग्गलो "समसीसी"।

(१६) समसीसी पुरुष

कौन-सा पुरुष समसीसी है ?

जिस पुरुष की आस्रवों (क्लेशों) की परिसमाप्ति और जीवन की परिसमाप्ति एक ही क्षण में होती है। (इस प्रकार) यह पुरुष "समसीसी" (एक ही क्षण में निर्वाण का लाभ तथा जीवन का क्षय) कहा जाता है।

(२०) ठितकप्पी पुग्गलो

१७. [S.268] कतमो च पुग्गलो ठितकप्पी ?

अयं च पुग्गलो सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो। अस्स कप्पस्स च उड्डय्हनवेला। अस्स नेव ताव कप्पो उड्डय्हेय्य यावायं

१-१. फलेट्ठिता – स्या०।

पुग्गलो न सोतापत्तिफलं सच्छिकरोति। अयं वुच्चति पुग्गलो "ठितकप्पी"। [R.14] सब्बेपि मग्गसमङ्गिनो पुग्गला ठितकप्पिनो।

(२०) स्थित-कल्पी पुरुष

कौन-सा पुरुष स्थित-कल्पी है ?

यह पुरुष स्रोतापत्ति फल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न है। यह कल्प को जलाने का समय है। यह जब तक कल्प को जला नहीं लेता, तब तक पुरुष स्रोतापत्ति फल का साक्षात्कार नहीं करता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "स्थित-कल्पी" कहा जाता है। सभी मार्ग युक्त पुरुष स्थित-कल्पी हैं।

(२१-२२) अरियो अनरियो पुग्गलो

१८. कतमो च पुग्गलो अरियो ?
अट्ठ अरियपुग्गला अरिया। अवसेसा पुग्गला अनरिया।

(२१-२२) आर्य तथा अनार्य पुरुष

कौन-सा पुरुष आर्य है ?

आठ (प्रकार के) आर्य पुरुष आर्य हैं। शेष पुरुष अनार्य हैं।

(२३-२५) सेक्खो असेक्खो नेवसेक्खनासेक्खो पुग्गलो

१९. [B.117] कतमो च पुग्गलो सेक्खो ?

चत्तारो मग्गसमङ्गिनो तयो फलसमङ्गिनो पुग्गला "सेक्खा"। अरहा असेक्खो। अवसेसा पुग्गला नेवसेक्खनासेक्खा।

(२३-२५) शैक्ष्य, अशैक्ष्य तथा न शैक्ष्य न अशैक्ष्य पुरुष

कौन-सा पुरुष शैक्ष्य है ?

चार मार्ग से युक्त तथा तीन फल से युक्त पुरुष "शैक्ष्य" हैं। अर्हत अशैक्ष्य है। शेष पुरुष न शैक्ष्य न अशैक्ष्य हैं।

(२६) तेविज्जो पुग्गलो

२०. [N.23] कतमो च पुग्गलो तेविज्जो ?

तीहि विज्जाहि समन्नागतो पुग्गलो "तेविज्जो"।

(२६) तेविद्य पुरुष

कौन-सा पुरुष तेविद्य है ?

तीनों ही विद्याओं से युक्त पुरुष "तेविद्य" है।

(२७) छळभिञ्ञो पुग्गलो

२१. कतमो च पुग्गलो छळभिञ्ञो ?

छहि अभिञ्ञाहि समन्नागतो पुग्गलो "छळभिञ्ञो"।

(२७) छः अभिज्ञा युक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष छः अभिज्ञा युक्त है ?

छः अभिज्ञाओं से युक्त पुरुष "छः अभिज्ञा युक्त" है।

(२८) सम्मासम्बुद्धो पुग्गलो

२२. कतमो च पुग्गलो सम्मासम्बुद्धो ?

इधेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति; तत्थ च सब्बञ्ञुतं पापुणाति, बलेसु[1] च वसीभावं। अयं वुच्चति पुग्गलो "सम्मासम्बुद्धो"।

(२८) सम्यकसम्बुद्ध पुरुष

कौन-सा पुरुष सम्यकसम्बुद्ध है ?

यहां कोई एक पुरुष पूर्व में न सुने गये धर्मों में स्वयं सत्यों को पूर्ण रूप से जानता है और उसमें सर्वज्ञता को प्राप्त होता है, तथा (दस प्रकार के) बलों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "सम्यकसम्बुद्ध" कहा जाता है।

---

१. फलेसु – रो०।

(२६) पच्चेकसम्बुद्धो पुग्गलो

२३. कतमो च पुग्गलो पच्चेकसम्बुद्धो ?

इधेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति; न च तत्थ सब्बञ्ञुतं पापुणाति, न च बलेसु वसीभावं। अयं वुच्चति पुग्गलो "पच्चेकसम्बुद्धो"।

(२६) प्रत्येकसम्बुद्ध पुरुष

कौन-सा पुरुष प्रत्येकसम्बुद्ध है ?

यहां कोई एक पुरुष पूर्व में न सुने गये धर्मों में स्वयं सत्यों को पूर्ण रूप से जानता है, पर उसमें न तो सर्वज्ञता प्राप्त होता है और न ही (दस) बलों पर अधिकार प्राप्त होता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "प्रत्येकसम्बुद्ध" कहा जाता है।

(३०) उभतोभागविमुत्तो पुग्गलो

२४. कतमो च पुग्गलो उभतोभागविमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति; पञ्ञाय चस्स दिस्वा आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो "उभतोभागविमुत्तो"।

(३०) दोनों प्रकार से विमुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष दोनों प्रकार से विमुक्त है ?

यहां कोई एक पुरुष आठ (प्रकार के) विमोक्षों को शरीर (नामकाय) से स्पर्श या साक्षात्कार करके (उनकी उपलब्धियों के साथ) विहार करता है और प्रज्ञा द्वारा देखकर वह आस्रवों को पूर्ण रूप से नष्ट कर देता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "दोनों प्रकार से विमुक्त" कहा जाता है।

(३१) पञ्ञाविमुत्तो पुग्गलो

२५. [S.270] कतमो च पुग्गलो पञ्ञाविमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो न हेव खो अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा

विहरति; पञ्ञाय चस्स दिस्वा आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो "पञ्ञाविमुत्तो"।

(३१) प्रज्ञाविमुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष प्रज्ञाविमुक्त है ?

यहां कोई एक पुरुष आठ विमोक्षों को शरीर (नामकाय) से स्पर्श या साक्षात्कार किए बिना ही विहार करता है और प्रज्ञा द्वारा देखकर वह आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "प्रज्ञाविमुक्त" कहा जाता है।

(३२) कायसक्खी पुग्गलो

२६. [N.24] कतमो च पुग्गलो कायसक्खी ?

इधेकच्चो पुग्गलो अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा [R.15] विहरति; पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो "कायसक्खी"।

(३२) कायसाक्षी पुरुष

कौन-सा पुरुष कायसाक्षी है ?

यहां कोई एक पुरुष आठ विमोक्षों को शरीर (नामकाय) से स्पर्श या साक्षात्कार करके विहार करता है और प्रज्ञा द्वारा देखकर वह कुछ आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "कायसाक्षी" [अर्थात् शरीर (नामकाय) से सत्य का साक्षात्कार करने वाला] कहा जाता है।

(३३) दिट्ठिप्पत्तो पुग्गलो

२७. कतमो च पुग्गलो दिट्ठिप्पत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। तथागतप्पवेदिता [B.118] चस्स धम्मा पञ्ञाय वोदिट्ठा होन्ति वोचरिता। पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो "दिट्ठिप्पत्तो"।

(३३) दृष्टिप्राप्त पुरुष

कौन-सा पुरुष दृष्टिप्राप्त है ?

यहां कोई एक पुरुष यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःख है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखसमुदय है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखनिरोध है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है"। वह तथागत द्वारा घोषित किए गए धर्मों को प्रज्ञा द्वारा पूर्ण रूप से जाना हुआ होता है, (और) अभ्यास किया हुआ होता है। प्रज्ञा द्वारा देखकर वह कुछ आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "दृष्टिप्राप्त" कहा जाता है।

(३४) सद्धाविमुत्तो पुग्गलो

२८. कतमो च पुग्गलो सद्धाविमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। तथागतप्पवेदिता चस्स धम्मा पञ्ञाय वोदिट्ठा होन्ति वोचरिता। पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति, नो च खो यथा दिट्ठिप्पत्तस्स। अयं वुच्चति पुग्गलो "सद्धाविमुत्तो"।

(३४) श्रद्धाविमुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष श्रद्धाविमुक्त है ?

यहां कोई एक पुरुष यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःख है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखसमुदय है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखनिरोध है" यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है"। वह तथागत द्वारा घोषित किए गए धर्मों को प्रज्ञा द्वारा पूर्ण रूप से जाना हुआ होता है, (और) अभ्यास किया हुआ होता है। प्रज्ञा द्वारा देखकर वह कुछ आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है, यद्यपि वह दृष्टिप्राप्त (पुरुष) के सदृश नहीं है। (इस प्रकार) यह पुरुष "श्रद्धाविमुक्त" कहा जाता है।

(३५) धम्मानुसारी पुग्गलो

२६. कतमो च पुग्गलो धम्मानुसारी ?

यस्स पुग्गलस्स सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नस्स पञ्ञिन्द्रियं अधिमत्तं होति, पञ्ञावाहिं पञ्ञापुब्बङ्गमं अरियमग्गं भावेति। अयं वुच्चति पुग्गलो "धम्मानुसारी"। सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो धम्मानुसारी फले ठितो दिट्ठिप्पत्तो।

(३५) धर्मानुसारी पुरुष

कौन-सा पुरुष धर्मानुसारी है ?

जो पुरुष स्रोतापत्तिफल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न है जिसकी प्रज्ञा-इन्द्रिय बलवती है, प्रज्ञा अग्रसर (पूर्वगामी) है, प्रज्ञा उत्तम है एवं जो आर्यमार्ग की भावना करता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "धर्मानुसारी" कहा जाता है। स्रोतापत्तिफल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न पुरुष धर्मानुसारी तथा फल पर स्थित (आरूढ़ पुरुष) दृष्टिप्राप्त है।

(३६) सद्धानुसारी पुग्गलो

३०. [S.272] कतमो च पुग्गलो सद्धानुसारी ?

[N.25] यस्स पुग्गलस्स सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नस्स सद्धिन्द्रियं अधिमत्तं होति, सद्धावाहिं[1] सद्धापुब्बङ्गमं अरियमग्गं भावेति। अयं वुच्चति पुग्गलो "सद्धानुसारी"। सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो सद्धानुसारी फले ठितो सद्धाविमुत्तो।

(३६) श्रद्धानुसारी पुरुष

कौन-सा पुरुष श्रद्धानुसारी है ?

जो पुरुष स्रोतापत्तिफल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न है जिसकी श्रद्धा-इन्द्रिय बलवती है, श्रद्धा अग्रसर (अर्थात् पूर्वगामी) है, श्रद्धा उत्तम है एवं जो आर्यमार्ग की भावना करता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "श्रद्धानुसारी" कहा जाता है। स्रोतापत्तिफल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न पुरुष श्रद्धानुसारी तथा फल पर आरूढ़ (पुरुष) श्रद्धाविमुक्त है।

---

१. पञ्ञावाहि – सी०, एवमुपरि पि।

(३१) सत्तक्खत्तुपरमो पुग्गलो

३१. कतमो च पुग्गलो सत्तक्खत्तुपरमो ?

इधेकच्चो पुग्गलो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया [R.16] सोतापन्नो[1] होति अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो[2]। सो सत्तक्खत्तुं देवे च मानुसे[3] च सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करोति। अयं वुच्चति पुग्गलो "सत्तक्खत्तुपरमो"।

(३७) सातबार जन्म ग्रहण करने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष सातबार जन्म ग्रहण करने वाला है ?

यहां कोई एक पुरुष तीन संयोजनों का पूर्ण प्रहाण करके स्रोतापन्न होता है और अधिक दुःख प्राप्त नहीं करता है, (वह) नियत एवं सम्बोधिपरायण है। वह सातबार देवलोक तथा मनुष्यलोक में विचरण और संसरण करता हुआ दुःख का अन्त करता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "सातबार जन्म ग्रहण करने वाला" कहा जाता है।

(३८) कोलङ्कोलो पुग्गलो

३२. कतमो च पुग्गलो कोलङ्कोलो ?

इधेकच्चो पुग्गलो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो होति अविनिपातधम्मो [B.119] नियतो सम्बोधिपरायनो। सो द्वे वा तीणि वा कुलानि सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करोति। अयं वुच्चति पुग्गलो "कोलङ्कोलो"।

(३८) एक कुल से दूसरे कुल में जाने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष एक कुल से दूसरे कुल में जाने वाला है ?

यहां कोई एक पुरुष तीन संयोजनों का पूर्ण प्रहाण करके स्रोतापन्न होता है और अधिक दुःख प्राप्त नहीं करता है, नियत एवं सम्बोधिपरायण है। वह दो या तीन कुलों तक ही विचरण और संसरण करता हुआ दुःख का अन्त करता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "एक कुल से दूसरे कुल में जाने वाला" कहा जाता है।

---

१. पटिपन्नो – रो०।

२. सम्बोधिपरायणो – सी०।

३. मनुस्से – सी०; मानुस्से – रो०।

(३६) एकबीजी पुग्गलो

३३. कतमो च पुग्गलो एकबीजी ?

इधेकच्चो पुग्गलो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो होति अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो। सो एकंयेव[१] मानुसकं[१] भवं निब्बत्तेत्वा दुक्खस्सन्तं करोति। अयं वुच्चति पुग्गलो "एकबीजी"।

(३६) एकबीज वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष एकबीज वाला है ?

यहां कोई एक पुरुष तीन संयोजनों का पूर्ण प्रहाण करके स्रोतापन्न होता है और अधिक दुःख प्राप्त नहीं करता है, नियत एवं सम्बोधिपरायण है। वह एकबार मनुष्य लोक के भव में उत्पन्न होकर दुःख का अन्त करता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "एकबीज वाला" कहा जाता है।

(४०) सकदागामी पुग्गलो

३४. कतमो च पुग्गलो सकदागामी ?

इधेकच्चो पुग्गलो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी होति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करोति। अयं वुच्चति पुग्गलो "सकदागामी"।

(४०) सकृदागामी पुरुष

कौन-सा पुरुष सकृदागामी है ?

यहां कोई एक पुरुष तीन संयोजनों का पूर्ण प्रहाण करके, राग, द्वेष, मोह को दुर्बल कर सकृदागामी होता है, इस लोक में एकबार आकर दुःख का अन्त करता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "सकृदागामी" कहा जाता है।

(४१) अनागामी पुग्गलो

३५. [N.26] कतमो च पुग्गलो अनागामी ?

इधेकच्चो पुग्गलो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया

१-१. एतंयेव मानुस्सकं – रो०।

ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं वुच्चति पुग्गलो "अनागामी"।

(४१) अनागामी पुरुष

कौन-सा पुरुष अनागामी है ?

यहां कोई एक पुरुष पाँच ओरम्भागीय संयोजनों का पूर्ण प्रहाण करके देवलोक में जन्म ग्रहण करता है। वहां से परिनिर्वाण प्राप्त कर इस लोक में (पुनः) लौटने वाला नहीं होता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "अनागामी" कहा जाता है।

(४२) अन्तरापरिनिब्बायी पुग्गलो

३६. [S.274] कतमो च पुग्गलो अन्तरापरिनिब्बायी ?

इधेकच्चो पुग्गलो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। सो उपपन्नं[1] वा समनन्तरा अप्पत्तं वा वेमज्झं आयुप्पमाणं अरियमग्गं सञ्जनेति उपरिट्ठिमानं संयोजनानं पहानाय। अयं वुच्चति पुग्गलो "अन्तरापरिनिब्बायी"।

(४२) मध्य मार्ग में निर्वाण प्राप्त पुरुष

कौन-सा पुरुष मध्य मार्ग में निर्वाण प्राप्त करने वाला होता है ?

यहां कोई एक पुरुष पांच ओरम्भागीय संयोजनों का पूर्ण प्रहाण कर देवलोक में जन्म ग्रहण करता है। वहां से परिनिर्वाण प्राप्त कर इस लोक में (पुनः) लौटने वाला नहीं होता है। वह (देवलोक में) उत्पन्न होने (के साथ-साथ) या उसके अनन्तर (परिनिवार्ण को) प्राप्त करता है या मध्य (मार्ग) में आयु प्रमाण के शेष (बचे) रहने पर ही आर्य मार्ग को प्राप्त करता है। वह उपरस्थ संयोजनों का प्रहाण किया हुआ रहता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "मध्य मार्ग में निर्वाण प्राप्त करने वाला" कहा जाता है।

(४३) उपहच्चपरिनिब्बायी पुग्गलो

३७. कतमो च पुग्गलो उपहच्चपरिनिब्बायी ?

इधेकच्चो पुग्गलो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं [R.17] संयोजनानं

---

१. उप्पन्नं – सी०, स्या०।

परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। सो अतिक्कमित्वा वेमज्झं आयुप्पमाणं उपहच्च वा कालकिरियं[1] अरियमग्गं सञ्जनेति उपरिट्ठिमानं संयोजनानं पहानाय। अयं वुच्चति पुग्गलो "उपहच्चपरिनिब्बायी"।

(४३) आधे से अधिक पार करने पर परिनिर्वाण प्राप्त पुरुष

कौन-सा पुरुष आधे से अधिक पार करने पर परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला होता है ?

यहां कोई एक पुरुष पाँच ओरम्भागीय संयोजनों का पूर्ण प्रहाण कर देवलोक में जन्म ग्रहण करता है, वहां से परिनिर्वाण प्राप्त कर इस लोक में (पुनः) लौटने वाला नहीं होता है। वह अतिक्रमण करके मध्य (मार्ग) में आयु प्रमाण के आधे से अधिक पार करने या मृत्यु के निकट जाकर आर्य मार्ग को प्राप्त करता है। वह (पुरुष) उपरस्थ संयोजनों का प्रहाण किया हुआ रहता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "आधे से अधिक पार करने पर परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला" कहा जाता है।

(४४) असङ्खारपरिनिब्बायी पुग्गलो

३८. कतमो च पुग्गलो असङ्खारपरिनिब्बायी ?

इधेकच्चो पुग्गलो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ [B.120] परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। सो असङ्खारेन अरियमग्गं सञ्जनेति उपरिट्ठिमानं संयोजनानं पहानाय। अयं वुच्चति पुग्गलो "असङ्खारपरिनिब्बायी"।

(४४) दुःख रहित परिनिर्वाण प्राप्त पुरुष

कौन-सा पुरुष दुःख रहित परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला होता है ?

यहां कोई एक पुरुष पाँच ओरम्भागीय संयोजनों का पूर्ण प्रहाण कर देवलोक में जन्म ग्रहण करता है। वहां से परिनिर्वाण प्राप्त कर इस लोक में (पुनः) न लौटने वाला होता है। वह दुःख रहित हो आर्य मार्ग को प्राप्त करता है। वह

---

१. काळकिरियं– सी०।

(पुरुष) उपरस्थ संयोजनों का प्रहाण किया रहता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "दुःख रहित परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला" कहा जाता है।

(४५) ससङ्खारपरिनिब्बायी पुग्गलो

३६. कतमो च पुग्गलो ससङ्खारपरिनिब्बायी ?

[N.27] इधेकच्चो पुग्गलो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। सो ससङ्खारेन अरियमग्गं सञ्जनेति उपरिट्ठिमानं संयोजनानं पहानाय। अयं वुच्चति पुग्गलो "ससङ्खारपरिनिब्बायी"।

(४५) दुःख युक्त परिनिर्वाण प्राप्त पुरुष

कौन-सा पुरुष दुःख युक्त परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला होता है ?

यहां कोई एक पुरुष पाँच ओरम्भागीय संयोजनों का पूर्ण प्रहाण कर देवलोक में जन्म ग्रहण करता है। वहां से परिनिर्वाण प्राप्त कर इस लोक में (पुनः) न लौटने वाला होता है। वह दुःख युक्त हो आर्य मार्ग को प्राप्त करता है। वह (पुरुष) उपरस्थ संयोजनों का प्रहाण किया रहता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "दुःख युक्त परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला" कहा जाता है।

(४६) उद्धंसोतो अकनिट्ठगामी पुग्गलो

४०. कतमो च पुग्गलो उद्धंसोतो अकनिट्ठगामी ?

इधेकच्चो पुग्गलो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। सो अविहा चुतो अतप्पं गच्छति, अतप्पा चुतो सुदस्सं गच्छति, सुदस्सा चुतो सुदस्सिं गच्छति, सुदस्सिया[1] चुतो अकनिट्ठं गच्छति; अकनिट्ठे अरियमग्गं सञ्जनेति उपरिट्ठिमानं संयोजनानं पहानाय। अयं वुच्चति पुग्गलो "उद्धंसोतो अकनिट्ठगामी"।

(४६) मार्ग स्रोत तथा ऊपर की ओर जाने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष मार्ग स्रोत तथा ऊपर की ओर जाने वाला होता है ?

---

१. सुदस्सा – सी०।

यहां कोई एक पुरुष पाँच ओरम्भागीय संयोजनों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर, देवलोक में जन्म ग्रहण करता है। वहां से परिनिर्वाण प्राप्त कर इस लोक में (पुनः) न लौटने वाला होता है। वह अविह (ब्रह्मलोक) से च्युत होकर अतप्प (ब्रह्मलोक) को जाता है, अतप्प (ब्रह्मलोक) से च्युत होकर सुदस्स (ब्रह्मलोक) को जाता है, सुदस्स (ब्रह्मलोक) से च्युत होकर सुदस्सी (ब्रह्मलोक) को जाता है, सुदस्सी (ब्रह्मलोक) से च्युत होकर अकनिट्ठ (ब्रह्मलोक) को जाता है, तदनन्तर अकनिट्ठ (ब्रह्मलोक) में जाकर आर्य मार्ग को प्राप्त करता है। वह (पुरुष) ऊपरी संयोजनों का प्रहाण किया हुआ रहता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "मार्ग स्रोत तथा ऊपर की ओर जाने वाला" कहा जाता है।

(४७-४८) सोतापन्नो सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो

४१. कतमो[1] च पुग्गलो सोतापन्नो सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो[1] ?

[S.276] तिण्णं संयोजनानं पहानाय पटिपन्नो पुग्गलो सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो। यस्स पुग्गलस्स तीणि संयोजनानि पहीनानि— अयं वुच्चति पुग्गलो "सोतापन्नो"।

(४७-४८) स्रोतापन्न तथा स्रोतापत्तिफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न पुरुष

कौन-सा पुरुष स्रोतापन्न तथा स्रोतापत्तिफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न है ?

तीन संयोजनों के प्रहाण के लिए आरूढ़ पुरुष स्रोतापत्तिफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न है। जिस पुरुष के तीन संयोजन प्रहीण हैं— (इस प्रकार) यह पुरुष "स्रोतापन्न" कहा जाता है।

(४६-५०) सकदागामी सकदागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो

४२. कामरागब्यापादानं तनुभावाय पटिपन्नो पुग्गलो सकदागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो। यस्स पुग्गलस्स कामरागब्यापादा तनुभूता— अयं वुच्चति पुग्गलो "सकदागामी"।

१-१. सी०, रो० पोत्थकेसु नत्थि।

(४६-५०) सकृदागामी तथा सकृदागामीफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न पुरुष

कामराग, ब्यापाद को दुर्बल करने के लिए प्रतिपन्न पुरुष सकृदागामीफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न है। जिस पुरुष के कामराग एवं ब्यापाद दुर्बल हो गए हैं— (इस प्रकार) यह पुरुष "सकृदागामी" कहा जाता है।

(५१-५२) अनागामी अनागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो

४३. कामरागब्यापादानं अनवसेसप्पहानाय पटिपन्नो [R.18] पुग्गलो अनागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो। यस्स पुग्गलस्स कामरागब्यापादा अनवसेसा पहीना— अयं वुच्चति पुग्गलो "अनागामी"।

(५१-५२) अनागामी तथा अनागामीफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न पुरुष

कामराग एवं ब्यापाद के सम्पूर्ण प्रहाण के लिए प्रतिपन्न पुरुष अनागामीफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न है। जिस पुरुष के कामराग एवं ब्यापाद पूर्ण रूप से प्रहीण हैं— (इस प्रकार) यह पुरुष "अनागामी" कहा जाता है।

(५३-५४) अरहा अरहत्तफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो

४४. [N.28]रूपरागअरूपरागमानउद्धच्चअविज्जाय अनवसेसप्पहानाय पटिपन्नो पुग्गलो अरहत्तफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो। यस्स पुग्गलस्स [B.121] रूपरागो अरूपरागो मानो उद्धच्चं अविज्जा अनवसेसा पहीना— अयं वुच्चति पुग्गलो "अरहा"।

एककनिद्देसो निट्ठितो।

(५३-५४) अर्हत तथा अर्हतफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न पुरुष

रूपराग, अरूपराग, अहंकार (मान), औद्धत्य तथा अविद्या के सम्पूर्ण प्रहाण के लिए यत्नवान पुरुष अर्हतफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न है। जिस पुरुष के रूपराग, अरूपराग, अहंकार (मान), औद्धत्य तथा अविद्या सम्पूर्ण रूप से प्रहीण हैं — (इस प्रकार) यह पुरुष "अर्हत" कहा जाता है।

एक-एक निर्देश समाप्त।

दुतियो परिच्छेदो

२. दुकपुग्गलपञ्ञत्ति

(१.क) कोधनो पुग्गलो

१. [N.29; S.278] कतमो च पुग्गलो कोधनो ?
तत्थ कतमो कोधो ?

यो कोधो कुज्झना कुज्झितत्तं दोसो दुस्सना[१] दुस्सितत्तं[१] ब्यापत्ति ब्यापज्जना[२] ब्यापज्जितत्तं[३] विरोधो पटिविरोधो चण्डिक्कं[४] असुरोपो अनत्तमनता चित्तस्स– अयं वुच्चति 'कोधो'।

यस्स पुग्गलस्स अयं कोधो अप्पहीनो[५]– अयं वुच्चति पुग्गलो "कोधनो"।

२. दो-दो प्रकार के पुरुषों का प्रज्ञापन

(१.क) क्रोधी पुरुष

कौन-सा पुरुष क्रोधी है ?
तब क्रोध क्या है ?

जो क्रोध, क्रोध करना, क्रोध का भाव, द्वेष, द्वेष करना, द्वेष का भाव, ब्यापाद, ब्यापाद करना, ब्यापाद का भाव, विरोध, प्रतिविरोध, प्रचण्ड-भाव, कर्कश-भाव, चित्त की अप्रसन्नता है– इसे (ही) 'क्रोध' कहा जाता है।

जिस पुरुष का यह क्रोध अप्रहीण है – (इस प्रकार का) यह पुरुष "क्रोधी" कहा जाता है।

१-१. दूसना दूसितत्तं – स्या०।
२. व्यापज्जना – सी०, रो०, एवमुपरि पि।
३. रो० पोत्थके नत्थि।
४. चण्डित्तं – रो०।
५. अप्पहीणो – सी०।

(ख) उपनाही पुग्गलो

२. कतमो च पुग्गलो उपनाही ?

तत्थ कतमो उपनाहो ?

पुब्बकालं कोधो अपरकालं उपनाहो। यो एवरूपो उपनाहो उपनय्हना[१] उपनय्हितत्तं[१] अट्ठपना[२] ठपना सण्ठपना अनुसंसन्दना[३] अनुप्पबन्धना[४] दळ्हीकम्मं[५] कोधस्स– अयं वुच्चति 'उपनाहो'।

यस्स पुग्गलस्स अयं[६] उपनाहो अप्पहीनो– अयं वुच्चति पुग्गलो "उपनाही"।

(ख) उपनाही पुरुष

कौन-सा पुरुष उपनाही (बैरी) है ?

तब उपनाह (बैर) क्या है ?

सर्वप्रथम क्रोध आता है, उसके बाद उपनाह आता है। जो इस प्रकार का उपनाह, उपनाह करना, उपनाह का भाव, अस्थापना, स्थापना, संस्थापना, अनुसंसन्दना, अनुप्रबन्धना, क्रोध का दृढ़ीकरण है– इसे (ही) 'उपनाह' कहा जाता है।

जिस पुरुष का यह उपनाह अप्रहीण है– (इस प्रकार का) यह पुरुष "उपनाही" कहा जाता है।

(२.क) मक्खी पुग्गलो

३. कतमो च पुग्गलो मक्खी ?

तत्थ कतमो मक्खो ?

यो मक्खो मक्खायना[७] मक्खायितत्तं[७] निट्ठुरियं[८] निट्ठुरियकम्मं[८]– अयं वुच्चति 'मक्खो'।

१-१. उपनहना उपनाहितत्तं – स्या०।

२. अठपना – रो०।

३. अनुपसण्ठपना – रो०।

४. अनुपबन्धना – रो०।

५. दळ्हिकम्मं – रो०।

६. रो० पोत्थके नत्थि।

७-७. मक्खीयना मक्खीयितत्तं – सी०।

८-८. निद्धुनीयं निद्धुनीयकम्मं – रो०।

[N.30] यस्स पुग्गलस्स अयं मक्खो अप्पहीनो– अयं वुच्चति पुग्गलो "मक्खी"।

(२.क) निन्दक पुरुष

कौन-सा पुरुष निन्दक है ?

तब निन्दा क्या है ?

जो निन्दा, निन्दा करना, निन्दा का भाव, निष्ठुरता, निष्ठुर कर्म है– इसे (ही) 'निन्दा' कहा जाता है।

जिस पुरुष का यह निन्दा अप्रहीण है– (इस प्रकार का) यह पुरुष "निन्दक" कहा जाता है।

(ख) पळासी पुग्गलो

४. कतमो च पुग्गलो पळासी[१] ?

तत्थ कतमो पळासो ?

यो पळासो पळासायना [R.19] पळासायितत्तं पळासाहारो[२] विवादट्ठानं युगग्गाहो[३] अप्पटिनिस्सग्गो[४] – अयं वुच्चति 'पळासो'।

यस्स पुग्गलस्स अयं पळासो अप्पहीनो– अयं वुच्चति पुग्गलो "पळासी"।

(ख) झगड़ालू पुरुष

कौन-सा पुरुष झगड़ालू है ?

तब झगड़ा क्या है ?

जो झगड़ा, झगड़ा करना, झगड़ा का भाव, झगड़ा करने का उपाय, विवाद का स्थान, दो लोगों का झगड़ना, झगड़ने से अलग नहीं होना है– इसे (ही) 'झगड़ा' कहा जाता है।

---

१. पलासी – सी०, स्या०, एवमुपरि पि।

२. पळासाकारो – रो०।

३. युद्धग्गाहो – रो०।

४. अपरिनिस्सग्गो – रो०।

जिस पुरुष का यह झगड़ा अप्रहीण है— (इस प्रकार का) यह पुरुष "झगड़ालू" कहा जाता है।

(३.क) इस्सुकी पुग्गलो

५. [B.122] कतमो च पुग्गलो इस्सुकी ?

तत्थ कतमा इस्सा ?

या परलाभसक्कारगरूकारमाननवन्दनपूजनासु इस्सा इस्सायना इस्सायितत्तं उसूया[१] उसूयना उसूयितत्तं[१]— अयं वुच्चति 'इस्सा'।

यस्स पुग्गलस्स अयं इस्सा अप्पहीना— अयं वुच्चति पुग्गलो "इस्सुकी"।

(३.क) ईर्ष्यालु पुरुष

कौन-सा पुरुष ईर्ष्यालु है ?

तब ईर्ष्या क्या है ?

जो दूसरे का लाभ, सत्कार, सम्मान, आदर, अभिवादन, पूजा सहन नहीं कर सकता, वही ईर्ष्या, ईर्ष्या करना, ईर्ष्या का भाव, डाह, डाह करना, डाह का भाव है— इसे (ही) 'ईर्ष्या' कहा जाता है।

जिस पुरुष का यह ईर्ष्या अप्रहीण है— (इस प्रकार का) यह पुरुष "ईर्ष्यालु" कहा जाता है।

(ख) मच्छरी पुग्गलो

६. कतमो च पुग्गलो मच्छरी ?

तत्थ कतमं मच्छरियं ?

पञ्च मच्छरियानि— आवासमच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभमच्छरियं, वण्णमच्छरियं, धम्ममच्छरियं। यं एवरूपं मच्छेरं[२] मच्छरायना मच्छरायितत्तं

१-१. उस्सुया उस्सुयना उस्सुयितत्तं – रो०।

२. मच्छरियं – रो०।

वेविच्छं कदरियं कटुकञ्चुकता अग्गहितत्तं चित्तस्स– इदं वुच्चति 'मच्छरियं'।

[N.31] यस्स पुग्गलस्स इदं मच्छरियं अप्पहीनं– अयं वुच्चति पुग्गलो "मच्छरी"।

(ख) कंजूस पुरुष

कौन-सा पुरुष कंजूस है ?

तब कंजूसी क्या है ?

कंजूसी के पाँच प्रकार हैं– आवास सम्बन्धी कंजूसी, कुल (वंश) सम्बन्धी कंजूसी, लाभ सम्बन्धी कंजूसी, वर्ण (जाति या सौन्दर्य) सम्बन्धी कंजूसी, धर्म सम्बन्धी कंजूसी। जो इस प्रकार की कंजूसी, कंजूसी करना, कंजूसी का भाव, अनियमित उत्कण्ठा, लोलुपता, कठोर आविर्भाव, चित्त की असंयमितता है– इसे (ही) 'कंजूसी' कहा जाता है।

जिस पुरुष की यह कंजूसी अप्रहीण है– (इस प्रकार का) यह पुरुष "कंजूस" कहा जाता है।

(४.क) सठो पुग्गलो

७. [S.280] कतमो च पुग्गलो सठो[१] ?
तत्थ कतमं साठेय्यं ?

इधेकच्चो सठो[२] होति परिसठो। यं तत्थ सठं सठता साठेय्यं कक्करता[३] कक्करियं[३] परिक्खतत्ता[४] पारिक्खत्तियं[५]– इदं वुच्चति 'साठेय्यं'।

यस्स पुग्गलस्स इदं साठेय्यं अप्पहीनं– अयं वुच्चति पुग्गलो "सठो"।

---

१. सथो – स्या०, एवमुपरि पि।
२. पुग्गलो सठो – सी०; पुग्गलो सथो – स्या०।
३-३. कक्खलता कक्खलियं – स्या०।
४. परिक्खतता – स्या०, रो०।
५. परिक्खत्तियं – सी०, रो०; परिक्खतियं – स्या०।

(४.क) धूर्त पुरुष

कौन-सा पुरुष धूर्त है ?

तब धूर्तता क्या है ?

यहां कोई एक (पुरुष) धूर्त एवं चतुर होता है। वहां जो धूर्त, धूर्तता, धूर्त होने का भाव, कर्कशता, कठोरता, बनावटीपन, धोखा देने का भाव है— इसे (ही) 'धूर्तता' कहा जाता है।

जिस पुरुष की यह धूर्तता अप्रहीण है— (इस प्रकार का) यह पुरुष "धूर्त" कहा जाता है।

(ख) मायावी पुग्गलो

८. कतमो च पुग्गलो मायावी ?

तत्थ कतमा माया ?

इधेकच्चो पुग्गलो कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा तस्स पटिच्छादनहेतु पापिकं[१] इच्छं पणिदहति। "मा मं जञ्ञा"ति इच्छति। "मा मं जञ्ञा"ति सङ्कप्पति[२]। "मा मं जञ्ञा" ति वाचं भासति। "मा मं जञ्ञा"ति कायेन परक्कमति। या एवरूपा माया मायाविता अच्चासरा[३] वञ्चना निकति विकिरणा[४] परिहरणा गूहना[५] परिगूहना[५] छादना पटिच्छादना[६] अनुत्तानीकम्मं अनाविकम्मं वोच्छादना[७] पापकिरिया— अयं वुच्चति 'माया'।

यस्स पुग्गलस्स अयं माया अप्पहीना— अयं वुच्चति पुग्गलो "मायावी"।

---

१. पापकं – रो०।
२. सङ्कप्पेति – सी०, रो०।
३. अच्चसरा – सी०; अच्छादना – रो०।
४. निकिरणा – सी०; विकीरणा – स्या०; निकरणा – रो०।
५-५. गुहना परिगुहना – स्या०, रो०।
६. परिछादना – सी०; परिच्छादना – स्या०, रो०।
७. विच्छादना – रो०।

(ख) मायावी पुरुष

कौन-सा पुरुष मायावी (ढोंगी) है ?

तब माया (ढोंग) क्या है ?

यहां कोई एक पुरुष काय (शरीर) से दुराचरण करके, वाणी से दुराचरण करके, मन से दुराचरण करके, उस पाप की इच्छा को छिपाने हेतु (मन में) आकांक्षा करता है। (और कहता है कि) "मुझे कोई नहीं जानता है", इस प्रकार की इच्छा करता है। "मुझे कोई नहीं जानता है", इस प्रकार का संकल्प करता है। "मुझे कोई नहीं जानता है", इस प्रकार की वाणी बोलता है। "मुझे कोई नहीं जानता है", इस प्रकार काय द्वारा प्रदर्शित करता है। जो इस प्रकार की माया है या ऐसा मायावीपन, गोपन (छिपाना), ठगना, ठगी, विखरा हुआ पन, परिहरण, गुय्हन, परिगुय्हन, छादन, प्रतिछादन, अस्पष्टीकरण कर्म, अप्रकटीकरण कर्म, आच्छादन, पापकर्म है— इसे (ही) 'माया' कहा जाता है।

जिस पुरुष की यह माया (ढोंग) अप्रहीण है— (इस प्रकार का) यह पुरुष "मायावी" कहा जाता है।

(५.क) अहिरिको पुग्गलो

६. [N.32] कतमो च पुग्गलो अहिरिको ?

तत्थ कतमं अहिरिकं ?

[R.20] यं न हिरीयति[1] हिरियितब्बेन[2] न हिरीयति पापकानं अकुसलानं धम्मानं समापत्तिया— इदं वुच्चति 'अहिरिकं'।

इमिना अहिरिकेन समन्नागतो पुग्गलो "अहिरिको"।

(५.क) निर्लज्ज पुरुष

कौन-सा पुरुष निर्लज्ज है ?

तब निर्लज्जता क्या है ?

जो पापयुक्त अकुशल धर्मों (कर्मों) के सम्पादन में (आत्म) लज्जा नहीं करता है, (आत्म) लज्जा करने योग्य बात में भी जरा भी लज्जा नहीं करता है— इसे (ही) 'निर्लज्जता' कहा जाता है।

---

१. हिरियति — स्या०, रो०।

२. हिरीयितब्बेन — सी०।

इस प्रकार की निर्लज्जता से युक्त पुरुष "निर्लज्ज" होता है।

(ख) अनोत्तप्पी पुग्गलो

१०. [B.123] कतमो च पुग्गलो अनोत्तप्पी ?

तत्थ कतमं अनोत्तप्पं ?

यं न ओत्तप्पति ओत्तप्पितब्बेन न ओत्तप्पति पापकानं अकुसलानं धम्मानं समापत्तिया– इदं वुच्चति 'अनोत्तप्पं'।

इमिना अनोत्तप्पेन समन्नागतो पुग्गलो "अनोत्तप्पी"।

(ख) अनपत्राप्यी पुरुष

कौन-सा पुरुष अनपत्राप्यी है ?

तब अनपत्राप्य क्या है ?

जो पापयुक्त अकुशल धर्मों (कर्मों) के सम्पादन में अपत्राप्य नहीं करता है, अपत्राप्य करने योग्य बात में भी जरा भी अपत्राप्य नहीं करता है— इसे (ही) 'अनपत्राप्य' कहा जाता है।

इस प्रकार के अनपत्राप्य से युक्त पुरुष "अनपत्राप्यी" होता है।

(६.क) दुब्बचो पुग्गलो

११. कतमो च पुग्गलो दुब्बचो ?

तत्थ कतमो दोवचस्सता ?

सहधम्मिके वुच्चमाने दोवचस्सायं दोवचस्सियं दोवचस्सता विप्पटिकुलग्गाहिता[१] विपच्चनीकसातता[२] अनादरियं अनादरियता अगारवता अप्पतिस्सवता[३]– अयं वुच्चति 'दोवचस्सता'।

इमाय[४] दोवचस्सताय[४] समन्नागतो पुग्गलो "दुब्बचो"।

---

१. विप्पटिकूलगाहिता – सी०, स्या०, रो०।

२. विपच्चनिकसातता – सी०।

३. अप्पटिस्सवता – स्या०।

४-४. ताय – सी०।

(६.क) अवज्ञाकारी पुरुष

कौन-सा पुरुष अवज्ञाकारी है ?

तब अवज्ञाकारिता क्या है ?

जब सह-धार्मिकों के द्वारा कहे जाने पर अवज्ञाकारिता, अवज्ञाकारिता का भाव, अवज्ञाकारी होने का भाव, प्रतिकूल होने का भाव, शत्रुता बनाए रखने का भाव, अनादर, अनादर का भाव, अगौरव, अकर्तव्य का भाव प्रकट करता है— इसे (ही) 'अवज्ञाकारिता' कहा जाता है।

इस प्रकार की अवज्ञाकारिता से युक्त पुरुष "अवज्ञाकारी" होता है।

(ख) पापमित्तो पुग्गलो

१२. [S.282] कतमो च पुग्गलो पापमित्तो ?

तत्थ कतमा पापमित्तता ?

ये ते पुग्गला अस्सद्धा दुस्सीला अप्पस्सुता [N.33] मच्छरिनो दुप्पञ्ञा, या तेसं सेवना निसेवना संसेवना भजना सम्भजना भत्ति सम्भत्ति सम्पवङ्कता[1]— अयं वुच्चति 'पापमित्तता'।

इमाय पापमित्तताय समन्नागतो पुग्गलो "पापमित्तो"।

(ख) पापमित्र पुरुष

कौन-सा पुरुष पापमित्र है ?

तब पापमित्रता क्या है ?

जो पुरुष अश्रद्धावान, दुश्शील, अल्पश्रुत, मात्सर्य, दुष्प्रज्ञ हैं और उन्हीं की जो संगति, अच्छी संगति, सेवा, भजन, भजन भाव, भक्ति, भक्तिभाव करते हैं— इसे (ही) 'पापमित्रता' कहा जाता है।

इस प्रकार की पापमित्रता से युक्त पुरुष "पापमित्र" होता है।

---

१. सी०, स्या० पोत्थकेसु नत्थि।

(७.क) इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारो पुग्गलो

१३. कतमो च पुग्गलो इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारो ?
तत्थ कतमा इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारता ?

इधेकच्चो पुग्गलो[१] चक्खुना रूपं दिस्वा निमित्तग्गाही होति अनुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय न पटिपज्जति न रक्खति चक्खुन्द्रियं चक्खुन्द्रिये न संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा ... पे० ... घानेन गन्धं घायित्वा ... पे० ... जिव्हाय रसं सायित्वा ... पे० ... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा ... पे० ... मनसा धम्मं विञ्ञाय निमित्तग्गाही होति अनुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय न पटिपज्जति न रक्खति मनिन्द्रियं [R.21] मनिन्द्रिये न संवरं आपज्जति। या इमेसं छन्नं इन्द्रियानं अगुत्ति अगोपना अनारक्खो असंवरो– अयं वुच्चति 'इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारता'।

इमाय इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारताय समन्नागतो पुग्गलो "इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारो"।

(७.क) इन्द्रिय द्वारों पर असंयत पुरुष

कौन-सा पुरुष इन्द्रिय द्वारों पर असंयत है ?
तब इन्द्रिय द्वारों पर असंयमता क्या है ?

यहां कोई एक पुरुष चक्षु से रूप देखकर (उसके प्रति) निमित्तग्राही तथा अनुव्यंजनग्राही होता है। जिस चक्षु-इन्द्रिय के असंयत रहने से लोभ-दौर्मनस्य आदि पापमय अकुशल धर्मों की उत्पत्ति हो सकती है, उसे संयत रखने का प्रयास नहीं करता है, चक्षु-इन्द्रिय की रक्षा नहीं करता है, चक्षु-इन्द्रिय को संयत नहीं रखता है। श्रोत्र से शब्द सुनकर ... घ्राण से गन्ध को ग्रहणकर ... जिह्वा से रसास्वादन कर ... काय से स्पर्शकर ... मन से धर्म को जानकर, (उसके प्रति) निमित्तग्राही तथा अनुव्यंजनग्राही होता है। जिस मन-इन्द्रिय के असंयत रहने से लोभ-दौर्मनस्य आदि पापमय अकुशल धर्मों की उत्पत्ति हो सकती है, उसे संयत रखने का प्रयास

नहीं करता है, मन-इन्द्रिय की रक्षा नहीं करता है, मन-इन्द्रिय को संयत नहीं रखता है। जो इन छः इन्द्रियों की रक्षा नहीं करता, नियन्त्रित नहीं करता, रक्षित नहीं करता, संयत नहीं करता है – इसे (ही) इन्द्रिय द्वारों पर 'असंयमता' कहा जाता है।

इस प्रकार इन्द्रिय द्वारों पर असंयमता से युक्त पुरुष "इन्द्रिय द्वारों पर असंयत" होता है।

(ख) भोजने अमत्तञ्ञू पुग्गलो

१४. कतमो च पुग्गलो भोजने अमत्तञ्ञू ?

तत्थ कतमा भोजने अमत्तञ्ञुता ?

[N.34] इधेकच्चो पुग्गलो अप्पटिसङ्खा अयोनिसो [B.124] आहारं आहारेति दवाय मदाय मण्डनाय विभूसनाय, या तत्थ असन्तुट्ठिता अमत्तञ्ञुता अप्पटिसङ्खा भोजने– अयं वुच्चति 'भोजने अमत्तञ्ञुता'।

इमाय भोजने अमत्तञ्ञुताय समन्नागतो पुग्गलो "भोजने अमत्तञ्ञू"।

(ख) भोजन में अमात्रज्ञ पुरुष

कौन-सा पुरुष भोजन में अमात्रज्ञ है ?

तब भोजन में अमात्रज्ञता क्या है ?

यहां कोई एक पुरुष अज्ञानता पूर्वक अनुचित ढंग से आहार को क्रीड़ा के लिए, मद के लिए, शरीर को मण्डित करने के लिए, विभूषित करने के लिए ग्रहण करता है और वहाँ जो भोजन में असन्तुष्टता, अमात्रज्ञता, अज्ञानता है– इसे (ही) 'भोजन में अमात्रज्ञता' कहा जाता है।

इस प्रकार भोजन में अमात्रज्ञता से युक्त पुरुष "भोजन में अमात्रज्ञ" होता है।

(८.क) मुट्ठस्सति पुग्गलो

१५. [S.284] कतमो च पुग्गलो मुट्ठस्सति ?

तत्थ कतमं मुट्ठस्सच्चं[१] ?

या अस्सति[२] अननुस्सति अप्पटिस्सति अस्सति[३] अस्सरणता[४] अधारणता पिलापनता[५] सम्मुसनता[६] – इदं वुच्चति 'मुट्ठस्सच्चं'।

इमिना मुट्ठस्सच्चेन समन्नागतो पुग्गलो ''मुट्ठस्सति''।

(८.क) विस्मरणशील पुरुष

कौन-सा पुरुष विस्मरणशील है ?

तब विस्मरणशीलता क्या है ?

जो अननुस्मृति, अप्रतिस्मृति, अस्मृति, असंरक्षणता, अधारणता, पिलापनता (पुनः दोहराया न जा सके), विस्मरणता अस्मृति है– इसे (ही) 'विस्मरणशीलता' कहा जाता है।

इस प्रकार के विस्मरणशीलता से युक्त पुरुष ''विस्मरणशील'' होता है।

(ख) असम्पजानो पुग्गलो

१६. कतमो च पुग्गलो असम्पजानो ?

तत्थ कतमं असम्पजञ्ञं ?

यं अञ्ञाणं अदस्सनं अनभिसमयो अननुबोधो असम्बोधो अप्पटिवेधो असङ्गाहणा[७] अपरियोगाहणा असमपेक्खणा अपच्चवेक्खणा अपच्चक्खकम्मं[८] दुम्मेज्झं बाल्यं असम्पजञ्ञं मोहो पमोहो सम्मोहो अविज्जा अविज्जोघो अविज्जायोगो अविज्जानुसयो अविज्जापरियुट्ठानं अविज्जालङ्गी मोहो अकुसलमूलं– इदं वुच्चति 'असम्पजञ्ञं'।

इमिना असम्पजञ्ञेन समन्नागतो पुग्गलो ''असम्पजानो''।

---

१. मुट्ठसच्चं – सी०, स्या०, एवमुपरि पि।
२. असति – सी०, रो०, एवमुपरि पि।
३. रो० पोत्थके नत्थि।
४. असरणता – सी०, स्या०, रो०।
५. विलापनता – रो०।
६. सम्मुस्सनता – सी०, रो०।
७. असङ्गाहना – सी०, स्या०, रो०, एवमुपरि पि।
८. अपच्चवेक्खकम्मं – रो०।

(ख) असम्प्रजन्य पुरुष

कौन-सा पुरुष असम्प्रजन्य है ?
तब असम्प्रजन्यता क्या है ?

जो अज्ञान, अदर्शन, अनभिसमय, अननुबोध, असम्बोध, अप्रतिवेध, असंग्रहण, डुबकी न लगाने वाला, असम्प्रेक्षण, अप्रत्यवेक्षण, अप्रत्यक्षकर्म, दुर्मेध, मूर्खता, असम्प्रजन्यता, मोह, प्रमोह, सम्मोह, अविद्या, अविद्या रूपी ओघ, अविद्या रूपी योग, अविद्या रूपी अनुशय, अविद्या रूपी पर्युत्थान, अविद्या रूपी घेरा, मोह, अकुशल मूल है— इसे (ही) 'असम्प्रजन्यता' कहा जाता है।

इस प्रकार की असम्प्रजन्यता से युक्त पुरुष "असम्प्रजन्य" होता है।

(६.क) सीलविपन्नो पुग्गलो

१७. कतमो च पुग्गलो सोलविपन्नो ?

[N.35] तत्थ कतमा सीलविपत्ति ?

कायिको वीतिक्कमो वाचसिको वीतिक्कमो कायिकवाचसिको वीतिक्कमो— अयं वुच्चति सीलविपत्ति[1]। सब्बं पि दुस्सील्यं सीलविपत्ति।

इमाय सीलविपत्तिया[2] समन्नागतो पुग्गलो "सीलविपन्नो"।

(६.क) शीलविपन्न पुरुष

कौन-सा पुरुष शीलविपन्न है ?
तब शीलविपत्ति क्या है ?

जो शारीरिक नियम का उलंघन, वाचसिक नियम का उलंघन तथा शारीरिक वाचसिक नियम का उलंघन है— इसे (ही) 'शीलविपत्ति' (शील की मर्यादा का उलंघन) कहा जाता है। सभी प्रकार की दुश्शीलता भी शीलविपत्ति है।

इस प्रकार की शीलविपत्ति से युक्त पुरुष "शीलविपन्न" (शील भंग करने वाला) होता है।

---

१. सीलविप्पत्ति – रो०।
२. सीलविपत्ति – रो०।

(ख) दिट्ठिविपन्नो पुग्गलो

१८. कतमो च पुग्गलो दिट्ठिविपन्नो ?

तत्थ कतमा दिट्ठिविपत्ति ?

"नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकतदुक्कटानं[१] कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं [R.22] लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता[२] सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती"ति– या एवरूपा दिट्ठि दिट्ठिगतं दिट्ठिगहनं दिट्ठिकन्तारो दिट्ठिविसूकायिकं[३] दिट्ठिविप्फन्दितं दिट्ठिसंयोजनं गाहो पटिग्गाहो[४] अभिनिवेसो परामासो कुम्मग्गो मिच्छापथो मिच्छत्तं तित्थायतनं विपरियासग्गाहो[५]– [B.125] अयं वुच्चति 'दिट्ठिविपत्ति'। सब्बा पि मिच्छादिट्ठि दिट्ठिविपत्ति।

इमाय दिट्ठिविपत्तिया समन्नागतो पुग्गलो "दिट्ठिविपन्नो"।

(ख) दृष्टिविपन्न पुरुष

कौन-सा पुरुष दृष्टिविपन्न है ?

तब दृष्टिविपत्ति क्या है ?

"जहां दान (का फल) नहीं, यज्ञ (का फल) नहीं, आहुति (का फल) नहीं, सुकृत-दुष्कृत कर्मों का फल-विपाक नहीं, यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, च्युत होकर उत्पन्न होने वाले प्राणी नहीं, संसार में कोई सन्मार्ग-गामी, सम्यक प्रतिपन्न श्रमण-ब्राह्मण नहीं, जो इस लोक तथा परलोक को स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर उसकी बात करते हों"। जो इस प्रकार के सिद्धान्त, मिथ्या-मत, मतों (सिद्धान्तों) का जमघट, मतों का जंगल, मतों (सिद्धान्तों) का तमाशा, मतों का संघर्ष, मतों का संयोजन, ग्रहण, प्रतिग्रहण,

---

१. सुकतदुक्कतानं – सी०; सुकटदुक्कटानं – स्या०।

२. समग्गता – रो०।

३. दिट्ठिविसूकायितं – सी०।

४. पतिट्ठाहो – सी०।

५. विपरियेसगाहो – सी०; विपरियेसग्गाहो – स्या०, रो०।

झुकाव, स्पर्श, कुमार्ग, मिथ्यापथ, मिथ्यात्व, सम्प्रदाय-विशेष के सिद्धान्त तथा प्रतिकूल उद्देश्य का ग्रहण है— इसे (ही) 'दृष्टिविपत्ति' (खतरनाक सिद्धान्त) कहा जाता है। सभी प्रकार की मिथ्या दृष्टि भी 'दृष्टिविपत्ति' है।

इस प्रकार की दृष्टिविपत्ति से युक्त पुरुष "दृष्टिविपन्न" (सिद्धान्त भंग करने वाला) होता है।

(१०.क) अज्झत्तसंयोजनो पुग्गलो

१६. [S.286] कतमो च पुग्गलो अज्झत्तसंयोजनो ?

यस्स पुग्गलस्स पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि अप्पहीनानि— अयं वुच्चति पुग्गलो "अज्झत्तसंयोजनो"।

(१०.क) आन्तरिक संयोजनों से युक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष आन्तरिक संयोजनों से युक्त है ?

जिस पुरुष के पाँच ओरम्भागिय (इस लोक सम्बन्धी) संयोजन अप्रहीण हैं— (इस प्रकार का) यह पुरुष "आन्तरिक संयोजनों से युक्त" कहा जाता है।

(ख) बहिद्धासंयोजनो पुग्गलो

२०. कतमो च पुग्गलो बहिद्धासंयोजनो।

[N.36] यस्स पुग्गलस्स पञ्चुद्धम्भागियानि संयोजनानि अप्पहीनानि— अयं वुच्चति पुग्गलो "बहिद्धासंयोजनो"।

(ख) बाहरी संयोजनों से युक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष बाहरी संयोजनों से युक्त है ?

जिस पुरुष के पाँच उद्धम्भागिय (ऊपरी भाग से सम्बन्धित) संयोजन अप्रहीण हैं— (इस प्रकार का) यह पुरुष "बाहरी संयोजनों से युक्त" कहा जाता है।

(११. क) अक्कोधनो पुग्गलो

२१. कतमो च पुग्गलो अक्कोधनो ?

तत्थ कतमो कोधो ?

यो कोधो कुज्झना कुज्झितत्तं दोसो दुस्सना दुस्सितत्तं ब्यापत्ति ब्यापज्जना ब्यापज्जितत्तं विरोधो पटिविरोधो चण्डिक्कं असुरोपो अनत्तमनता चित्तस्स– अयं वुच्चति 'कोधो'।

यस्स पुग्गलस्स अयं कोधो पहीनो– अयं वुच्चति पुग्गलो "अक्कोधनो"।

(११. क) अक्रोधी पुरुष

कौन-सा पुरुष अक्रोधी है ?

तब क्रोध क्या है ?

जो क्रोध, क्रोध करना, क्रोध का भाव, द्वेष, ष करना, द्वेष का भाव, ब्यापाद, ब्यापाद करना, ब्यापाद का भाव, विरोध, प्रतिविरोध, प्रचण्डभाव, कर्कशभाव, चित्त की अप्रसन्नता है– इसे (ही) 'क्रोध' कहा जाता है।

जिस पुरुष का यह क्रोध प्रहीण है– (इस प्रकार का) यह पुरुष "अक्रोधी" कहा जाता है।

(ख) अनुपनाही पुग्गलो

२२. कतमो च पुग्गलो अनुपनाही ?

तत्थ कतमो उपनाहो ?

पुब्बकालं कोधो अपरकालं उपनाहो। यो एवरूपो उपनाहो उपनय्हना उपनय्हितत्तं अट्ठपना ठपना सण्ठपना अनुसंसन्दना अनुप्पबन्धना दळ्हीकम्मं कोधस्स– अयं वुच्चति 'उपनाहो'।

यस्स पुग्गलस्स अयं उपनाहो पहीनो– अयं वुच्चति पुग्गलो "अनुपनाही"।

(ख) अनुपनाही (अबैरी) पुरुष

कौन-सा पुरुष अनुपनाही (अबैरी) है ?

तब उपनाह (बैर) क्या है ?

सर्वप्रथम क्रोध आता है, उसके बाद उपनाह आता है। जो इस प्रकार का उपनाह, उपनाह करना, उपनाह का भाव, अस्थापना, स्थापना, संस्थापना, अनुसंसन्दना, अनुप्रबन्धना, क्रोध का दृढ़ीकरण है— इसे (ही) 'उपनाह' कहा जाता है।

जिस पुरुष का यह उपनाह प्रहीण है— (इस प्रकार का) यह पुरुष "अनुपनाही" (अबैरी) कहा जाता है।

(१२. क) अमक्खी पुग्गलो

२३. कतमो च पुग्गलो अमक्खी ?

तत्थ कतमो मक्खो ?

यो मक्खो मक्खायना मक्खायितत्तं निट्ठुरियं निट्ठुरियकम्मं— अयं वुच्चति 'मक्खो'।

यस्स पुग्गलस्स अयं मक्खो पहीनो— अयं वुच्चति पुग्गलो "अमक्खी"।

(१२. क) अनिन्दक पुरुष

कौन-सा पुरुष अनिन्दक है ?

तब निन्दा क्या है ?

जो निन्दा, निन्दा करना, निन्दा का भाव, निष्ठुरता, निष्ठुर कर्म है— इसे (ही) 'निन्दा' कहा जाता है।

जिस पुरुष का यह निन्दा प्रहीण है— (इस प्रकार का) यह पुरुष "अनिन्दक" कहा जाता है।

(ख) अपळासी पुग्गलो

२४. कतमो च पुग्गलो अपळासी ?

[N.37] तत्थ कतमो पळासो ?

यो पळासो पळासायना पळासायितत्तं पळासाहारो विवादट्ठानं युगग्गाहो, अप्पटिनिस्सग्गो— अयं वुच्चति 'पळासो'।

यस्स पुग्गलस्स अयं पळासो पहीनो— अयं वुच्चति पुग्गलो "अपळासी"।

(ख) अझगड़ालू पुरुष

कौन-सा पुरुष अझगड़ालू है ?

तब झगड़ा क्या है ?

जो झगड़ा, झगड़ा करना, झगड़ा का भाव, झगड़ा करने का उपाय, विवाद का स्थान, दो लोगों का झगड़ना, झगड़ने से अलग नहीं होना है— इसे (ही) 'झगड़ा' कहा जाता है।

जिस पुरुष का यह झगड़ा प्रहीण है— (इस प्रकार का) यह पुरुष "अझगड़ालू" कहा जाता है।

(१३. क) अनिस्सुकी पुग्गलो

२५. [R.23; B.126; S.288] कतमो च पुग्गलो अनिस्सुकी ?

तत्थ कतमा इस्सा ?

या परलाभसक्कारगरुकारमाननवन्दनपूजनासु इस्सा इस्सायना इस्सायितत्तं उसूया उसूयना उसूयितत्तं— अयं वुच्चति 'इस्सा'।

यस्स पुग्गलस्स अयं इस्सा पहीना— अयं वुच्चति पुग्गलो "अनिस्सुकी"।

(१३. क) अईर्ष्यालु पुरुष

कौन-सा पुरुष अईर्ष्यालु है ?

तब ईर्ष्या क्या है ?

जो दूसरे का लाभ, सत्कार, सम्मान, आदर, अभिवादन, पूजा सहन नहीं कर सकता, वही ईर्ष्या, ईर्ष्या करना, ईर्ष्या का भाव, डाह, डाह करना, डाह का भाव है— इसे (ही) 'ईर्ष्या' कहा जाता है।

जिस पुरुष का यह ईर्ष्या प्रहीण है— (इस प्रकार का) यह पुरुष "अईर्ष्यालु" कहा जाता है।

(ख) अमच्छरी पुग्गलो

२६. कतमो च पुग्गलो अमच्छरी ?

तत्थ कतमं मच्छरियं ?

पञ्च मच्छरियानि— आवासमच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभमच्छरियं,

वण्णमच्छरियं, धम्ममच्छरियं। यं एवरूपं मच्छेरं मच्छरायना मच्छरायितत्तं वेविच्छं कदरियं कटुकञ्चुकता अग्गहितत्तं चित्तस्स– इदं वुच्चति 'मच्छरियं'।

यस्स पुग्गलस्स इदं मच्छरियं पहीनं– अयं वुच्चति पुग्गलो "अमच्छरी"।

(ख) अकंजूस पुरुष

कौन-सा पुरुष अकंजूस है ?

तब कंजूसी क्या है ?

कंजूसी के पाँच प्रकार हैं– आवास सम्बन्धी कंजूसी, कुल (वंश) सम्बन्धी कंजूसी, लाभ सम्बन्धी कंजूसी, वर्ण (जाति या सौन्दर्य) सम्बन्धी कंजूसी, धर्म सम्बन्धी कंजूसी। जो इस प्रकार की कंजूसी, कंजूसी करना, कंजूसी का भाव, अनियमित उत्कण्ठा, लोलुपता, कठोर आविर्भाव, चित्त की असंयमितता है– इसे (ही) 'कंजूसी' कहा जाता है।

जिस पुरुष की यह कंजूसी प्रहीण है–(इस प्रकार का) यह पुरुष "अकंजूस" कहा जाता है।

(१४. क) असठो पुग्गलो

२७. कतमो च पुग्गलो असठो ?

तत्थ कतमं साठेय्यं ?

इधेकच्चो सठो[1] होति परिसठो। यं तत्थ [N.38] सठं सठता साठेय्यं कक्करता कक्करियं परिक्खत्तता पारिक्खत्तियं– इदं वुच्चति 'साठेय्यं'।

यस्स पुग्गलस्स इदं साठेय्यं पहीनं– अयं वुच्चति पुग्गलो "असठो"।

(१४. क) अधूर्त पुरुष

कौन-सा पुरुष अधूर्त है ?

तब धूर्तता क्या है ?

यहां कोई एक (पुरुष) धूर्त एवं चतुर होता है। वहां जो धूर्त, धूर्तता

---

१. पुग्गलो सठो – सी०, रो०; पुग्गलो सथो – स्या०।

धूर्त होने का भाव, कर्कशता, कठोरता, बनावटीपन, धोखा देने का भाव है— इसे (ही) 'धूर्तता' कहा जाता है।

जिस पुरुष की यह धूर्तता प्रहीण है— (इस प्रकार का) यह पुरुष "अधूर्त" कहा जाता है।

(ख) अमायावी पुग्गलो

२८. कतमो च पुग्गलो अमायावी ?

तत्थ कतमा माया ?

इधेकच्चो पुग्गलो कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा तस्स पटिच्छादनहेतु पापिकं इच्छं पणिदहति। "मा मं जञ्ञा"ति इच्छति। "मा मं जञ्ञा"ति सङ्कप्पति। "मा मं जञ्ञा"ति वाचं भासति। "मा मं जञ्ञा"ति कायेन परक्कमति। या एवरूपा माया मायाविता अच्चासरा[1] वञ्चना निकति विकिरणा[2] परिहरणा गूहना परिगूहना छादना पटिच्छादना[3] अनुत्तानीकम्मं अनाविकम्मं वोच्छादना[4] पापकिरिया— अयं वुच्चति 'माया'।

यस्स पुग्गलस्स अयं माया पहीना— अयं वुच्चति पुग्गलो "अमायावी"।

(ख) अमायावी (अढोंगी) पुरुष

कौन-सा पुरुष अमायावी (अढोंगी) है ?

तब माया (ढोंग) क्या है ?

यहां कोई एक पुरुष काय से दुराचरण करके, वाणी से दुराचरण करके, मन से दुराचरण करके, उस पाप की इच्छा को छिपाने हेतु (मन में) आकांक्षा करता है। (और कहता है कि) "मुझे कोई नहीं जानता है", इस प्रकार की इच्छा

---

१. अच्चसरा — सी०।

२. निकिरणा — सी०; विकीरणा — स्या०; निकरणा — रो०।

३. परिछादना — सी०; परिच्छादना — स्या०, रो०।

४. विच्छादना — रो०।

करता है। "मुझे कोई नहीं जानता है", इस प्रकार का संकल्प करता है। "मुझे कोई नहीं जानता है", इस प्रकार की वाणी बोलता है। "मुझे कोई नहीं जानता है", इस प्रकार काय द्वारा प्रदर्शित करता है। जो इस प्रकार की माया है या ऐसा मायावीपन, गोपन (छिपाना), ठगना, ठगी, विखरा हुआ पन, परिहरण, गुय्हन, परिगुय्हन, छादन, प्रतिछादन, अस्पष्टीकरण कर्म, अप्रकटीकरण कर्म, आच्छादन, पापकर्म है— इसे (ही) 'माया' कहा जाता है।

जिस पुरुष की यह माया (ढोंग) प्रहीण है— (इस प्रकार का) यह पुरुष "अमायावी" (अढोंगी) कहा जाता है।

(१५. क) हिरिमा पुग्गलो

२६. [S.290] कतमो च पुग्गलो हिरिमा ?

तत्थ कतमा[1] हिरी[1] ?

[R.24] यं हिरीयति[2] हिरीयितब्बेन हिरीयति पापकानं अकुसलानं धम्मानं समापत्तिया— अयं वुच्चति 'हिरी'।

इमाय हिरिया समन्नागतो पुग्गलो "हिरिमा"।

(१५. क) लज्जालु पुरुष

कौन-सा पुरुष लज्जालु है ?

तब लज्जा क्या है ?

जो पापयुक्त अकुशल धर्मों (कर्मों) के सम्पादन में (आत्म) लज्जा करता है, (आत्म) लज्जा करने योग्य बात में भी बहुत लज्जा करता है— इसे (ही) 'लज्जा' कहा जाता है।

इस प्रकार की लज्जा से युक्त पुरुष "लज्जालु" होता है।

(ख) ओत्तप्पी पुग्गलो

३०. [N.39] कतमो च पुग्गलो ओत्तप्पी ?

तत्थ कतमं ओत्तप्पं ?

१-१. कतमं हिरि – स्या०।

२. हिरि हिरीयति – सी०; हिरियति – स्या०, रो०।

यं ओत्तप्पति ओत्तप्पितब्बेन ओत्तप्पति पापकान अकुसलानं धम्मानं समापत्तिया– इदं वुच्चति 'ओत्तप्पं'।

इमिना ओत्तप्पेन समन्नागतो पुग्गलो "ओत्तप्पी"।

(ख) अपत्राप्यी पुरुष

कौन-सा पुरुष अपत्राप्यी है ?

तब अपत्राप्य क्या है ?

जो पापयुक्त अकुशल धर्मों (कर्मों) के सम्पादन में अपत्राप्य करता है, अपत्राप्य करने योग्य बात में भी बहुत अपत्राप्य करता है– इसे (ही) 'अपत्राप्य' कहा जाता है।

इस प्रकार के अपत्राप्य से युक्त पुरुष "अपत्राप्यी" होता है।

(१६. क) सुवचो पुग्गलो

३१. [B.127] कतमो च पुग्गलो सुवचो ?

तत्थ कतमा सोवचस्सता ?

सहधम्मिके वुच्चमाने सोवचस्सायं सोवचस्सियं सोवचस्सता अविप्पटिकुलग्गाहिता[1] अविपच्चनीकसातता सादरियं[2] सादरियता[2] सगारवता सप्पतिस्सवता[3]– अयं वुच्चति 'सोवचस्सता'।

इमाय सोवचस्सताय समन्नागतो पुग्गलो "सुवचो"।

(१६. क) आज्ञाकारी पुरुष

कौन-सा पुरुष आज्ञाकारी है ?

तब आज्ञाकारिता (विनम्रता) क्या है ?

जब सह-धार्मिकों के द्वारा कहे जाने पर आज्ञाकारिता, आज्ञाकारिता का भाव, आज्ञाकारिता होने का भाव, अनुकूल होने का भाव, मित्रता बनाए रखने

---

१. अविप्पटिकूलगाहिता – सी०; अप्पटिकूलगाहिता – स्या०, रो०।

२-२. सी० पोत्थके नत्थि; ०सादरता – स्या०।

३. सप्पटिस्सवता–स्या०, रो०।

का भाव, आदर, आदर का भाव, गौरव, कर्तव्य करने का भाव प्रकट करता है– इसे ही 'आज्ञाकारिता' कहा जाता है।

इस प्रकार की आज्ञाकारिता से युक्त पुरुष "आज्ञाकारी" होता है।

(ख) कल्याणमित्तो पुग्गलो

३२. कतमो च पुग्गलो कल्याणमित्तो ?

तत्थ कतमा कल्याणमित्तता ?

ये ते पुग्गला सद्धा सीलवन्तो बहुस्सुता चागवन्तो पञ्ञवन्तो, या तेसं सेवना निसेवना संसेवना भजना सम्भजना भत्ति सम्भत्ति सम्पवङ्कता– अयं वुच्चति 'कल्याणमित्तता'।

इमाय कल्याणमित्तताय समन्नागतो पुग्गलो "कल्याणमित्तो"।

(ख) कल्याणमित्र पुरुष

कौन-सा पुरुष कल्याणमित्र है ?

तब कल्याणमित्रता क्या है ?

वे पुरुष जो श्रद्धावान, शीलवान, बहुश्रुत, त्यागवान, प्रज्ञावान हैं। उन्हीं की जो संगति, अच्छी संगति, सेवा, भजन, भजन भाव, भक्ति, भक्ति भाव करते हैं– इसे (ही) 'कल्याणमित्रता' कहा जाता है।

इस प्रकार की कल्याणमित्रता से युक्त पुरुष "कल्याणमित्र" होता है।

(१७.क) इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो पुग्गलो

३३. कतमो च पुग्गलो इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो ?

तत्थ कतमा इन्द्रियेसु गुत्तद्वारता ?

[N.40] इधेकच्चो पुग्गलो चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति रक्खति चक्खुन्द्रियं चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन

सद्दं सुत्वा ...पे०...घानेन गन्धं घायित्वा ...पे० ... जिव्हाय रसं सायित्वा ...पे०... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा ...पे०... मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति रक्खति मनिन्द्रियं मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। या इमेसं छन्नं इन्द्रियानं गुत्ति गोपना आरक्खो [R.25] संवरो– अयं वुच्चति 'इन्द्रियेसु गुत्तद्वारता'।

इमाय इन्द्रियेसु गुत्तद्वारताय समन्नागतो पुग्गलो ''इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो''।

(१७. क) इन्द्रिय द्वारों पर संयत पुरुष

कौन-सा पुरुष इन्द्रिय द्वारों पर संयत है ?

तब इन्द्रिय द्वारों पर संयमता क्या है ?

यहाँ कोई एक पुरुष चक्षु से रूप देखकर (उसके प्रति) निमित्तग्राही तथा अनुव्यंजनग्राही नहीं होता है। जिस चक्षु-इन्द्रिय के असंयत रहने से लोभ-दौर्मनस्य आदि पापमय अकुशल धर्मों की उत्पत्ति हो सकती है, उसको संयम रखने का प्रयास करता है, चक्षु-इन्द्रिय की रक्षा करता है तथा चक्षु-इन्द्रिय को संयत रखता है। श्रोत्र से शब्द सुनकर ... घ्राण से गन्ध ग्रहण कर ... जिह्वा से रसास्वादन कर...काय से स्पर्शकर ...मन से धर्म को जानकर (उसके प्रति) निमित्तग्राही तथा अनुव्यंजनग्राही नहीं होता है। जिस मन-इन्द्रिय के असंयत रहने से लोभ-दौर्मनस्य आदि पापमय अकुशल धर्मों की उत्पत्ति हो सकती है, उसे संयत रखने का प्रयास करता है, मन-इन्द्रिय की रक्षा करता है तथा मन-इन्द्रिय को संयत रखता है। जो इन छः इन्द्रियों की रक्षा करता है, नियन्त्रित करता है, रक्षित करता है, संयत करता है– इसे (ही) 'इन्द्रिय द्वारों पर संयमता' कहा जाता है।

इस प्रकार इन्द्रिय द्वारों पर संयमता से युक्त पुरुष ''इन्द्रिय द्वारों पर संयत'' होता है।

(ख) भोजने मत्तञ्ञू पुग्गलो

३४. [S.292] कतमो च पुग्गलो भोजने मत्तञ्ञू ?
तत्थ कतमा भोजने मत्तञ्ञुता ?

इधेकच्चो पुग्गलो पटिसङ्खा योनिसो आहारं आहारेति– "नेव दवाय, न मदाय, न मण्डनाय, न विभूसनाय; यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय विहिंसूपरतिया[1] ब्रह्मचरियानुग्गहाय। इति पुराणं च वेदनं पटिहङ्खामि, नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति अनवज्जता च फासुविहारो चा"ति। या तत्थ सन्तुट्ठिता [B.128] मत्तञ्ञुता पटिसङ्खा भोजने– अयं वुच्चति 'भोजने मत्तञ्ञुता'।

[N.41] इमाय भोजने मत्तञ्ञुताय समन्नागतो पुग्गलो "भोजने मत्तञ्ञू"।

(ख) भोजन में मात्रज्ञ पुरुष

कौन-सा पुरुष भोजन में मात्रज्ञ है ?

तब भोजन में मात्रज्ञता क्या है ?

यहां कोई एक पुरुष ज्ञानपूर्वक ठीक ढंग से आहार ग्रहण करता है– "न मजाक के लिए, न मद के लिए, न (शरीर को) मण्डित करने के लिए, न विभूषित करने के लिए; जब तक इस शरीर की स्थिति है तब तक उसे बनाए रखने के लिए, विहिंसा से विरत रहने के लिए, (तथा) ब्रह्मचर्य पर अनुग्रह करने के लिए। इस प्रकार पुरानी वेदना का संहार हो, नयी वेदना की उत्पत्ति न हो और मेरी (जीवन) यात्रा निर्दोष तथा असुविधा रहित हो"। जो वहां भोजन में सन्तुष्टता, मात्रज्ञता, विवेकशीलता है– इसे (ही) 'भोजन में मात्रज्ञता' कहा जाता है।

इस प्रकार भोजन में मात्रज्ञता से युक्त पुरुष "भोजन में मात्रज्ञ" होता है।

(१८. क) उपट्ठितस्सति पुग्गलो

३५. कतमो च पुग्गलो उपट्ठितस्सति ?

तत्थ कतमा सति ?

या सति अनुस्सति पटिस्सति सति सरणता धारणता अपिलापनता असम्मुसनता[2] सति सतिन्द्रियं सतिबलं सम्मासति– अयं वुच्चति 'सति'।

---

१. विहिंसुपरतिया – स्या०।

२. अपम्मुस्सनता – सी०।

इमाय सतिया समन्नागतो पुग्गलो ''उपट्ठितस्सति''।

(१८. क) स्मृतिवान पुरुष

कौन-सा पुरुष स्मृतिवान है ?

तब स्मृति क्या है ?

जो स्मृति की अनुस्मृति, प्रतिस्मृति , स्मृति की संरक्षणता, धारणता, अपिलापनता (दोहराना), स्मरणता, स्मृति की स्मृति-इन्द्रिय, स्मृति-बल, सम्यक-स्मृति है— इसे (ही) 'स्मृति' कहा जाता है।

इस प्रकार स्मृति से युक्त पुरुष ''स्मृतिवान'' होता है।

(ख) सम्पजानो पुग्गलो

३६. कतमो च पुग्गलो सम्पजानो ?

तत्थ कतमं सम्पजञ्ञं ?

या पञ्ञा पजानना विचयो पविचयो धम्मविचयो सल्लक्खणा उपलक्खणा पच्चुपलक्खणा[1] पण्डिच्चं कोसल्लं नेपुञ्ञं वेभब्या[2] चिन्ता उपपरिक्खा भूरी मेधा परिणायिका विपस्सना सम्पजञ्ञं पतोदो पञ्ञा पञ्ञिन्द्रियं पञ्ञाबलं पञ्ञासत्थं पञ्ञापासादो[3] पञ्ञाआलोको पञ्ञाओभासो पञ्ञापज्जोतो पञ्ञारतनं अमोहो धम्मविचयो सम्मादिट्ठि— इदं वुच्चति 'सम्पजञ्ञं'।

इमिना सम्पजञ्ञेन समन्नागतो पुग्गलो ''सम्पजानो''।

(ख) सम्प्रजन्य (विचारशील) पुरुष

कौन-सा पुरुष सम्प्रजन्य है ?

तब सम्प्रजन्यता (विचारशीलता) क्या है ?

जो प्रज्ञा, ज्ञान, विचय, प्रविचय, धर्मविचय, सलक्षण, उपलक्षण,

---

१. पच्चूपलक्खणा – सी०।

२. वेभव्या – सी०, रो०।

३. पञ्ञापसादो – रो०।

प्रत्युपलक्षण, पाण्डित्य, कुशलता, निपुणता, उच्च विचार, विचार, उपपरीक्षा, विपुल बुद्धि, अन्तर्दृष्टि, विपश्यना, सम्प्रजन्य, अंकुश, प्रज्ञा, प्रज्ञा-इन्द्रिय, प्रज्ञा-बल, प्रज्ञा-शस्त्र, प्रज्ञा-प्रासाद, प्रज्ञा-आलोक, प्रज्ञा-अवभास, प्रज्ञा-प्रद्योत, प्रज्ञा-रत्न, अमोह, धर्मविचय, सम्यक-दृष्टि है— इसे (ही) 'सम्प्रजन्यता' (विचारशीलता) कहा जाता है।

इस प्रकार के सम्प्रजन्यता से युक्त पुरुष "सम्प्रजन्य" (विचारशील) होता है।

(१६. क) सीलसम्पन्नो पुग्गलो

३७. कतमो च पुग्गलो सीलसम्पन्नो ?

तत्थ कतमा सीलसम्पदा ?

कायिको अवीतिक्कमो वाचसिको अवीतिक्कमो कायिकवाचसिको अवीतिक्कमो— अयं वुच्चति 'सीलसम्पदा'। सब्बो पि सीलसंवरो सीलसम्पदा।

इमाय सीलसम्पदाय समन्नागतो पुग्गलो "सीलसम्पन्नो"।

(१६. क) शीलसम्पन्न पुरुष

कौन-सा पुरुष शीलसम्पन्न है ?

तब शील-सम्पत्ति क्या है ?

शारीरिक नियम का उलंघन न करना, वाचसिक नियम का उलंघन न करना, शारीरिक व वाचसिक नियमों का उलंघन न करना— इसे (ही) 'शील-सम्पत्ति' कहा जाता है। सभी प्रकार के शील-संवर, शील-सम्पत्ति है।

इस प्रकार की शील-सम्पत्ति से युक्त पुरुष "शीलसम्पन्न" होता है।

(ख) दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो

३८. [N.42; S.294] कतमो च पुग्गलो दिट्ठिसम्पन्नो ?

[R.26] तत्थ कतमा दिट्ठिसम्पदा ?

"अत्थि दिन्नं, अत्थि यिट्ठं, अत्थि हुतं, अत्थि सुकतदुक्कटानं

कम्मानं फलं विपाको, अत्थि अयं लोको, अत्थि परो लोका, अत्थि माता, अत्थि पिता, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता[1] सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती''ति। या एवरूपा पञ्ञा पजानना ...पे०... अमोहो धम्मविचयो सम्मादिट्ठि– अयं वुच्चति 'दिट्ठिसम्पदा'। सब्बा पि सम्मादिट्ठि दिट्ठिसम्पदा।

इमाय दिट्ठिसम्पदाय समन्नागतो पुग्गलो ''दिट्ठिसम्पन्नो''।

(ख) दृष्टिसम्पन्न पुरुष

कौन-सा पुरुष दृष्टिसम्पन्न है ?

तब दृष्टि-सम्पत्ति क्या है ?

''जहां दान (का फल) है, यज्ञ (का फल) है, आहुति (का फल) है, सुकृत-दुष्कृत कर्मों का फल-विपाक है, यह लोक है, परलोक है, माता हैं, पिता हैं, च्युत होकर उत्पन्न होने वाले प्राणी हैं, लोक में सन्मार्ग-गामी, सुपथ-गामी श्रमण-ब्राह्मण हैं, जो इस लोक तथा पर लोक को स्वयं जानकर साक्षात्कार कर उनकी बात करते हैं''। जो इस प्रकार की प्रज्ञा है या ऐसा ज्ञान ... अमोह, धर्म-विचय, सम्यक-दृष्टि है– इसे (ही) 'दृष्टि-सम्पत्ति' कहा जाता है। सभी प्रकार की सम्यक-दृष्टि, दृष्टि-सम्पत्ति है।

इस प्रकार की दृष्टि-सम्पत्ति से युक्त पुरुष ''दृष्टिसम्पन्न'' होता है।

(२०. क-ख) द्वे दुल्लभा पुग्गला

३६. कतमे द्वे पुग्गला दुल्लभा लोकस्मिं ?

यो च पुब्बकारी, यो च कतञ्ञू कतवेदी– इमे द्वे पुग्गला ''दुल्लभा'' लोकस्मिं।

(२०. क-ख) दो (प्रकार के) दुर्लभ पुरुष

कौन-से दो (प्रकार के) पुरुष संसार में दुर्लभ हैं ?

जो पूर्वकारी (परोपकार करने वाले) हैं और जो कृतज्ञ, कृतवेदी (अर्थात् उपकार को स्मरण रखने वाले) हैं– (इस प्रकार के) ये दो पुरुष संसार में ''दुर्लभ'' हैं।

---

१. समग्गता – रो०।

(२१. क-ख) द्वे दुत्तप्पया पुग्गला

४०. [B.129] कतमे द्वे पुग्गला दुत्तप्पया ?

यो च लद्धं लद्धं निक्खिपति, यो च लद्धं लद्धं विस्सज्जेति[1]– इमे द्वे पुग्गला "दुत्तप्पया"।

(२१. क-ख) दो (प्रकार के) पुरुषों को सरलतापूर्वक सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता

कौन-से दो (प्रकार के) पुरुषों को सरलतापूर्वक सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता है ?

(जिस पुरुष को) जो-जो प्राप्त होता है, उसे रखता जाता है, और (जिस पुरुष को) जो-जो प्राप्त होता है, उसे दूसरों को देता जाता है– इन दो (प्रकार के) पुरुषों को "सरलतापूर्वक सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता है"।

(२२. क-ख) द्वे सुतप्पया पुग्गला

४१. कतमे द्वे पुग्गला सुतप्पया ?

यो च लद्धं लद्धं न निक्खिपति, यो च लद्धं लद्धं न विस्सज्जेति– इमे द्वे पुग्गला "सुतप्पया"।

(२२. क-ख) दो (प्रकार के) पुरुषों को सरलतापूर्वक सन्तुष्ट किया जा सकता है

कौन-से दो (प्रकार के) पुरुषों को सरलतापूर्वक सन्तुष्ट किया जा सकता है ?

(एक तो ऐसे पुरुष को) जिसे जो-जो प्राप्त होता है, उसे रखता नहीं है, (दूसरे उस पुरुष को) जिसे जो-जो प्राप्त होता है, उसे दूसरों को नहीं देता है– इन दो (प्रकार के) पुरुषों को "सरलतापूर्वक सन्तुष्ट किया जा सकता है"।

(२३. क-ख) द्विन्नं आसवा वड्ढन्ति

४२. कतमेसं द्विन्नं पुग्गलानं आसवा वड्ढन्ति ?

[N.43] यो च न कुक्कुच्चायितब्बं कुक्कुच्चायति, यो च

१. विसज्जेति – स्या०, रो० ।

कुक्कुच्चायितब्बं न कुक्कुच्चायति– इमेसं द्विन्नं पुग्गलानं आसवा वड्ढन्ति।

(२३. क-ख) दो (पुरुषों) के आस्रवों में वृद्धि होती है

किन दो प्रकार के पुरुषों के आस्रवों में वृद्धि होती है ?

जो अकौकृत्य के विषय में कौकृत्य करता है और कौकृत्य के विषय में अकौकृत्य करता है (अर्थात् जहां कौकृत्य नहीं करना चाहिए वहां कौकृत्य करता है और जहां कौकृत्य करना चाहिए वहां कौकृत्य नहीं करता है) —इन दो प्रकार के पुरुषों के आस्रवों में वृद्धि होती है।

(२४. क-ख) द्विन्नं आसवा न वड्ढन्ति

४३. कतमेसं द्विन्नं पुग्गलानं आसवा न वड्ढन्ति ?

यो च न कुक्कुच्चायितब्बं न कुक्कुच्चायति, यो च कुक्कुच्चायितब्बं कुक्कुच्चायति– इमेसं द्विन्नं पुग्गलानं आसवा न वड्ढन्ति।

(२४. क-ख) दो (पुरुषों) के आस्रवों में वृद्धि नहीं होती है

किन दो प्रकार के पुरुषों के आस्रवों में वृद्धि नहीं होती है ?

जो अकौकृत्य के विषय में अकौकृत्य करता है और कौकृत्य के विषय में कौकृत्य करता है (अर्थात् जहां कौकृत्य नहीं करना चाहिए वहां कौकृत्य नहीं करता है और जहां कौकृत्य करना चाहिए वहां कौकृत्य करता है) — इन दो प्रकार के पुरुषों के आस्रवों में वृद्धि नहीं होती है।

(२५. क) हीनाधिमुत्तो पुग्गलो

४४. [S.296] कतमो च पुग्गलो हीनाधिमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो। सो अञ्ञं दुस्सीलं पापधम्मं सेवति भजति पयिरुपासति। अयं वुच्चति पुग्गलो "हीनाधिमुत्तो"।

(२५. क) नीच-प्रवृत्ति से युक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष नीच प्रवृत्ति से युक्त होता है ?

यहां कोई एक पुरुष दुश्शील और पापधर्मा होता है। वह अन्य दुश्शील

और पापधर्मा (पुरुषों) की भी सेवा करता है, संगति करता है, उपासना करता है। इसे (ही) "नीच प्रवृत्ति से युक्त" पुरुष कहा जाता है।

(ख) पणीताधिमुत्तो पुग्गलो

४५. कतमो च पुग्गलो पणीताधिमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो सीलवा होति कल्याणधम्मो। सो अञ्ञं सीलवन्तं कल्याणधम्मं सेवति भजति पयिरुपासति। अयं वुच्चति पुग्गलो "पणीताधिमुत्तो"।

(ख) श्रेष्ठ प्रवृत्ति से युक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष श्रेष्ठ प्रवृत्ति से युक्त होता है ?

यहां कोई एक पुरुष शीलवान और कल्याणधर्मा होता है। वह अन्य शीलवान और कल्याणधर्मा (पुरुषों) की भी सेवा करता है, संगति करता है, उपासना करता है। इसे (ही) "श्रेष्ठ प्रवृत्ति से युक्त" पुरुष कहा जाता है।

(२६. क-ख) तित्तो पुग्गलो तप्पेता च

४६. [R.27] कतमो च पुग्गलो तित्तो ?

पच्चेकसम्बुद्धा[1] ये च तथागतस्स सावका अरहन्तो तित्ता। सम्मासम्बुद्धो तित्तो च तप्पेता च[2]।

दुकनिद्देसो निट्ठितो।

(२६. क-ख) सन्तुष्ट तथा सन्तुष्ट करने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष सन्तुष्ट है ?

जो प्रत्येकबुद्ध, तथागत के श्रावक तथा अरहन्त हैं, वे (स्वयं) सन्तुष्ट होते हैं (परन्तु दूसरों को सन्तुष्ट करने की क्षमता उनमें नहीं होती है)। सम्यकसम्बुद्ध (स्वयं) सन्तुष्ट तथा (दूसरे को भी) सन्तुष्ट करने वाले (पुरुष) होते हैं।

दो-दो निर्देश समाप्त।

---

१. पच्चेकबुद्धो – सी०।

२. 'अयं वुच्चति पुग्गलो तित्तो'ति सी० पोत्थके अधिको पाठो दिस्सति।

ततियो परिच्छेदो

३. तिकपुग्गलपञ्ञत्ति

(१. क) निरासो पुग्गलो

१. [N44; S. 298] कतमो च पुग्गलो निरासो ?

इधेकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो असुचि सङ्कस्सरसमाचारो पटिच्छन्नकम्मन्तो [B.130] अस्समणो[1] समणपटिञ्ञो अब्रह्मचारी ब्रह्मचारिपटिञ्ञो[2] अन्तोपूति[3] अवस्सुतो कसम्बुजातो[4]। सो सुणाति— "इत्थन्नामो किर भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती"ति। तस्स न एवं होति— "कुदास्सु[5] नामाहं पि आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सामी"ति। अयं वुच्चति पुग्गलो "निरासो"।

३. तीन-तीन प्रकार के पुरुषों का प्रज्ञापन

(१. क) निराश पुरुष

कौन-सा पुरुष निराश है ?

यहाँ कोई एक पुरुष दुश्शील, पापी, अपवित्र, सशंकित, अशुभकर्मी, अश्रमण होता हुआ श्रमण प्रतिज्ञ, अब्रह्मचारी होता हुआ ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञ, भीतर से सड़ा हुआ, स्राव-युक्त, रागादि कूड़े-करकट से समन्वित होता है। वह सुनता है— "इस नाम का भिक्षु आस्रवों का क्षय करके, अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार

---

१. असमणो – रो०।
२. ब्रह्मचारीपटिञ्ञो – सी०, रो०।
३. अन्तोपूती – रो०।
४. कसम्बुकजातो – स्या०, रो०।
५. कुदस्सु – सी०, एवमुपरि पि।

करता है''। उसको यह नहीं होता है– ''मैं भी कब आस्रवों का क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करूँगा''। (इस प्रकार का) यह पुरुष ''निराश'' कहा जाता है।

(ख) आसंसो पुग्गलो

२. कतमो च पुग्गलो आसंसो ?

इधेकच्चो पुग्गलो सीलवा होति कल्याणधम्मो। सो सुणाति – ''इत्थन्नामो किर भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती''ति। तस्स एवं होति – ''कुदास्सु नामाहं पि आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सामी''ति। अयं वुच्चति पुग्गलो ''आसंसो''।

(ख) आशावान पुरुष

कौन-सा पुरुष आशावान है ?

यहाँ कोई एक पुरुष शीलवान और कल्याण-धर्मा होता है। वह सुनता है– ''इस नाम का भिक्षु आस्रवों का क्षय करके, अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करता है''। उसको यह होता है– ''मैं भी कब आस्रवों का क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करूँगा''। (इस प्रकार का) यह पुरुष ''आशावान'' कहा जाता है।

(ग) विगतासो पुग्गलो

३. कतमो च पुग्गलो विगतासो ?

इधेकच्चो पुग्गलो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। सो सुणाति– ''इत्थन्नामो किर भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा [N.45] उपसम्पज्ज विहरती''ति। तस्स न एवं होति – ''कुदास्सु नामाहं पि आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा

उपसम्पज्ज विहरिस्सामी''ति। तं किस्स हेतु? या हिस्स पुब्बे अविमुत्तस्स विमुत्तासा, सा पटिप्पस्सद्धा। अयं वुच्चति पुग्गलो ''विगतासो''।

(ग) विगताशा पुरुष

कौन-सा पुरुष विगताशा है?

यहाँ कोई एक पुरुष आस्रवों का क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करता है। वह सुनता है – ''इस नाम का भिक्षु आस्रवों का क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करता है''। उसको यह नहीं होता है – ''मैं भी कब आस्रवों का क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करूँगा'', यह किस कारण? विमुक्त होने से पूर्व की इसकी विमुक्त होने की आशा शान्त हो चुकी है। (इस प्रकार का) यह पुरुष ''विगताशा'' कहा जाता है।

(२) तयो गिलानूपमा पुग्गला

४. [S.300] तत्थ कतमे तयो गिलानूपमा पुग्गला?

तयो गिलाना – (१) इधेकच्चो गिलानो लभन्तो वा सप्पायानि [R.28] भोजनानि अलभन्तो वा सप्पायानि भोजनानि, लभन्तो वा सप्पायानि भेसज्जानि अलभन्तो वा सप्पायानि भेसज्जानि, लभन्तो वा पतिरूपं[1] उपट्ठाकं अलभन्तो वा पतिरूपं उपट्ठाकं, नेव वुट्ठाति तम्हा आबाधा।

(२) तीन (प्रकार के) रोगी सदृश पुरुष

तब कौन-से तीन (प्रकार के) पुरुष रोगी सदृश हैं?

तीन (प्रकार के) रोगी हैं – (१) यहाँ कोई एक रोगी ऐसा होता है, चाहे (उसे) अनुकूल भोजन प्राप्त हो, चाहे अनुकूल भोजन न प्राप्त हो; चाहे (उसे) अनुकूल औषधि प्राप्त हो, चाहे अनुकूल औषधि न प्राप्त हो; चाहे (उसे) अनुकूल सेवक मिले और चाहे अनुकूल सेवक न मिले; तो वह उस रोग से मुक्त नहीं होता है।

---

१. पटिरूपं – स्या०, रो०, एवमुपरि पि।

(२) इध पनेकच्चो गिलानो लभन्तो वा सप्पायानि भोजनानि अलभन्तो वा सप्पायानि भोजनानि, लभन्तो वा सप्पायानि [B. 131] भेसज्जानि अलभन्तो वा सप्पायानि भेसज्जानि, लभन्तो वा पतिरूपं उपट्ठाकं अलभन्तो वा पतिरूपं उपट्ठाकं, वुट्ठाति तम्हा आबाधा।

(२) यहाँ कोई एक रोगी ऐसा होता है, चाहे (उसे) अनुकूल भोजन मिले, चाहे अनुकूल भोजन न मिले; चाहे (उसे) अनुकूल औषधि मिले, चाहे अनुकूल औषधि न मिले; चाहे (उसे) अनुकूल सेवक मिले, चाहे अनुकूल सेवक न मिले; तो वह उस रोग से मुक्त होता है।

(३) इध पनेकच्चो गिलानो लभन्तो सप्पायानि भोजनानि नो अलभन्तो, लभन्तो सप्पायानि भेसज्जानि नो अलभन्तो, लभन्तो पतिरूपं उपट्ठाकं नो अलभन्तो, वुट्ठाति तम्हा आबाधा।

तत्र य्वायं गिलानो लभन्तो सप्पायानि भोजनानि नो अलभन्तो, लभन्तो सप्पायानि भेसज्जानि नो अलभन्तो, लभन्तो पतिरूपं उपट्ठाकं नो अलभन्तो, वुट्ठाति तम्हा आबाधा, इमं गिलानं पटिच्च भगवता[1] गिलानभत्तं अनुञ्ञातं गिलानभेसज्जं अनुञ्ञातं गिलानुपट्ठाको अनुञ्ञातो। इमं च पन गिलानं पटिच्च अञ्ञे पि गिलाना उपट्ठातब्बा।

(३) यहाँ कोई एक रोगी होता है, उसे अनुकूल भोजन प्राप्त हो, न प्राप्त हो ऐसा नहीं; अनुकूल औषधि प्राप्त हो, न प्राप्त हो ऐसा नहीं; अनुकूल सेवक मिले, न मिले ऐसा नहीं; तो वह उस रोग से मुक्त होता है।

(इनमें) वहाँ जो यह रोगी है, जिसे अनुकूल भोजन प्राप्त हो, न प्राप्त हो ऐसा नहीं; अनुकूल औषधि प्राप्त हो, न प्राप्त हो ऐसा नहीं; अनुकूल सेवक मिले, न मिले ऐसा नहीं; तो वह रोग से मुक्त होता है, ऐसे ही रोगी के लिए भगवान ने रोगी-भोजन की व्यवस्था, रोगी-भेसज्ज की व्यवस्था और रोगी-सेवक की व्यवस्था करने की अनुमति दी है। इस रोगी के निमित्त से, अन्य रोगियों की भी सेवा करनी चाहिए।

एवमेवं[2] तयो गिलानूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे तयो ? (१) इधेकच्चो पुग्गलो लभन्तो वा तथागतं दस्सनाय

---

१. सी० पोत्थके नत्थि ।

२. एवमेव – सी०, स्या०।

अलभन्तो वा तथागतं दस्सनाय, लभन्तो वा तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवणाय[1] अलभन्तो वा तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवणाय, नेव ओक्कमति नियामं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं।

इसी प्रकार तीन (प्रकार के) रोगी सदृश पुरुष इस संसार में विद्यमान हैं। कौन-से तीन ? (१) यहाँ कोई एक पुरुष को चाहे तथागत का दर्शन मिले, अथवा तथागत का दर्शन न मिले; चाहे तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनने के लिए मिले, अथवा तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनने के लिए न मिले; (तो भी) वह कुशल धर्मों में मार्ग के सम्यकत्व को प्राप्त नहीं करता है।

(२) [N.46] इध पनेकच्चो पुग्गलो लभन्तो वा तथागतं दस्सनाय अलभन्तो वा तथागतं दस्सनाय, लभन्तो वा तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवणाय अलभन्तो वा तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवणाय, ओक्कमति नियामं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं।

(२) यहाँ कोई एक पुरुष को चाहे तथागत का दर्शन मिले, या तथागत का दर्शन न मिले; चाहे तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनने के लिए मिले, या तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनने के लिए न मिले; (तो भी) वह कुशल धर्मों में मार्ग के सम्यकत्व को प्राप्त करता है।

(३) इध पनेकच्चो पुग्गलो लभन्तो तथागतं दस्सनाय नो अलभन्तो, लभन्तो तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवणाय नो अलभन्तो, ओक्कमति नियामं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं।

तत्र य्वायं पुग्गलो लभन्तो तथागतं दस्सनाय नो अलभन्तो, लभन्तो तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं सवणाय नो [B.132] अलभन्तो, ओक्कमति नियामं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं, इमं पुग्गलं पटिच्च भगवता धम्मदेसना अनुञ्ञाता, इमं च पुग्गलं[2] पटिच्च [R.29] अञ्ञेसं पि धम्मो देसेतब्बो। इमे तयो गिलानूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

(३) यहाँ कोई एक पुरुष को (यदि) तथागत का दर्शन मिले, न मिले ऐसा नहीं; तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनने के लिए मिले, न मिले ऐसा नहीं; (तो भी) वह कुशल धर्मों में मार्ग के सम्यकत्व को प्राप्त करता है।

---

१. सवनाय – स्या०, एवमुपरि पि।
२. पन पुग्गलं – सी०, स्या०, रो०।

(इनमें) वहाँ जो यह पुरुष है, जिसे तथागत का दर्शन मिले, न मिले ऐसा नहीं; तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म-विनय सुनने के लिए मिले, न मिले ऐसा नहीं; वह कुशल धर्मों में मार्ग के सम्यकत्व का लाभ प्राप्त करता है, ऐसे पुरुष के लिए भगवान ने धर्म-देशना की अनुज्ञा की है। इस पुरुष के निमित्त से दूसरों को भी धर्मोपदेश दिया जाना चाहिए। (इस प्रकार) ये तीन प्रकार के रोगी सदृश पुरुष लोक में विद्यमान हैं।

(३. क) कायसक्खी पुग्गलो

५. [S.302] कतमो च पुग्गलो कायसक्खी ?

इधेकच्चो पुग्गलो अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा[1] विहरति, पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति – अयं वुच्चति पुग्गलो "कायसक्खी"।

(३. क) कायसाक्षी पुरुष

कौन-सा पुरुष कायसाक्षी है ?

यहाँ कोई एक पुरुष आठ विमोक्षों को शरीर (नामकाय) से स्पर्श या साक्षात्कार करके विहार करता है और प्रज्ञा द्वारा देखकर वह कुछ आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "कायसाक्षी" कहा जाता है।

(ख) दिट्ठिप्पत्तो पुग्गलो

६. कतमो च पुग्गलो दिट्ठिप्पत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति, तथागतप्पवेदिता चस्स धम्मा पञ्ञाय वोदिट्ठा होन्ति वोचरिता। पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो "दिट्ठिप्पत्तो"।

---

१. फस्सित्वा – सी०, एवमुपरि पि।

(ख) दृष्टिप्राप्त पुरुष

कौन-सा पुरुष दृष्टिप्राप्त है ?

यहाँ कोई एक पुरुष यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःख है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखसमुदय है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखनिरोध है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है"। वह तथागत द्वारा उपदिष्ट किए गए धर्मों को प्रज्ञा द्वारा पूर्ण रूप से जाना हुआ होता है (और) अभ्यास किया हुआ होता है। प्रज्ञा द्वारा देखकर वह कुछ आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "दृष्टिप्राप्त" कहा जाता है।

(ग) सद्धाविमुत्तो पुग्गलो

७. कतमो च पुग्गलो सद्धाविमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति ... पे० ... [N.47] तथागतप्पवेदिता चस्स धम्मा पञ्ञाय वोदिट्ठा होन्ति वोचरिता, पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति, नो च खो यथादिट्ठिप्पत्तस्स। अयं वुच्चति पुग्गलो "सद्धाविमुत्तो"।

(ग) श्रद्धाविमुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष श्रद्धाविमुक्त है ?

यहाँ कोई एक पुरुष यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःख है," ... वह तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्मों को प्रज्ञा द्वारा पूर्ण रूप से जाना हुआ होता है (और) अभ्यास किया हुआ होता है। प्रज्ञा द्वारा देखकर वह कुछ आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है, यद्यपि वह दृष्टिप्राप्त (पुरुष) के सदृश नहीं है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "श्रद्धाविमुक्त" कहा जाता है।

(४. क) गूथभाणी पुग्गलो

८. कतमो च पुग्गलो गूथभाणी ?

इधेकच्चो पुग्गलो मुसावादी होति। सभग्गतो वा परिसग्गतो वा ञातिमज्झगतो वा पूगमज्झगतो वा राजकुलमज्झगतो वा अभिनीतो

सक्खिपुट्ठो – ''एहम्भो[1], पुरिस, यं जानासि तं वदेही''ति, सो अजानं वा आह[2] – ''जानामी''ति, जानं वा आह – ''न जानामी''ति, अपस्सं वा आह – ''पस्सामी''ति, पस्सं वा आह – ''न पस्सामी''ति। इति अत्तहेतु वा परहेतु वा आमिसकिञ्चिक्खहेतु वा सम्पजानमुसा भासिता होति। अयं वुच्चति पुग्गलो ''गूथभाणी''।

(४. क) मल-मुखयुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष मल-मुखयुक्त (बुरा बोलने वाला) है ?

यहाँ कोई एक पुरुष झूठ बोलने वाला होता है, जिसे सभा में ले जाकर या परिषद में ले जाकर या जाति-समूह के मध्य ले जाकर या व्यवसाय-विशेष के संगठन के बीच ले जाकर या राज-दरबार के मध्य ले जाकर उससे गवाह के रूप में पूछा जाय – ''हे पुरुष ! जो जानते हो उसे बोलो'', इस प्रकार वह न जानता हुआ कहता है कि ''जानता हूँ'', जानता हुआ कहता है कि ''नहीं जानता हूँ'', इस प्रकार न देखता हुआ कहता है कि ''देखता हूँ'' और देखता हुआ कहता है कि ''नहीं देखता हूँ''। ऐसा (वह) अपने अर्थ के लिए या दूसरे के अर्थ के लिए या किसी भौतिक लाभ के लिए या जान-बूझकर झूठ बोलने वाला होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष ''मल-मुखयुक्त'' (बुरा बोलने वाला) कहा जाता है।

(ख) पुप्फभाणी पुग्गलो

६. [B.133; S.304] कतमो च पुग्गलो पुप्फभाणी ?

इधेकच्चो पुग्गलो मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति, सभग्गतो वा परिसग्गतो वा ञातिमज्झगतो वा पूगमज्झगतो वा राजकुलमज्झगतो वा अभिनीतो सक्खिपुट्ठो – ''एहम्भो, पुरिस, यं जानासि तं वदेही''ति, सो अजानं वा आह – ''न जानामी''ति, जानं वा आह–''जानामी''ति, अपस्सं वा आह – ''न पस्सामी''ति, पस्सं वा आह–''पस्सामी''ति। इति अत्तहेतु वा परहेतु वा आमिसकिञ्चिक्खहेतु वा न सम्पजानमुसा भासिता होति। अयं वुच्चति पुग्गलो '''पुप्फभाणी''।

---

१. एहि भो – स्या०, रो०।

२. अहं – सी०, रो०, एवमुपरि पि।

(ख) पुष्प-मुखयुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष पुष्प-मुखयुक्त (सत्य वाणी बोलने वाला) है ?

यहाँ कोई एक पुरुष झूठ बोलना छोड़कर झूठ बोलने से विरत होता है, जिसे सभा में ले जाकर या परिषद में ले जाकर या जाति-समूह के मध्य ले जाकर या व्यवसाय-विशेष के संगठन के बीच ले जाकर या राज-दरबार के मध्य ले जाकर उससे गवाह के रूप में पूछा जाय कि "हे पुरुष ! जो जानते हो उसे कहो", इस प्रकार वह न जानता हुआ कहता है कि "नहीं जानता हूँ", जानता हुआ कहता कि "जानता हूँ", न देखता हुआ कहता है कि "नहीं देखता हूँ", देखता हुआ कहता है कि "देखता हूँ"। ऐसा (वह) न अपने अर्थ के लिए या न दूसरे के अर्थ के लिए या न किसी भौतिक लाभ के लिए या न जान-बूझकर झूठ बोलने वाला होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष पुष्प-मुखयुक्त (सत्य वाणी बोलने वाला) कहा जाता है।

(ग) मधुभाणी पुग्गलो

१०. कतमो च पुग्गलो मधुभाणी ?

इधेकच्चो पुग्गलो या सा वाचा नेला[1] कण्णसुखा [R.30] पेमनिया[2] हदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा, तथारूपिं वाचं भासिता होति। अयं वुच्चति पुग्गलो "मधुभाणी"।

(ग) मधु-मुखयुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष मधु-मुखयुक्त (मधुर वाणी बोलने वाला) है ?

यहाँ कोई एक पुरुष, जिसकी वाणी निर्दोष होती है, कानों को अच्छी लगने वाली होती है, प्रेम पैदा करने वाली होती है, हृदय को आकर्षक लगने वाली होती है, गुण-युक्त होती है, बहुत लोगों को सुन्दर, बहुत लोगों को प्रिय लगने वाली होती है– ऐसी वाणी बोलता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "मधु-मुखयुक्त" (अर्थात् मधुरवाणी बोलने वाला) कहा जाता है।

(५. क) अरुकूपमचित्तो पुग्गलो

११. [N.48] कतमो च पुग्गलो अरुकूपमचित्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो कोधनो होति उपायासबहुलो, अप्पं पि वुत्तो

१. नेळा – स्या०, रो०।
२. पेमनीया – स्या०।

समानो अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति[1], कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। सेय्यथापि नाम दुट्ठारुको कट्ठेन वा कठलाय वा घट्टितो भिय्योसो मत्ताय आसवं देति, एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो कोधनो होति उपायासबहुलो, अप्पं पि वुत्तो समानो अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। अयं वुच्चति पुग्गलो "अरुकूपमचित्तो"।

(५. क) पुराने व्रण सदृश चित्त वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष पुराने व्रण सदृश चित्त वाला है ?

यहाँ कोई एक पुरुष क्रोधी, अस्थिर चित्त वाला होता है, (उसे) थोड़ा-सा भी (कुछ) कहने से वह बात उसे लग जाती है, (उसे) क्रोध आ जाता है, (वह) व्यापाद को प्राप्त होता है, (वह) कठोर हो जाता है, क्रोध, द्वेष और दौर्मनस्य प्रकट करता है। जैसे पुराने व्रण में लकड़ी या कंकड़ (पत्थर) लग जाने से और भी पीब बहने लग जाता है, इसी प्रकार यहाँ कोई एक पुरुष क्रोधी स्वभाव तथा अस्थिर चित्त वाला होता है, (उसे) थोड़ा-सा भी (कुछ) कहने से वह बात उसे लग जाती है, क्रोध आ जाता है, व्यापाद को प्राप्त होता है, कठोर हो जाता है, क्रोध, द्वेष और दौर्मनस्य प्रकट करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "पुराने व्रण सदृश चित्त वाला" कहा जाता है।

(ख) विज्जूपमचित्तो पुग्गलो

१२. कतमो च पुग्गलो विज्जूपमचित्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। सेय्यथापि नाम चक्खुमा पुरिसो रत्तन्धकारतिमिसाय[2] विज्जन्तरिकाय रूपानि पस्सेय्य, एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधो"ति यथाभूतं [B.134] पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। अयं वुच्चति पुग्गलो "विज्जूपमचित्तो"।

---

१. पतिट्ठीयति – स्या०, रो०, एवमुपरि पि।

२. रत्तन्धकारतिमिसायं – सी०।

(ख) बिजली सदृश चित्त वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष बिजली सदृश चित्त वाला है ?

यहाँ कोई एक पुरुष यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःख है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखसमुदय है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखनिरोध है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है"। जैसे आँख वाला पुरुष बिजली-चमकती घोर अँधेरी रात्रि में रूप देखे, इसीप्रकार यहाँ कोई एक पुरुष यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःख है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखसमुदय है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखनिरोध है", यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है"। (इस प्रकार का) यह पुरुष "बिजली सदृश चित्त वाला" कहा जाता है।

(ग) वजिरूपमचित्तो पुग्गलो

१३. [S.306] कतमो च पुग्गलो वजिरूपमचित्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। सेय्यथापि नाम वजिरस्स नत्थि किञ्चि अभेज्जं मणि[1] वा पासाणो[2] वा, एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति पुग्गलो "वजिरूपमचित्तो"।

(ग) वज्र सदृश चित्त वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष वज्र सदृश चित्त वाला है ?

यहाँ कोई एक पुरुष आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करता है, जैसे वज्र के लिए कुछ भी अभेद्य नहीं है, चाहे मणि या पाषाण हो, इसी प्रकार कोई एक पुरुष आस्रवों का क्षय करके अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहार करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "वज्र सदृश चित्त वाला" कहा जाता है।

---

१. मणी – सी०; नाम मणि – स्या०।
२. पासानो – सी०।

(६. क) अन्धो पुग्गलो

१४. [N.49] कतमो च पुग्गलो अन्धो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स तथारूपं चक्खु न होति यथारूपेन चक्खुना अनधिगतं वा भोगं अधिगच्छेय्य, अधिगतं वा भोगं फातिं करेय्य; तथारूपं पिस्स[1] चक्खु न होति यथारूपेन चक्खुना कुसलाकुसले धम्मे जानेय्य, सावज्जानवज्जे धम्मे जानेय्य, हीनप्पणीते धम्मे जानेय्य, कण्हसुक्कसप्पटिभागे धम्मे जानेय्य। अयं वुच्चति पुग्गलो "अन्धो"।

(६. क) अन्धा पुरुष

कौन-सा पुरुष अन्धा है ?

यहाँ कोई एक पुरुष के पास ऐसी आँख नहीं होती है कि यथारूप आँख से अप्राप्त सम्पत्ति को प्राप्त कर सके और प्राप्त सम्पत्ति को बढ़ा सके; उसकी ऐसी आँख भी नहीं होती है कि यथारूप आँख से कुशल-अकुशल धर्मों की पहचान कर सके, सदोष-निर्दोष धर्मों की पहचान कर सके, हीन-उच्च धर्मों की पहचान कर सके, कृष्ण-शुक्ल (पाप-पुण्य) परस्पर-विरोधी धर्मों की पहचान कर सके। (इस प्रकार का) यह पुरुष "अन्धा" कहा जाता है।

(ख) एकचक्खु पुग्गलो

१५. कतमो च पुग्गलो एकचक्खु ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स तथारूपं चक्खु होति, यथारूपेन चक्खुना अनधिगतं वा भोगं अधिगच्छेय्य, [R.31] अधिगतं वा भोगं फातिं करेय्य; तथारूपं पिस्स चक्खु न होति यथारूपेन चक्खुना कुसलाकुसले धम्मे जानेय्य, सावज्जानवज्जे धम्मे जानेय्य, हीनप्पणीते धम्मे जानेय्य, कण्हसुक्कसप्पटिभागे धम्मे जानेय्य। अयं वुच्चति पुग्गलो "एकचक्खु"।

(ख) एक चक्षु वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष एक चक्षु वाला है ?

यहाँ कोई एक पुरुष के पास ऐसी चक्षु होती है कि यथारूप चक्षु से अप्राप्त सम्पत्ति को प्राप्त कर सके और प्राप्त सम्पत्ति को बढ़ा सके; किन्तु

---

१. पनस्स – सी०।

उसके पास ऐसी चक्षु नहीं होती है कि यथारूप चक्षु से (वह) कुशल-अकुशल धर्मों की पहचान कर सके, सदोष-निर्दोष धर्मों की पहचान कर सके, हीन-उच्च धर्मों की पहचान कर सके, (तथा) कृष्ण-शुक्ल परस्पर-विरोधी धर्मों की पहचान कर सके। (इस प्रकार का) यह पुरुष "एक चक्षु वाला" कहा जाता है।

(ग) द्विचक्खु पुग्गलो

१६. कतमो च पुग्गलो द्विचक्खु ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स तथारूपं चक्खु होति यथारूपेन चक्खुना अनधिगतं वा भोगं अधिगच्छेय्य, अधिगतं वा भोगं फातिं करेय्य; तथारूपं पिस्स चक्खु होति यथारूपेन चक्खुना कुसलाकुसले धम्मे जानेय्य, सावज्जानवज्जे धम्मे जानेय्य, हीनप्पणीते धम्मे जानेय्य, कण्हसुक्कसप्पटिभागे धम्मे जानेय्य। अयं वुच्चति पुग्गलो "द्विचक्खु"।

(ग) दो चक्षु वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष दो चक्षु वाला है ?

यहाँ कोई एक पुरुष के पास ऐसी चक्षु होती है कि यथारूप चक्षु से अप्राप्त सम्पत्ति को प्राप्त कर सके और प्राप्त सम्पत्ति को बढ़ा सके और उसके पास ऐसी चक्षु भी होती है कि यथारूप चक्षु से (वह) कुशल-अकुशल धर्मों की पहचान कर सके, सदोष-निर्दोष धर्मों की पहचान कर सके, हीन-उच्च धर्मों की पहचान कर सके, (तथा) कृष्ण-शुक्ल परस्पर-विरोधी धर्मों की पहचान कर सके। (इस प्रकार का) यह पुरुष "दो चक्षु वाला" कहा जाता है।

(७. क) अवकुज्जपञ्ञो पुग्गलो

१७. [B.135; S.308] कतमो च पुग्गलो अवकुज्जपञ्ञो ?

इधेकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता[1] होति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मस्सवणाय[2]। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने निसिन्नो तस्सा कथाय [N.50] नेव आदिं

---

१. गतो – सी०; गन्त्वा – स्या०, रो०।

२. धम्मसवणाय – सी०; धम्मस्सवनाय – स्या०; धम्मसवनाय – रो०।

मनसि करोति, न मज्झं मनसि करोति, न परियोसानं मनसि करोति। वुट्ठितो पि तम्हा आसना तस्सा कथाय नेव आदिं मनसि करोति, न मज्झं मनसि करोति, न परियोसानं मनसि करोति। सेय्यथापि नाम कुम्भो निक्कुज्जो[1] तत्र उदकं आसित्तं विवट्टति[2], नो सण्ठाति; एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता होति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मस्सवणायं। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने निसिन्नो तस्सा कथाय नेव आदिं मनसि करोति, न मज्झं मनसि करोति, न परियोसानं मनसि करोति। वुट्ठितो पि तम्हा आसना तस्सा कथाय नेव आदिं मनसि करोति, न मज्झं मनसि करोति, न परियोसानं मनसि करोति। अयं वुच्चति पुग्गलो "अवकुज्जपञ्ञो"।

(७. क) अधोमुख प्रज्ञावान पुरुष

कौन-सा पुरुष अधोमुख प्रज्ञावान (या विषय विजानन क्रम में विपरीत स्थिति को प्राप्त) है ?

यहाँ कोई एक पुरुष भिक्षुओं के पास धर्म सीखने (या सुनने) के लिए आराम (या विहार) में निरन्तर जाता रहता है। उसे भिक्षु आदिकल्याणकारी, मध्यकल्याणकारी, अन्तकल्याणकारी धर्म का उपदेश देते हैं; (तथा) अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूप से परिशुद्ध धर्म (श्रेष्ठ जीवन) को प्रकाशित करते हैं। वह उस आसन पर बैठा हुआ न उस कथा (या उपदेश) के आरम्भ (या आदि) को मन में ग्रहण करता है, न मध्य को मन में ग्रहण करता है (और) न अन्त को मन में ग्रहण करता है (अर्थात् उस कथा को न तो आरम्भ भाग, न मध्य भाग और न ही अन्त भाग को मन में श्रवण करता है)। उस आसन से उठने पर भी न उस उपदेश के आरम्भ को मन में ग्रहण करता है, न मध्य को मन में ग्रहण करता है, न अन्त को मन में ग्रहण करता है। जैसे उल्टे घड़े में डाला हुआ वह जल गिर पड़ता है, ठहरता नहीं है, वैसे (ही) यहाँ कोई एक पुरुष भिक्षुओं के पास धर्म सीखने के लिए आराम में निरन्तर जाता रहता है। (लेकिन जब) उस भिक्षु को आदिकल्याणकारी, मध्यकल्याणकारी, अन्तकल्याणकारी धर्म का

१. निकुज्जो – स्या०।
२. विवत्तति – स्या०, रो०।

उपदेश देते हैं; (तथा) अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूप से परिशुद्ध धर्म (श्रेष्ठ जीवन) को प्रकाशित करते हैं, (तो) वह उस आसन पर बैठा हुआ न उस उपदेश के आरम्भ को मन में ग्रहण करता है, न मध्य को मन में ग्रहण करता है, (और) न अन्त को मन में ग्रहण करता है। उस आसन से उठने पर भी न उस उपदेश के आरम्भ को मन में ग्रहण करता है, न मध्य को मन में ग्रहण करता है, न अन्त को मन में ग्रहण करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "अधोमुख प्रज्ञावान" कहा जाता है।

(ख) उच्छङ्गपञ्ञो पुग्गलो

१८. कतमो च पुग्गलो उच्छङ्गपञ्ञो[1]?

इधेकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता होति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मस्सवणाय। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने निसिन्नो तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि करोति, परियोसानं पि मनसि करोति। वुट्ठितो च खो तम्हा आसना तस्सा कथाय नेव आदिं मनसि करोति, न मज्झं मनसि करोति, न परियोसानं मनसि करोति। सेय्यथापि नाम पुरिसस्स उच्छङ्गे[2] नानाखज्जकानि आकिण्णानि –[R.32] तिला तण्डुला मोदका बदरा। सो तम्हा आसना वुट्ठहन्तो सतिसम्मोसा पकिरेय्य। एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता होति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मस्सवणाय। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं [B.136] परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने निसिन्नो तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि करोति, परियोसानं पि मनसि करोति। [N.51] वुट्ठितो च[3] खो[3] तम्हा आसना तस्सा कथाय नेव आदिं पि मनसि करोति, न मज्झं[4] पि मनसि करोति, न परियोसानं पि मनसि करोति। अयं वुच्चति पुग्गलो "उच्छङ्गपञ्ञो"।

---

१. उच्चङ्गपञ्ञो – स्या० ।
२. उच्चङ्गेपि – स्या०।
३-३.सी० पोत्थके नत्थि।
४. मज्झिं – सी०।

(ख) आँचल (वलित, गोद) सदृश प्रज्ञावान पुरुष

कौन-सा पुरुष आँचल (में रखी हुई वस्तु) सदृश है ?

यहाँ कोई एक पुरुष भिक्षुओं के पास धर्म सीखने के लिए विहार में निरन्तर जाता रहता है। उसको भिक्षु आदिकल्याणकारी, मध्यकल्याणकारी, अन्तकल्याणकारी धर्म का उपदेश देते हैं; अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूप से परिशुद्ध धर्म (श्रेष्ठ जीवन) को प्रकाशित करते हैं। वह उस आसन पर बैठा हुआ उस उपदेश (कथा) के आरम्भ को भी मन में ग्रहण करता है, मध्य को भी मन में ग्रहण करता है, अन्त को भी मन में ग्रहण करता है। (परन्तु) उस आसन से उठने पर न उस उपदेश के आरम्भ को मन में ग्रहण करता है, न मध्य को मन में ग्रहण करता है, (और) न अन्त को मन में ग्रहण करता है। जैसे किसी पुरुष के आँचल में विभिन्न प्रकार की खाद्य-वस्तुएं (हों), तिल (हों), चावल (हों), मोदक (लड्डु हों), बेर हों; (तो) वह उस आसन से उठते समय असावधानी के कारण (उस समस्त सामग्री को) बिखेर दे। वैसे (ही) कोई एक पुरुष भिक्षुओं के पास धर्म सीखने के लिए विहार में निरन्तर जाता रहता है। उसको भिक्षु आदिकल्याणकारी, मध्यकल्याणकारी, अन्तकल्याणकारी धर्म का उपदेश देते हैं; अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूप से परिशुद्ध धर्म (श्रेष्ठ जीवन) को प्रकाशित करते हैं। वह उस आसन पर बैठा हुआ उस उपदेश (कथा) के आरम्भ को भी मन में ग्रहण करता है, मध्य को भी मन में ग्रहण करता है, अन्त को भी मन में ग्रहण करता है। (परन्तु) उस आसन से उठने पर न उस उपदेश के आरम्भ को भी मन में ग्रहण करता है, न मध्य को भी मन में ग्रहण करता है, (और) न अन्त को भी मन में ग्रहण करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "आँचल सदृश प्रज्ञावान" कहा जाता है।

(ग) पुथुपञ्ञो पुग्गलो

१६. [S.310] कतमो च पुग्गलो पुथुपञ्ञो ?

इधेकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता होति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मस्सवणाय। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने निसिन्नो तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि करोति, परियोसानं पि मनसि करोति। वुट्ठितो पि तम्हा आसना तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि

करोति, परियोसानं पि मनसि करोति। सेय्यथापि नाम कुम्भो उक्कुज्जो तत्र[1] उदकं आसित्तं सण्ठाति, नो विवट्टति; एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो आरामं गन्ता होन्ति अभिक्खणं भिक्खूनं सन्तिके धम्मस्सवणाय। तस्स भिक्खू धम्मं देसेन्ति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेन्ति। सो तस्मिं आसने निसिन्नो तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि करोति, परियोसानं पि मनसि करोति। वुट्ठितो पि तम्हा आसना तस्सा कथाय आदिं पि मनसि करोति, मज्झं पि मनसि करोति, परियोसानं पि मनसि करोति। अयं वुच्चति पुग्गलो "पुथुपञ्ञो"।

(ग) बहुल-प्रज्ञ पुरुष

कौन-सा पुरुष बहुल-प्रज्ञ है ?

यहाँ कोई एक पुरुष भिक्षुओं के पास धर्म सीखने के लिए विहार में निरन्तर जाता रहता है। उसको भिक्षु आदिकल्याणकारी, मध्यकल्याणकारी अन्तकल्याणकारी धर्म का उपदेश देते हैं; अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूप से परिशुद्ध धर्म (श्रेष्ठ जीवन) को प्रकाशित करते हैं। वह उस आसन पर बैठा हुआ उस उपदेश के आरम्भ को भी मन में ग्रहण करता है, मध्य को भी मन में ग्रहण करता है, (तथा) अन्त को भी मन में ग्रहण करता है। उस आसन से उठने पर भी उस उपदेश के आरम्भ को भी मन में ग्रहण करता है, मध्य को भी मन में ग्रहण करता है, अन्त को भी मन में ग्रहण करता है। जैसे सीधे रखे हुए घड़े में वह पानी उस (घड़े) में ठहरता है, गिरता नहीं है, वैसे (ही) यहाँ कोई एक पुरुष भिक्षुओं के पास धर्म सीखने के लिए विहार में निरन्तर जाता रहता है। उसको भिक्षु आदिकल्याणकारी, मध्यकल्याणकारी, अन्तकल्याणकारी धर्म का उपदेश देते हैं; अर्थ-सहित, व्यंजन-सहित सम्पूर्ण रूप से परिशुद्ध धर्म (श्रेष्ठ जीवन) को प्रकाशित करते हैं। वह उस आसन पर बैठा हुआ उस उपदेश के आरम्भ को भी मन में ग्रहण करता है, मध्य को भी मन में ग्रहण करता है, अन्त को भी मन में ग्रहण करता है। उस आसन से उठने पर भी उस उपदेश के आरम्भ को भी ग्रहण करता है, मध्य को भी ग्रहण करता है, अन्त को भी ग्रहण करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "बहुल-प्रज्ञ" कहा जाता है।

---

१. तत्थ – स्या०।

(८. क) कामेसु च भवेसु च अवीतरागो पुग्गलो

२०. कतमो च पुग्गलो कामेसु च भवेसु च अवीतरागो ?

सोतापन्नसकदागामिनो – इमे वुच्चन्ति पुग्गला "कामेसु च भवेसु च अवीतरागा[१]" ।

(८. क) कामों और भवों में रागयुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष कामों (या इच्छाओं) और भवों (जन्म ग्रहण करने) में रागयुक्त है ?

स्रोतापन्न, सकृदागामी– इन पुरुषों को "कामों और भवों में रागयुक्त" कहा जाता है।

(ख) कामेसु वीतरागो भवेसु अवीतरागो पुग्गलो

२१. कतमो च पुग्गलो कामेसु वीतरागो, भवेसु अवीतरागो ?

[N.52] अनागामी – अयं वुच्चति पुग्गलो "कामेसु वीतरागो, भवेसु अवीतरागो" ।

(ख) कामों में रागरहित, भवों में रागयुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष कामों में रागरहित, भवों में रागयुक्त है ?

अनागामी – यह पुरुष "कामों में रागरहित, भवों में रागयुक्त" कहा जाता है।

(ग) कामेसु च भवेसु च वीतरागो पुग्गलो

२२. कतमो च पुग्गलो कामेसु च भवेसु च वीतरागो ?

अरहा – अयं वुच्चति पुग्गलो "कामेसु च भवेसु च वीतरागो" ।

(ग) कामों और भवों में रागरहित पुरुष

कौन-सा पुरुष कामों और भवों में रागरहित है ?

---

१. अवीतरागो – सी०।

अर्हत – यह पुरुष "कामों और भवों में रागरहित" कहा जाता है।

(६. क) पासाणलेखूपमो पुग्गलो

२३. [B.137] कतमो च पुग्गलो पासाणलेखूपमो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो चिरं दीघरत्तं अनुसेति। सेय्यथापि नाम पासाणे लेखा न खिप्पं लुज्जति वातेन वा उदकेन वा, चिरट्ठितिका होति; एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो चिरं दीघरत्तं अनुसेति। अयं वुच्चति पुग्गलो "पासाणलेखूपमो"।

(६. क) पाषाण पर खिंची रेखा सदृश पुरुष

कौन-सा पुरुष पाषाण (पत्थर) पर खिंची रेखा सदृश है ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्रायः क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध अत्यधिक दीर्घकाल तक रहता है। जैसे पत्थर पर खिंची रेखा न हवा से या न पानी से शीघ्र मिटती है, (वरन्) चिरस्थायी होती है, इसीप्रकार यहाँ कोई एक पुरुष प्रायः क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध अत्यधिक दीर्घकाल तक रहता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "पाषाण पर खिंची रेखा सदृश" कहा जाता है।

(ख) पथविलेखूपमो पुग्गलो

२४. [S.312] कतमो च पुग्गलो पथविलेखूपमो[1] ?

इधेकच्चो पुग्गलो अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो न[2] चिरं दीघरत्तं अनुसेति। सेय्यथापि नाम पथविया लेखा खिप्पं लुज्जति वातेन वा उदकेन वा, न चिरट्ठितिका होति; एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो न चिरं दीघरत्तं अनुसेति। अयं वुच्चति पुग्गलो "पथविलेखूपमो"।

---

१. पठविलेखूपमो – सी०; पठवीलेखूपमो – स्या०, रो०, एवमुपरि पि।

२. स्या० पोत्थके नत्थि।

(ख) पृथ्वी पर खिंची रेखा सदृश पुरुष

कौन-सा पुरुष पृथ्वी पर खिंची रेखा सदृश है ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्रायः क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध अत्यधिक दीर्घकाल तक नहीं रहता है। जैसे पृथ्वी पर खिंची रेखा हवा से या पानी से शीघ्र मिट जाती है, चिरस्थायी नहीं होती है। इसी प्रकार यहाँ कोई एक पुरुष प्रायः क्रोधित होता है। उसका वह क्रोध अत्यधिक दीर्घकाल तक नहीं रहता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "पृथ्वी पर खिंची रेखा सदृश" कहा जाता है।

(ग) उदकलेखूपमो पुग्गलो

२५. कतमो च पुग्गलो उदकलेखूपमो ?

इधेकच्चो पुग्गलो आगाळ्हेन[१] पि वुच्चमानो फरुसेन पि वुच्चमानो अमनापेन पि वुच्चमानो संसन्दतिमेव[२] सन्धियतिमेव[३] सम्मोदतिमेव[४]। सेय्यथापि नाम [R. 32] उदके लेखा खिप्पं लुज्जति, न चिरट्ठितिका होति; एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो आगाळ्हेन पि वुच्चमानो फरुसेन पि वुच्चमानो [N. 53] अमनापेन पि वुच्चमानो संसन्दतिमेव सन्धियतिमेव सम्मोदतिमेव। अयं वुच्चति पुग्गलो "उदकलेखूपमो"।

(ग) जल पर खिंची रेखा सदृश पुरुष

कौन-सा पुरुष जल पर खिंची रेखा सदृश है ?

यहाँ कोई एक पुरुष को (यदि) कटु (शब्द) भी बोला जाय, कठोर भी बोला जाय, अप्रिय भी बोला जाय तो भी (वह) अनुकूल ही रहता है, मिला ही रहता है, प्रसन्न ही रहता है। जैसे पानी पर खिंची रेखा शीघ्र ही विलीन हो जाती है, चिरस्थायी नहीं होती है, इसी प्रकार यहाँ कोई एक पुरुष को (यदि) कटु (शब्द) भी बोला जाय, कठोर भी बोला जाय, अप्रिय भी बोला जाय तो भी (वह) अनुकूल ही रहता है, मिला ही रहता है, प्रसन्न ही रहता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "जल पर खिंची रेखा सदृश" कहा जाता है।

---

१. अगाळ्हेन – सी०, स्या०, रो०।
२. संसन्दतिचेव – स्या०, रो०।
३. सन्धीयतिमेव – सी०; सन्धीयति चेव – स्या०, रो०।
४. सम्मोदति चेव – स्या०, रो०, एवमुपरि पि।

(१०) तयो पोत्थकूपमा पुग्गला

२६. तत्थ कतमे तयो पोत्थकूपमा पुग्गला ?

तयो पोत्थका– नवो पि पोत्थको दुब्बण्णो चेव होति दुक्खसम्फस्सो च अप्पग्घो च, मज्झिमो पि पोत्थको दुब्बण्णो चेव होति दुक्खसम्फस्सो च अप्पग्घो च, जिण्णो पि पोत्थको दुब्बण्णो चेव होति दुक्खसम्फस्सो च अप्पग्घो च। जिण्णं पि पोत्थकं उक्खलिपरिमज्जनं वा करोन्ति सङ्कारकूटे वा नं छड्डेन्ति।

(१०) तीन प्रकार के छाल के वस्त्र सदृश पुरुष

तब कौन-से तीन प्रकार के पुरुष छाल के वस्त्र सदृश हैं ?

तीन प्रकार के छाल के वस्त्र हैं – नया भी छाल का वस्त्र दुर्वर्ण, खुरदरा और कम मूल्य का होता है। मध्यम (या कुछ समय काम में लाया हुआ) भी छाल का वस्त्र दुर्वर्ण, खुरदरा और कम मूल्य का होता है। जीर्ण (पुराना) भी छाल का वस्त्र दुर्वर्ण, खुरदरा और कम मूल्य का होता है। छाल के जीर्ण (पुराने) वस्त्र को या तो बर्तन पोंछने के काम में लाते हैं या कूड़े के ढेर पर फेंक देते हैं।

एवमेवं तयोमे पोत्थकूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसु। कतमे तयो ? (१) नवो चे पि भिक्खु होति दुस्सीलो पापधम्मो, इदमस्स[1] दुब्बण्णताय। सेय्यथापि सो पोत्थको दुब्बण्णो, [B.138] तथूपमो अयं पुग्गलो। ये खो पनस्स सेवन्ति भजन्ति पयिरुपासन्ति दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, तेसं तं होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। इदमस्स दुक्खसम्फस्सताय। सेय्यथापि सो पोत्थको दुक्खसम्फस्सो, तथूपमो अयं पुग्गलो। येसं खो पन सो[2] पटिग्गण्हाति[3] चीवरपिण्डपातसेनासन-गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं, तेसं तं न महप्फलं होति न महानिसंसं। [S.314] इदमस्स अप्पग्घताय। सेय्यथापि सो पोत्थको अप्पग्घो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

---

१. इमस्स – म०।

२. सी०, स्या०, रो० पोत्थकेसु नत्थि।

३. पतिगण्हाति – सी०; पटिगण्हाति – रो०, एवमुपरि पि।

इसी तरह तीन प्रकार के छाल के वस्त्र सदृश पुरुष, भिक्षुओं में विद्यमान हैं। कौन-से तीन हैं ? (१) यदि नया भिक्षु भी दुश्शील, पापी होता है तो यह दुर्वर्ण के कारण ऐसा है। जिस प्रकार वह छाल का वस्त्र दुर्वर्ण है उसी प्रकार ही यह पुरुष है। जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं, उसका अनुकरण करते हैं, उसके लिए दीर्घकाल तक यह अहित, दुःख का कारण होता है, तो यह खुरदरापन के कारण ऐसा है। जैसे वह छाल का वस्त्र खुरदरा है वैसे ही यह पुरुष है। यह जिनके चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान, प्रत्यय, औषधि, परिष्कार ग्रहण करता है, उनके लिए यह न (तो) महान फल देने वाला (और) न (ही) महान परिणामकारी होता है। यह अल्प-मूल्यवान के कारण ऐसा है। जैसे वह छाल का वस्त्र अल्प-मूल्यवान है वैसे ही यह पुरुष है।

(२-३) मज्झिमो चे पि भिक्खु होति दुस्सीलो ... पे० ...। थेरो चे पि भिक्खु होति दुस्सीलो पापधम्मो, इदमस्स दुब्बण्णताय। सेय्यथापि सो पोत्थको दुब्बण्णो, तथूपमो अयं पुग्गलो। ये खो पनस्स सेवन्ति भजन्ति पयिरुपासन्ति दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, तेसं तं होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय। इदमस्स दुक्खसम्फस्सताय। सेय्यथापि सो पोत्थको दुक्खसम्फस्सो, तथूपमो अयं पुग्गलो। येसं खो पन सो पटिग्गण्हाति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं, तेसं तं न महप्फलं होति न महानिसंसं। इदमस्स अप्पग्घताय। सेय्यथापि सो पोत्थको अप्पग्घो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(२-३) यदि कोई मध्यम (आयु का) भिक्षु भी दुश्शील होता है ... । यदि कोई स्थविर भिक्षु भी दुश्शील, पापी होता है तो यह दुर्वर्ण के कारण ऐसा है। जैसे वह छाल का वस्त्र दुर्वर्ण है वैसे ही यह पुरुष है। जो उसके साथ रहते हैं, उसकी संगति करते हैं, उसके आश्रय में रहते हैं, उसका अनुकरण करते हैं, उसके लिए दीर्घकाल तक यह अहित, दुःख का कारण होता है, तो यह खुरदरापन के कारण ऐसा है। जैसे वह छाल का वस्त्र खुरदरा है वैसे ही यह पुरुष है। यह जिन (दाताओं) के चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान, प्रत्यय, औषधि, परिष्कार ग्रहण करता है, उनके लिए यह न (तो) महान फल देने वाला (और) न (ही) महान परिणामकारी होता है। यह अल्प-मूल्यवान के कारण ऐसा है। जैसे वह छाल का वस्त्र अल्प-मूल्यवान है वैसे ही यह पुरुष है।

एवरूपो च थेरो भिक्खु सङ्घमज्झे भणति। तमेनं भिक्खू एवमाहंसु– [N.54] "किं नु खो तुय्हं बालस्स अब्यत्तस्स भणितेन, त्वं पि नाम भणितब्बं मञ्ञसी" ति ! सो कुपितो[1] अनत्तमनो तथारूपिं वाचं निच्छारेति यथारूपाय वाचाय सङ्घो तं[2] उक्खिपति, सङ्कारकूटेन नं पोत्थकं। [R.34] इमे तयो पोत्थकूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसु।

इस प्रकार का स्थविर भिक्षु संघ के मध्य (बैठकर कुछ) बोलता है, तब भिक्षु (उसे) इस प्रकार कहते हैं – "तुम्हारे जैसे मूर्ख, अपण्डित के बोलने से क्या लाभ, तुम भी समझते होगे कि तुम्हारे पास कुछ बोलने योग्य है (अर्थात् तुम्हारे पास कुछ भी बोलने योग्य नहीं है) !" वह कुपित होकर, असन्तुष्ट होकर मुँह से ऐसी बात निकालता है जिसके कारण संघ उसे उसी प्रकार फेंक देता है जैसे कूड़े के ढेर पर छाल का कपड़ा। (इस तरह) ये तीन (प्रकार के) छाल के वस्त्र सदृश पुरुष, भिक्षुओं में विद्यमान हैं।

(११) तयो कासिकवत्थूपमा पुग्गला

२७. तत्थ कतमे तयो कासिकवत्थूपमा पुग्गला ?

तीणि कासिकवत्थानि – नवं पि कासिकवत्थं वण्णवन्तं चेव होति सुखसम्फस्सं च महग्घं च, मज्झिमं पि कासिकवत्थं वण्णवन्तं चेव होति सुखसम्फस्सं च महग्घं च, जिण्णं पि कासिकवत्थं वण्णवन्तं चेव होति सुखसम्फस्सं च महग्घं च। जिण्णं पि कासिकवत्थं रतनपलिवेठनं वा करोन्ति गन्धकरण्डके वा नं निक्खिपन्ति।

(११) तीन प्रकार के काशी के वस्त्र सदृश पुरुष

तब कौन-से तीन प्रकार के पुरुष काशी के वस्त्र सदृश हैं ?

तीन प्रकार के काशी के वस्त्र हैं– नया भी काशी का वस्त्र सुन्दर, मुलायम और बहुमूल्य होता है। मध्यम (कुछ काम में लाया हुआ) भी काशी का वस्त्र सुन्दर, मुलायम और बहुमूल्य होता है। जीर्ण (पुराना) भी काशी का वस्त्र सुन्दर, मुलायम और बहुमूल्य होता है। काशी के जीर्ण वस्त्र में भी या तो रत्न लपेटे जाते हैं या (उसे) सुगन्धित पेटी में रखते हैं।

---

१. कुप्पितो – स्या०, रो०।

२. सी०, स्या० पोत्थकेसु नत्थि।

[B.139] एवमेवं तयोमे कासिकवत्थूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसु। कतमे तयो? (१) नवो चे पि भिक्खु होति सीलवा कल्याणधम्मो, इदमस्स सुवण्णताय। सेय्यथापि तं कासिकवत्थं वण्णवन्तं, तथूपमो अयं पुग्गलो। ये खो पनस्स सेवन्ति भजन्ति पयिरुपासन्ति दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, तेसं तं होति दीघरत्तं हिताय सुखाय। इदमस्स सुखसम्फस्सताय। [S.316] सेय्यथापि तं कासिकवत्थं सुखसम्फस्सं, तथूपमो अयं पुग्गलो। येसं खो पन सो पटिग्गण्हाति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं, तेसं तं महप्फलं होति महानिसंसं। इदमस्स महग्घतायं। सेय्यथापि तं कासिकवत्थं महग्घं, तथूपमो अयं पुग्गलो।

इसी तरह तीन प्रकार के काशी के वस्त्र सदृश पुरुष, भिक्षुओं में विद्यमान हैं। कौन-से तीन हैं? (१) यदि नया भिक्षु भी शीलवान, कल्याणधर्मा होता है तो यह सौन्दर्य के कारण ऐसा है। जैसे वह काशी का सुन्दर वस्त्र है वैसे ही यह पुरुष है। जो उनके साथ रहते हैं, उनकी संगति करते हैं, उनके आश्रय में रहते हैं, उनका अनुकरण करते हैं, उनके लिए दीर्घकाल तक यह हित, सुख का कारण होता है। यह मुलायमपन के कारण ऐसा है। जैसे वह काशी का वस्त्र मुलायम है वैसे ही यह पुरुष है। यह जिन (दाताओं) के चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान, प्रत्यय, औषधि, परिष्कार ग्रहण करता है उनके लिए यह महान फल देने वाला, महान परिणामकारी होता है। यह बहुत मूल्यवान के कारण ऐसा है। जैसे वह काशी का वस्त्र बहुत मूल्यवान होता है वैसे ही यह पुरुष है।

(२-३) मज्झिमो चे पि भिक्खु ... पे०...। थेरो चे पि भिक्खु होति सीलवा कल्याणधम्मो, इदमस्स सुवण्णताय। सेय्यथापि तं कासिकवत्थं वण्णवन्तं, तथूपमो अयं पुग्गलो। ये खो पनस्स सेवन्ति भजन्ति पयिरुपासन्ति दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, तेसं तं होति दीघरत्तं हिताय सुखाय। इदमस्स सुखसम्फस्सताय। सेय्यथापि तं कासिकवत्थं सुखसम्फस्सं, तथूपमो अयं पुग्गलो। येसं खो पन सो पटिग्गण्हाति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं, तेसं तं महप्फलं होति महानिसंसं। इदमस्स महग्घताय। सेय्यथापि तं कासिकवत्थं महग्घं, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(२-३) यदि कोई मध्यम (आयु का) भिक्षु भी ...। यदि कोई स्थविर भिक्षु भी शीलवान, कल्याणधर्मा होता है तो यह सौन्दर्य के कारण ऐसा है। जैसे वह काशी का वस्त्र सुन्दर है वैसे ही यह पुरुष है। जो उनके साथ रहते हैं, उनकी संगति करते हैं, उनके आश्रय में रहते हैं, उनका अनुकरण करते हैं, उनके लिए दीर्घकाल तक यह हित, सुख का कारण होता है। यह मुलायमपन के कारण ऐसा है। जैसे वह काशी का वस्त्र मुलायम है वैसे ही यह पुरुष है। यह जिन (दाताओं) के चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान, प्रत्यय, औषधि, परिष्कार ग्रहण करता है, उनके लिए यह महान फल देने वाला, महान परिणामकारी होता है। यह बहुत मूल्यवान के कारण ऐसा है। जैसे वह काशी का वस्त्र बहुत मूल्यवान होता है वैसे ही यह पुरुष है।

[N.55] एवरूपो चे[1] थेरो भिक्खु सङ्घमज्झे भणति, तमेनं भिक्खू एवमाहंसु– "अप्पसद्दा आयस्मन्तो होथ, थेरो भिक्खु धम्मं च विनयं च भणती"ति। तस्स तं वचनं आधेय्यं गच्छति, गन्धकरण्डकेव [R.35] नं कासिकवत्थं। इमे तयो कासिकवत्थूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसु।

यदि इस प्रकार का स्थविर भिक्षु संघ के मध्य (कुछ भी) बोलता है तो उस समय भिक्षु ऐसा कहते हैं – "आयुष्मानो धीरे बोलो (अर्थात् चुप रहो)! (क्योंकि) स्थविर भिक्षु धर्म (सुत्त तथा अभिधम्म) तथा विनय कह रहे हैं।" उसका वह वचन उसी प्रकार ध्यान से सुना जाता है जैसे काशी का वस्त्र सुगन्धित पेटी (सन्दूक) में रखा जाता है। (इस तरह) ये तीन प्रकार के काशी के वस्त्र सदृश पुरुष, भिक्षुओं में विद्यमान हैं।

(१२. क) सुप्पमेय्यो पुग्गलो

२८. कतमो च पुग्गलो सुप्पमेय्यो ?

इधेकच्चो पुग्गलो उद्धतो होति उन्नळो[2] चपलो मुखरो विकिण्णवाचो मुट्ठस्सति असम्पजानो असमाहितो विब्भन्तचित्तो पाकटिन्द्रियो[3]। अयं वुच्चति पुग्गलो "सुप्पमेय्यो"।

(१२. क) सरलतापूर्वक मापे जाने योग्य पुरुष

कौन-सा पुरुष सरलतापूर्वक मापे जाने योग्य है ?

१. च – सी०।
२. उन्नलो – सी०, रो०, एवमुपरि पि।
३. असंवुतिन्द्रियो – सी०।

यहाँ कोई एक पुरुष उद्धत, अभिमानी, चपल, मुखर, असंयतभाषी, मूढ़, अज्ञानी, असमाहित, भ्रान्त-चित्त, असंयमी होता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "सरलतापूर्वक मापे जाने वाला" कहलाता है।

(ख) दुप्पमेय्यो पुग्गलो

२६. कतमो च पुग्गलो दुप्पमेय्यो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अनुद्धतो होति अनुन्नळो अचपलो अमुखरो अविकिण्णवाचो [B.140] उपट्ठितस्सति सम्पजानो समाहितो एकग्गचित्तो संवुतिन्द्रियो। अयं वुच्चति पुग्गलो "दुप्पमेय्यो"।

(ख) कठिनाई पूर्वक मापे जाने योग्य पुरुष

कौन-सा पुरुष कठिनाई पूर्वक मापे जाने योग्य है ?

यहाँ कोई एक पुरुष अनुद्धत, अअभिमानी, अचपल, अमुखर, संयतभाषी, अमूढ़, ज्ञानी, समाहित, एकाग्र-चित्त, संयमी होता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "कठिनाई पूर्वक मापे जाने वाला" कहलाता है।

(ग) अप्पमेय्यो पुग्गलो

३०. कतमो च पुग्गलो अप्पमेय्यो ?

इधेकच्चो पुग्गलो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति पुग्गलो "अप्पमेय्यो"।

(ग) न मापे जाने योग्य पुरुष

कौन-सा पुरुष न मापे जाने योग्य है ?

यहाँ कोई एक पुरुष आस्रवों का क्षयकर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्तकर विहार करता है। (इस प्रकार) यह पुरुष "न मापे जाने वाला" कहलाता है।

(१३. क) न सेवितब्बो पुग्गलो

३१. [S.318] कतमो च पुग्गलो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो ?

इधेकच्चो पुग्गलो हीनो होति सीलेन समाधिना पञ्ञाय। एवरूपो

पुग्गलो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो, अञ्ञत्र अनुद्दया अञ्ञत्र अनुकम्पा।

(१३. क) न साथ रहने योग्य पुरुष

कौन-सा पुरुष न साथ रहने योग्य, न संगति करने योग्य, (और) न (ही) साथ उठने-बैठने योग्य है ?

यहाँ कोई एक पुरुष शील, समाधि, प्रज्ञा से हीन होता है। इस प्रकार के पुरुष के साथ दया और अनुकम्पा करने की स्थिति को छोड़कर, न (तो उसके) साथ रहना चाहिए, न (तो उसकी) संगति करनी चाहिए, (और) न (ही उसके) साथ उठना-बैठना चाहिए।

(ख) सेवितब्बो पुग्गलो

३२. कतमो च पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो ?

[N.56] इधेकच्चो पुग्गलो सदिसो होति सीलेन समाधिना पञ्ञाय। एवरूपो पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। तं किस्स हेतु ? "सीलसामञ्ञगतानं सतं सीलकथा च नो भविस्सति, सा च नो फासु भविस्सति, सा च नो पवत्तिनी[1] भविस्सति; समाधिसामञ्ञगतानं सतं समाधिकथा च नो भविस्सति, सा च नो फासु भविस्सति, सा च नो पवत्तिनी भविस्सति; पञ्ञासामञ्ञगतानं सतं पञ्ञाकथा च नो भविस्सति, सा च नो फासु भविस्सति, सा च नो पवत्तिनी भविस्सती"ति एवरूपो पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो।

(ख) साथ रहने योग्य पुरुष

कौन-सा पुरुष साथ रहने योग्य, संगति करने योग्य, (तथा) उठने-बैठने योग्य है ?

यहाँ कोई एक पुरुष शील, समाधि, प्रज्ञा के सदृश होता है। इस प्रकार के पुरुष के साथ रहना चाहिए, संगति करनी चाहिए, उठना-बैठना चाहिए। यह

---

१. पवत्तनी – सी०, एवमुपरि पि।

किस कारण ? "शील-सदृश वालों के साथ शीलकथा आरम्भ होगी (अर्थात् हमें शीलकथा सुनने को मिलेगी), उस (शीलकथा) से (हमें) सुख मिलेगा, वह (शीलकथा) लगातार जारी रहेगी; समाधि-सदृश वालों के साथ समाधिकथा आरम्भ होगी, उस (समाधिकथा) से (हमें) सुख मिलेगा, वह (समाधिकथा) लगातार चलती रहेगी; प्रज्ञा-सदृश वालों के साथ प्रज्ञाकथा आरम्भ होगी, उस (प्रज्ञाकथा) से (हमें) सुख मिलेगा, वह (प्रज्ञाकथा) लगातार चलती रहेगी", यही सोचकर इस प्रकार के पुरुष के साथ रहना चाहिए, संगति करनी चाहिए, तथा उठना-बैठना चाहिए।

(ग) सक्कत्वा सेवितब्बो पुग्गलो

३३. कतमो च पुग्गलो सक्कत्वा गरुं कत्वा सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अधिको होति सीलेन समाधिना पञ्ञाय। एवरूपो पुग्गलो सक्कत्वा गरुं कत्वा सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। तं किस्स हेतु ? "अपरिपूरं वा सीलक्खन्धं परिपूरेस्सामि, परिपूरं वा सीलक्खन्धं [R.36] तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामि[1]; अपरिपूरं वा समाधिक्खन्धं परिपूरेस्सामि, परिपूरं वा समाधिक्खन्धं तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामि; अपरिपूरं वा पञ्ञाक्खन्धं परिपूरेस्सामि, परिपूरं वा पञ्ञाक्खन्धं तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामी"ति तस्मा एवरूपो पुग्गलो सक्कत्वा गरुं कत्वा सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो।

(ग) गौरव पूर्वक साथ रहने योग्य पुरुष

कौन-से पुरुष के साथ गौरवपूर्वक, आदरपूर्वक रहना चाहिए, संगति करनी चाहिए, उठना-बैठना चाहिए ?

यहाँ कोई एक पुरुष शील, समाधि, प्रज्ञा में अधिक (जानकार) होता है। ऐसे पुरुष के साथ गौरवपूर्वक, आदरपूर्वक (सेवा करते हुए) रहना चाहिए, संगति करनी चाहिए, उठना-बैठना चाहिए। यह किस कारण ? "मैं अपरिपूर्ण शील-स्कन्ध को परिपूर्ण करूँगा, परिपूर्ण शील-स्कन्ध को उस-उस (विषय) में

---

१. अनुग्गहिस्सामि – स्या०, रो०, एवमुपरि पि।

प्रज्ञा से दृढ़ करूँगा; अपरिपूर्ण समाधि-स्कन्ध को परिपूर्ण करूँगा, परिपूर्ण समाधि-स्कन्ध को उस-उस (विषय) में प्रज्ञा से दृढ़ करूँगा; अपरिपूर्ण प्रज्ञा-स्कन्ध को परिपूर्ण करूँगा, परिपूर्ण प्रज्ञा-स्कन्ध को उस-उस (विषय) में प्रज्ञा से दृढ़ करूँगा'', यह सोचकर इस प्रकार के पुरुष के साथ गौरव पूर्वक, आदर पूर्वक (सेवा करते हुए) रहना चाहिए, संगति करनी चाहिए, उठना-बैठना चाहिए।

(१४. क) जिगुच्छितब्बो न सेवितब्बो पुग्गलो

३४. [B.141; S.320] कतमो च पुग्गलो जिगुच्छितब्बो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो ?

इधेकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो असुचि सङ्कस्सरसमाचारो पटिच्छन्नकम्मन्तो अस्समणो समणपटिञ्ञो अब्रह्मचारी ब्रह्मचारिपटिञ्ञो अन्तोपूति अवस्सुतो कसम्बुजातो। एवरूपो पुग्गलो जिगुच्छितब्बो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो। तं किस्स हेतु ? किञ्चापि एवरूपस्स पुग्गलस्स न दिट्ठानुगतिं आपज्जति, [N.57] अथ खो नं पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति– ''पापमित्तो पुरिसपुग्गलो पापसहायो पापसम्पवङ्को'' ति। सेय्यथापि नाम अहि गूथगतो किञ्चापि न डंसति अथ खो नं मक्खेति, एवमेवं किञ्चापि एवरूपस्स पुग्गलस्स न दिट्ठानुगतिं आपज्जति, अथ खो नं पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति – ''पापमित्तो पुरिसपुग्गलो पापसहायो पापसम्पवङ्को''ति ! तस्मा एवरूपो पुग्गलो जिगुच्छितब्बो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो।

(१४. क) घृणा करने योग्य, न साथ रहने योग्य पुरुष

कौन-सा पुरुष घृणा करने योग्य है, जिसके साथ न रहना चाहिए, न संगति करनी चाहिए, न उठना-बैठना चाहिए ?

यहाँ कोई एक पुरुष दुश्शील, पापधर्मा, अपवित्र सशंकित आचरण वाला, छिपकर कर्म (आचरण) करने वाला, अश्रमण होकर श्रमण कहने वाला, अब्रह्मचारी होकर ब्रह्मचारी कहने वाला, अन्दर से सड़ा हुआ, रागादि स्राव-युक्त, कूड़े-करकट से समन्वित होता है। इस प्रकार का पुरुष घृणा करने योग्य होता है, जिसके साथ न रहना चाहिए, न संगति करनी चाहिए, न उठना-बैठना चाहिए। यह किस कारण ? (चाहे कोई) इस प्रकार के पुरुष का कुछ भी अनुकरण न करता हो तो भी उसका अपयश होता है– ''यह पुरुष पापियों का मित्र होता है, पापियों का सहायक होता है, पापियों के साथ जुड़ा होता है।'' जैसे गूथ

में लिबड़ा हुआ सर्प चाहे डंक न मारे तो भी दूसरों को लबेड़ देगा, इसीप्रकार चाहे कोई पुरुष ऐसे पुरुष का कुछ भी अनुकरण न करता है तो भी उसका अपयश होता है – "यह पुरुष पापियों का मित्र होता है, पापियों का सहायक होता है, पापियों के साथ जुड़ा होता है।" इसलिए इस प्रकार का पुरुष घृणा करने योग्य होता है, जिसके साथ न रहना चाहिए, न संगति करनी चाहिए, न उठना-बैठना चाहिए।

(ख) अज्झुपेक्खितब्बो न सेवितब्बो पुग्गलो

३५. कतमो च पुग्गलो अज्झुपेक्खितब्बो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो ?

इधेकच्चो पुग्गलो कोधनो होति उपायासबहुलो, अप्पं पि वुत्तो समानो अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। सेय्यथापि नाम दुद्दारुको[1] कट्ठेन वा कठलाय वा घट्टितो[2] भिय्योसो मत्ताय आसवं[3] देति[3], एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो कोधनो होति उपायासबहुलो, अप्पं पि वुत्तो समानो अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। सेय्यथापि नाम तिन्दुकालातं कट्ठेन वा कठलाय वा घट्टितं भिय्योसो मत्ताय चिच्चिटायति चिटिचिटायति, एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो कोधनो होति उपायासबहुलो, अप्पं पि वुत्तो समानो अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। सेय्यथापि नाम गूथकूपो कट्ठेन वा कठलाय वा घट्टितो भिय्योसो मत्ताय दुग्गन्धो होति, एवमेवं इधेकच्चो पुग्गलो कोधनो होति उपायासबहुलो, अप्पं पि वुत्तो समानो अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं [R.37] च पातुकरोति; एवरूपो पुग्गलो अज्झुपेक्खितब्बो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो। तं किस्स हेतु ? "अक्कोसेय्य पि मं परिभासेय्य पि मं [B.142] अनत्थं पि मे[4] करेय्या"ति ! तस्मा एवरूपो पुग्गलो अज्झुपेक्खितब्बो न सेवितब्बो न भजितब्बो न पयिरुपासितब्बो।

१. दुद्दारुका – सी०।
२. घट्टिता – सी०।
३-३. अस्सवनो ति – सी०।
४. मं – सी०।

(ख) उपेक्षा करने योग्य, न साथ रहने योग्य पुरुष

कौन-सा पुरुष उपेक्षा करने योग्य है जिसके साथ न रहना चाहिए, न संगति करनी चाहिए, न उठना-बैठना चाहिए ?

यहाँ कोई एक पुरुष क्रोधी और अशान्त स्वभाव का होता है, थोड़ा भी बोलने से क्रोधित हो जाता है, कुपित हो जाता है, ब्यापादग्रस्त हो जाता है, विरोधी हो जाता है, क्रोध, द्वेष और असन्तोष प्रकट करता है। जैसे पुराने व्रण में लकड़ी, कंकड़ (पत्थर) लग जाने से अत्यधिक मात्रा में आस्रव (पीब) बहने लग जाता है, इसी प्रकार यहाँ कोई एक भिक्षु क्रोधी और अशान्त स्वभाव का होता है, थोड़ा भी बोलने से क्रोधित हो जाता है, कुपित हो जाता है, ब्यापादग्रस्त हो जाता है, विरोधी हो जाता है, क्रोध, द्वेष और असन्तोष प्रकट करता है। जैसे तिन्दुक-वृक्ष अलात (ऐसा तिन्दुक-वृक्ष जो किसी चीज से छूते ही अग्नि प्रज्वलित हो जाय) को लकड़ी या कंकड़ (पत्थर) से छु देने से और भी अधिक मात्रा में बुदबुदा कर चिट-चिट करता है, इसीप्रकार कोई एक पुरुष क्रोधी और अशान्त स्वभाव का होता है, थोड़ा भी बोलने से क्रोधित हो जाता है, कुपित हो जाता है, ब्यापादग्रस्त हो जाता है, विरोधी (स्वभाव का) हो जाता है, क्रोध, द्वेष और असन्तोष प्रकट करता है। जैसे गूथकूप को लकड़ी या कंकड़ (पत्थर) से छू देने से और भी अधिक मात्रा में दुर्गन्ध देता है, वैसे ही यहाँ कोई पुरुष क्रोधी और अशान्त स्वभाव का होता है, थोड़ा भी बोलने से क्रोधित हो जाता है, कुपित हो जाता है, ब्यापादग्रस्त हो जाता है, विरोधी (स्वभाव का) हो जाता है, क्रोध, द्वेष और असन्तोष प्रकट करता है; इस प्रकार का पुरुष उपेक्षा करने योग्य होता है, साथ रहने योग्य नहीं होता, संगति करने योग्य नहीं होता, उठने-बैठने योग्य नहीं होता है। यह किस कारण ? "(क्योंकि) यह मेरा अपमान भी कर सकता है, अपशब्द भी कह सकता है और मेरा अनर्थ भी कर सकता है।" इसलिए इस प्रकार के पुरुष के प्रति उपेक्षा करनी चाहिए, (उसके) साथ नहीं रहना चाहिए, न संगति करनी चाहिए, न उठना-बैठना चाहिए।

(ग) सेवितब्बो पुग्गलो

३६. [S.322] कतमो च पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो ?

[N.58] इधेकच्चो पुग्गलो सीलवा होति कल्याणधम्मो। एवरूपो पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो। तं किस्स हेतु ? किञ्चापि एवरूपस्स पुग्गलस्स न[1] दिट्ठानुगतिं आपज्जति, अथ खो

१. पन – रो०।

नं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति – "कल्याणमित्तो पुरिसपुग्गलो कल्याणसहायो कल्याणसम्पवङ्को"ति ! तस्मा एवरूपो पुग्गलो सेवितब्बो भजितब्बो पयिरुपासितब्बो।

(ग) साथ रहने योग्य पुरुष

कौन-सा पुरुष साथ रहने योग्य, संगति करने योग्य, उठने-बैठने योग्य है ?

यहाँ कोई एक पुरुष शीलवान और कल्याणधर्मा होता है। इस प्रकार के पुरुष के साथ रहना चाहिए, संगति करनी चाहिए, उठना-बैठना चाहिए। यह किस कारण ? इस प्रकार के पुरुष का कोई थोड़ा भी अनुकरण करे तो उसका कल्याण होता है, कीर्ति तथा यश फैलता है "यह पुरुष सज्जनों का मित्र होता है, सज्जनों का सहायक होता है तथा सज्जनों से युक्त होता है।" इसलिए इस प्रकार के पुरुष के साथ रहना चाहिए, संगति करनी चाहिए, उठना-बैठना चाहिए।

(१५. क) सीलेसु परिपूरकारी पुग्गलो

३७. कतमो च पुग्गलो सीलेसु परिपूरकारी[१], समाधिस्मिं मत्तसो कारी, पञ्ञाय मत्तसो कारी ?

सोतापन्नसकदागामिनो– इमे वुच्चन्ति पुग्गला सीलेसु परिपूरकारिनो, समाधिस्मिं मत्तसो कारिनो, पञ्ञाय मत्तसो कारिनो।

(१५. क) शील में परिपूर्णता प्राप्त पुरुष

कौन-सा पुरुष शील (के परिपालन) में परिपूर्णता प्राप्त की है, समाधि (के परिपालन) में अल्प (मात्रा में) उपलब्धि प्राप्त की है, प्रज्ञा में (भी) अल्प उपलब्धि प्राप्त की है ?

स्रोतापन्न, सकृदागामी (ही) ऐसे पुरुष कहलाते हैं, जो शील (के परिपालन) में परिपूर्णता प्राप्त की है, (पर) समाधि में अल्प उपलब्धि प्राप्त की है, (तथा) प्रज्ञा में (भी) अल्प उपलब्धि प्राप्त की है।

---

१. परिपूरीकारी – स्या०, एवमुपरि पि।

(ख) सीलसमाधिसु परिपूरकारी पुग्गलो

३८. कतमो च पुग्गलो सीलेसु च परिपूरकारी, समाधिस्मिं च परिपूरकारी, पञ्ञाय मत्तसो कारी ?

अनागामी– अयं वुच्चति पुग्गलो सीलेसु च परिपूरकारी, समाधिस्मिं च परिपूरकारी, पञ्ञाय मत्तसो कारी।

(ख) शील, समाधि में परिपूर्णता प्राप्त पुरुष

कौन-सा पुरुष शील में परिपूर्णता प्राप्त की है और समाधि में (भी) परिपूर्णता प्राप्त की है, (पर) प्रज्ञा में अल्प (मात्रा में) उपलब्धि प्राप्त की है ?

अनागामी (ही) ऐसा पुरुष कहलाता है जो शील में परिपूर्णता प्राप्त की है और समाधि में (भी) पारेपूर्णता प्राप्त की है, (पर) प्रज्ञा में अल्प उपलब्धि प्राप्त की है।

(ग) सीलसमाधिपञ्ञासु परिपूरकारी पुग्गलो

३९. कतमो च पुग्गलो सीलेसु च परिपूरकारी, समाधिस्मिं च परिपूरकारी, पञ्ञाय च परिपूरकारी ?

अरहा – अयं वुच्चति पुग्गलो सीलेसु च परिपूरकारी, समाधिस्मिं च परिपूरकारी, पञ्ञाय च परिपूरकारी।

(ग) शील, समाधि, प्रज्ञा में परिपूर्णता प्राप्त पुरुष

कौन-सा पुरुष शील में परिपूर्णता प्राप्त की है, समाधि में परिपूर्णता प्राप्त की है और प्रज्ञा में (भी) परिपूर्णता प्राप्त की है ?

अर्हत (ही) ऐसा पुरुष कहलाता है जो शील में परिपूर्णता प्राप्त की है, समाधि में परिपूर्णता प्राप्त की है और प्रज्ञा में (भी) परिपूर्णता प्राप्त की है।

(१६.क,ख,ग) तयो सत्थारो

४०. तत्थ कतमे तयो सत्थारो ?

इधेकच्चो सत्था कामानं परिञ्ञं पञ्ञपेति[1], न रूपानं परिञ्ञं पञ्ञपेति, न वेदनानं परिञ्ञं पञ्ञपेति। इध पनेकच्चो सत्था कामानं च परिञ्ञं पञ्ञपेति, रूपानं च परिञ्ञं पञ्ञपेति, न वेदनानं [N.59] परिञ्ञं पञ्ञपेति। इध पनेकच्चो सत्था कामानं च परिञ्ञं पञ्ञपेति, रूपानं च परिञ्ञं पञ्ञपेति, वेदनानं च परिञ्ञं पञ्ञपेति।

(१६. क,ख,ग) तीन (प्रकार के) शास्ता (पुरुष)

तब कौन-से तीन (प्रकार के) शास्ता हैं ?

यहाँ कोई एक शास्ता इन्द्रिय सुख को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है, रूपों का यथार्थतः प्रज्ञापन नहीं करता है, (और) न (ही) वेदनाओं का यथार्थतः प्रज्ञापन करता है। यहाँ कोई एक शास्ता इन्द्रिय सुख को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है और रूपों को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है, (पर) वेदनाओं का यथार्थतः प्रज्ञापन नहीं करता है। यहाँ कोई एक शास्ता इन्द्रिय सुख को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है, रूपों को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है और वेदनाओं को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है।

तत्र य्वायं सत्था कामानं परिञ्ञं पञ्ञपेति, न रूपानं परिञ्ञं पञ्ञपेति, न वेदनानं परिञ्ञं पञ्ञपेति, रूपावचरसमापत्तिया लाभी सत्था तेन दट्ठब्बो। [R.38] तत्र य्वायं सत्था कामानं च परिञ्ञ पञ्ञपेति, [B.143] रूपानं च परिञ्ञं पञ्ञपेति, न वेदनानं परिञ्ञं पञ्ञपेति, अरूपावचरसमापत्तिया लाभी सत्था तेन दट्ठब्बो। तत्र य्वायं सत्था कामानं च परिञ्ञं पञ्ञपेति, रूपानं च परिञ्ञं पञ्ञपेति, वेदनानं च परिञ्ञं पञ्ञपेति, सम्मासम्बुद्धो सत्था तेन दट्ठब्बो। इमे तयो सत्थारो।

वहाँ जो शास्ता इन्द्रिय सुख को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है, रूपों का यथार्थतः प्रज्ञापन नहीं करता है, (और) न वेदनाओं का यथार्थतः प्रज्ञापन करता है, इस प्रकार के शास्ता को रूपावचरसमापत्ति का लाभ प्राप्त करने वाला कहा गया है। वहाँ जो शास्ता इन्द्रिय सुख को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है और रूपों को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है, (पर) वेदनाओं का यथार्थतः प्रज्ञापन नहीं करता है, इस प्रकार के शास्ता को अरूपावचर

---

१. पञ्ञापेति – सी०, स्या०, रो०, एवमुपरि पि।

समापत्ति का लाभ प्राप्त करने वाला कहा गया है। वहाँ जो शास्ता इन्द्रिय सुख को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है, रूपों को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है और वेदनाओं को यथार्थ रूप से जानकर प्रज्ञापन करता है, इस प्रकार के शास्ता को सम्यकसम्बुद्ध कहा गया है। यही तीन प्रकार के शास्ता हैं।

(१७. क, ख, ग) अपरे पि तयो सत्थारो

४१. [S.324] तत्थ कतमे अपरे पि तयो सत्थारो ?

इधेकच्चो सत्था दिट्ठे चेव धम्मे अत्तानं सच्चतो थेततो पञ्ञपेति, अभिसम्परायं च अत्तानं सच्चतो थेततो पञ्ञपेति। इध पनेकच्चो सत्था दिट्ठे[१] चेव[१] धम्मे अत्तानं सच्चतो थेततो पञ्ञपेति, नो च खो अभिसम्परायं अत्तानं सच्चतो थेततो पञ्ञपेति। इध पनेकच्चो सत्था दिट्ठे चेव धम्मे अत्तानं सच्चतो थेततो न पञ्ञपेति, अभिसम्परायं च अत्तानं सच्चतो थेततो न पञ्ञपेति।

(१७. क,ख,ग) दूसरे भी तीन (प्रकार के) शास्ता (पुरुष)

तब कौन-से दूसरे भी तीन (प्रकार के) शास्ता हैं ?

यहाँ कोई एक शास्ता जो आत्मा को इस लोक में सत्य, यथार्थ रूप में दृढ़तापूर्वक प्रज्ञापित करता है और उस लोक में आत्मा को सत्य, यथार्थ रूप में दृढ़तापूर्वक प्रज्ञापित करता है। यहाँ कोई एक शास्ता जो आत्मा को इस लोक में सत्य, यथार्थ तथा दृढ़ रूप में प्रज्ञापित करता है परन्तु उस लोक में आत्मा को सत्य, यथार्थ तथा दृढ़ रूप में प्रज्ञापित नहीं करता है। यहाँ कोई एक शास्ता जो न तो आत्मा को इस लोक में सत्य, यथार्थ रूप में दृढ़तापूर्वक प्रज्ञापित करता है और न ही उस लोक में आत्मा को सत्य, यथार्थ रूप में दृढ़तापूर्वक प्रज्ञापित करता है।

तत्र य्वायं सत्था दिट्ठे चेव धम्मे अत्तानं सच्चतो थेततो पञ्ञपेति, अभिसम्परायं च अत्तानं सच्चतो थेततो पञ्ञपेति, सस्सतंवादो सत्था तेन दट्ठब्बो। तत्र य्वायं सत्था दिट्ठे चेव धम्मे अत्तानं सच्चतो थेततो पञ्ञपेति, नो च खो अभिसम्परायं अत्तानं सच्चतो थेततो पञ्ञपेति,

---

१-१. दिट्ठेव – सी०, रो०।

उच्छेदवादो सत्था तेन दट्ठब्बो। तत्र य्वायं सत्था दिट्ठे चेव धम्मे अत्तानं सच्चतो थेततो न पञ्ञपेति, अभिसम्परायं च अत्तानं सच्चतो थेततो न पञ्ञपेति, सम्मासम्बुद्धो सत्था तेन दट्ठब्बो। इमे अपरे पि तयो सत्थारो।

तिकनिद्देसो निट्ठितो।

वहाँ जो शास्ता आत्मा को इस लोक में सत्य, यथार्थ रूप मे दृढ़तापूर्वक प्रज्ञापित करता है और उस लोक में आत्मा को सत्य, यथार्थ रूप में दृढ़तापूर्वक प्रज्ञापित करता है, इस प्रकार के शास्ता को शाश्वतवादी कहा गया है। वहाँ जो शास्ता आत्मा को इस लोक में सत्य, यथार्थ रूप में दृढ़तापूर्वक प्रज्ञापित करता है परन्तु उस लोक में आत्मा को सत्य, यथार्थ रूप में दृढ़तापूर्वक प्रज्ञापित नहीं करता है, इस प्रकार के शास्ता को उच्छेदवादी कहा गया है। वहाँ जो शास्ता न (तो) आत्मा को इस लोक में सत्य, यथार्थ रूप में दृढ़तापूर्वक प्रज्ञापित करता है और न (ही) उस लोक में आत्मा को सत्य, यथार्थ रूप में दृढ़तापूर्वक प्रज्ञापित करता है। इस प्रकार के शास्ता को सम्यकसम्बुद्ध कहा गया है। यही दूसरे भी तीन (प्रकार के) शास्ता हैं।

तीन-तीन निर्देश समाप्त।

चतुत्थो परिच्छेदो

४. चतुक्कपुग्गलपञ्ञत्ति

(१. क) असप्पुरिसो पुग्गलो

१. [N.60; S.326] कतमो च पुग्गलो असप्पुरिसो ?

इधेकच्चो पुग्गलो पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी होति। अयं वुच्चति पुग्गलो "असप्पुरिसो"।

४. चार-चार प्रकार के पुरुषों का प्रज्ञापन

(१. क) असत्पुरुष पुरुष

कौन-सा पुरुष असत्पुरुष है ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्राणी-हिंसा करने वाला होता है, चोरी करने वाला होता है, व्यभिचार करने वाला होता है, झूठ बोलने वाला होता है, सुरा-मेरय-मद्य आदि नशीली वस्तुएं ग्रहण करने वाला होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "असत्पुरुष" कहा जाता है।

(ख) असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो पुग्गलो

२. [R.39] कतमो च पुग्गलो असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अत्तना च पाणातिपाती होति परं च पाणातिपाते [B.144] समादपेति, अत्तना च अदिन्नादायी होति परं च अदिन्नादाने समादपेति, अत्तना च कामेसुमिच्छाचारी होति परं च कामेसुमिच्छाचारे समादपेति, अत्तना च मुसावादी होति परं च मुसावादे समादपेति, अत्तना च सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी होति परं च सुरामेरयमज्जपमादट्ठाने समादपेति। अयं वुच्चति पुग्गलो "असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो"।

(ख) असत्पुरुष से (भी) अधिकतर असत्पुरुष पुरुष

कौन-सा पुरुष असत्पुरुष से (भी) अधिकतर असत्पुरुष है ?

यहाँ कोई एक पुरुष स्वयं प्राणी-हिंसा करने वाला होता है और दूसरों को (भी) प्राणी-हिंसा करने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं चोरी करने वाला होता है और दूसरो को (भी) चोरी करने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं व्यभिचारी होता है और दूसरों को (भी) व्यभिचार करने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं झूठ बोलने वाला होता है और दूसरों को (भी) झूठ बोलने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं सुरा-मेरय-मद्य आदि नशीली वस्तुएं ग्रहण करने वाला होता है और दूसरों को (भी) सुरा-मेरय-मद्य आदि नशीली वस्तुओं को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "असत्पुरुष से (भी) अधिकतर असत्पुरुष" कहा जाता है।

(ग) सप्पुरिसो पुग्गलो

३. कतमो च पुग्गलो सप्पुरिसो ?

इधेकच्चो पुग्गलो पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा[1] पटिविरतो होति[1], सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति। अयं वुच्चति पुग्गलो "सप्पुरिसो"।

(ग) सत्पुरुष पुरुष

कौन-सा पुरुष सत्पुरुष है ?

यहाँ कोई एक पुरुष-प्राणी-हिंसा से विरत होता है, चोरी करने से विरत होता है, व्यभिचार से विरत होता है, झूठ बोलने से विरत होता है, सुरा-मेरय-मद्य आदि नशीली वस्तुएं ग्रहण करने से विरत होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "सत्पुरुष" कहा जाता है।

(घ) सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो पुग्गलो

४. कतमो च पुग्गलो सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अत्तना च पाणातिपाता पटिविरतो होति परं च पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति, अत्तना च अदिन्नादाना पटिविरतो होति परं च अदिन्नादाना वेरमणिया समादपेति, अत्तना च कामेसुमिच्छाचारा

१-१. रो० पोत्थके नत्थि।

पटिविरतो होति परं च कामेसुमिच्छाचारा वेरमणिया [N.61] समादपेति, अत्तना च मुसावादा पटिविरतो होति परं च मुसावादा वेरमणिया समादपेति, अत्तना च सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति परं च सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणिया समादपेति। अयं वुच्चति पुग्गलो "सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो"।

(घ) सत्पुरुष से (भी) अधिकतर सत्पुरुष पुरुष

कौन-सा पुरुष सत्पुरुष से (भी) अधिकतर सत्पुरुष है ?

यहाँ कोई एक पुरुष स्वयं प्राणी-हिंसा से विरत होता है और दूसरों को (भी) प्राणी-हिंसा से विरत रहने की प्रेरणा देता है, स्वयं चोरी करने से विरत होता है और दूसरों को (भी) चोरी करने से विरत रहने की प्रेरणा देता है, स्वयं व्यभिचार करने से विरत होता है और दूसरों को (भी) व्यभिचार करने से विरत रहने की प्रेरणा देता है, स्वयं झूठ बोलने से विरत होता है और दूसरों को (भी) झूठ बोलने से विरत रहने की प्रेरणा देता है, स्वयं सुरा-मेरय-मद्य आदि नशीली वस्तुओं को ग्रहण करने से विरत होता है और दूसरों को (भी) सुरा-मेरय-मद्य आदि नशीली वस्तुओं को ग्रहण करने से विरत रहने की प्रेरणा देता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "सत्पुरुष से (भी) अधिकतर सत्पुरुष" कहा जाता है।

(२. क) पापो पुग्गलो

५. [S.328] कतमो च पुग्गलो पापो ?

इधेकच्चो पुग्गलो पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, पिसुणवाचो[1] होति, फरुसवाचो[2] होति, सम्फप्पलापी होति, अभिज्झालु होति, ब्यापन्नचित्तो होति, मिच्छादिट्ठि होति। अयं वुच्चति पुग्गलो "पापो"।

(२. क) पापी पुरुष

कौन-सा पुरुष पापी है ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्राणी-हिंसा करने वाला होता है, चोरी करने वाला होता है, व्यभिचार करने वाला होता है, झूठ बोलने वाला होता है, पैशुन्य वचन (चुगलखोरी)

१. पिसुनावाचो – सी०।
२. फरुसावाचो – सी०।

बोलने वाला होता है, कठोर वचन बोलने वाला होता है, निरर्थक वचन बोलने वाला होता है, अत्यन्त लोभी होता है, द्वेषी होता है, मिथ्या-दृष्टि से युक्त होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "पापी" कहा जाता है।

(ख) पापेन पापतरो पुग्गलो

६. कतमो च पुग्गलो पापेन पापतरो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अत्तना च पाणातिपाती होति परं च पाणातिपाते समादपेति, [B.145] अत्तना च अदिन्नादायी होति परं च अदिन्नादाने समादपेति, अत्तना च कामेसुमिच्छाचारी होति परं च कामेसुमिच्छाचारे समादपेति, अत्तना च मुसावादी होति परं च मुसावादे समादपेति, अत्तना च पिसुणवाचो होति परं च पिसुणाय वाचाय समादपेति, अत्तना च [R.40] फरुसवाचो होति परं च फरुसाय वाचाय समादपेति, अत्तना च सम्फप्पलापी होति परं च सम्फप्पलापे समादपेति, अत्तना च अभिज्झालु होति परं च अभिज्झाय समादपेति, अत्तना च ब्यापन्नचित्तो होति परं च ब्यापादे समादपेति, अत्तना च मिच्छादिट्ठि होति परं च मिच्छादिट्ठिया समादपेति। अयं वुच्चति पुग्गलो "पापेन पापतरो"।

(ख) पापी से (भी) अधिकतर पापी पुरुष

कौन-सा पुरुष पापी से (भी) अधिकतर पापी है ?

यहाँ कोई एक पुरुष स्वयं प्राणी-हिंसा करने वाला होता है और दूसरों को (भी) प्राणी-हिंसा करने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं चोरी करने वाला होता है और दूसरों को (भी) चोरी करने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं व्यभिचारी होता है और दूसरों को (भी) व्यभिचार करने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं झूठ बोलने वाला होता है और दूसरों को (भी) झूठ बोलने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं पैशुन्य वचन बोलने वाला होता है और दूसरों को (भी) पैशुन्य वचन बोलने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं कठोर वचन बोलने वाला होता है और दूसरों को (भी) कठोर वचन बोलने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं निरर्थक वचन बोलने वाला होता है और दूसरों को (भी) निरर्थक वचन बोलने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं अत्यन्त लोभी होता है और दूसरों को (भी) अत्यन्त लोभी बनने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं द्वेषी होता है और दूसरों को (भी) द्वेषी बनने के लिए प्रेरित करता है

स्वयं मिथ्या-दृष्टि से युक्त होता है और दूसरों को (भी) मिथ्या दृष्टि से युक्त होने के लिए प्रेरित करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "पापी से (भी) अधिकतर पापी" कहा जाता है।

(ग) कल्याणो पुग्गलो

७. कतमो च पुग्गलो कल्याणो ?

इधेकच्चो पुग्गलो पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, अनभिज्झालु होति, [N.62] अब्यापन्नचित्तो होति, सम्मादिट्ठि होति। अयं वुच्चति पुग्गलो "कल्याणो"।

(ग) कल्याणकारी पुरुष

कौन-सा पुरुष कल्याणकारी है ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्राणी-हिंसा से विरत होता है, चोरी से विरत होता है, व्यभिचार से विरत होता है, झूठ बोलने से विरत होता है, पैशुन्य वचन (चुगलखोरी) बोलने से विरत होता है, कठोर वचन बोलने से विरत होता है, निरर्थक वचन बोलने से विरत होता है, निर्लोभी होता है, अक्रोधी (अद्वेषी) होता है, सम्यक दृष्टि वाला होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "कल्याणकारी" कहा जाता है।

(घ) कल्याणेन कल्याणतरो पुग्गलो

८. कतमो च पुग्गलो कल्याणेन कल्याणतरो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अत्तना च पाणातिपाता पटिविरतो होति परं च पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति, अत्तना च अदिन्नादाना पटिविरतो होति परं च अदिन्नादाना वेरमणिया समादपेति, अत्तना च कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति परं च कामेसुमिच्छाचारा वेरमणिया समादपेति, अत्तना च मुसावादा पटिविरतो होति [S.330] परं च मुसावादा वेरमणिया समादपेति, अत्तना च पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति परं च पिसुणाय

वाचाय वेरमणिया समादपेति, अत्तना च फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति परं च फरुसाय वाचाय वेरमणिया समादपेति, अत्तना च सम्फप्पलापा पटिविरतो होति परं च सम्फप्पलापा वेरमणिया समादपेति, अत्तना च अनभिज्झालु होति परं च अनभिज्झाय समादपेति, अत्तना च अब्यापन्नचित्तो होति परं च अब्यापादे समादपेति, अत्तना च सम्मादिट्ठि होति [B.146] परं च सम्मादिट्ठिया समादपेति। अयं वुच्चति पुग्गलो "कल्याणेन कल्याणतरो"।

(घ) कल्याणकारी से (भी) अधिकतर कल्याणकारी पुरुष

कौन-सा पुरुष कल्याणकारी से (भी) अधिकतर कल्याणकारी है ?

यहाँ कोई एक पुरुष स्वयं प्राणी-हिंसा से विरत होता है और दूसरों को (भी) प्राणी-हिंसा से विरत रहने की प्रेरणा देता है, स्वयं चोरी करने से विरत होता है और दूसरों को (भी) चोरी करने से विरत रहने की प्रेरणा देता है, स्वयं व्यभिचार करने से विरत होता है और दूसरों को (भी) व्यभिचार करने से विरत रहने की प्रेरणा देता है, स्वयं झूठ बोलने से विरत होता है और दूसरों को (भी) झूठ बोलने से विरत रहने की प्रेरणा देता है, स्वयं पैशुन्य वचन बोलने से विरत होता है और दूसरों को (भी) पैशुन्य वचन बोलने से विरत रहने की प्रेरणा देता है, स्वयं कठोर वचन बोलने से विरत होता है और दूसरों को (भी) कठोर वचन बोलने से विरत रहने की प्रेरणा देता है, स्वयं निरर्थक वचन बोलने से विरत होता है और दूसरों को (भी) निरर्थक वचन बोलने से विरत रहने की प्रेरणा देता है, स्वयं निर्लोभी होता है और दूसरों को (भी) निर्लोभी होने के लिए प्रेरणा देता है, स्वयं अक्रोधी (अद्वेषी) होता है और दूसरों को (भी) अक्रोधी होने के लिए प्रेरणा देता है, स्वयं सम्यकदृष्टि से युक्त होता है और दूसरों को (भी) सम्यकदृष्टि से युक्त होने के लिए प्रेरणा देता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "कल्याणकारी से (भी) अधिकतर कल्याणकारी" कहा जाता है।

(३. क) पापधम्मो पुग्गलो

६. कतमो च पुग्गलो पापधम्मो ?

इधेकच्चो पुग्गलो पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति ...पे० ... मिच्छादिट्ठि होति। अयं वुच्चति पुग्गलो "पापधम्मो"।

(३. क) पापधर्मा पुरुष

कौन-सा पुरुष पापधर्मा है ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्राणी-हिंसा करने वाला होता है, चोरी करने वाला होता है ... मिथ्या-दृष्टि से युक्त होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "पापधर्मा" कहा जाता है।

(ख) पापधम्मेन पापधम्मतरो पुग्गलो

१०. कतमो च पुग्गलो पापधम्मेन पापधम्मतरो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अत्तना च पाणातिपाती होति परं च पाणातिपाते समादपेति, अत्तना च अदिन्नादायी होति परं च अदिन्नादाने समादपेति ... पे० ... अत्तना च मिच्छादिट्ठि होति परं च मिच्छादिट्ठिया समादपेति। अयं वुच्चति पुग्गलो "पापधम्मेन पापधम्मतरो"।

(ख) पापधर्मा से (भी) अधिकतर पापधर्मा पुरुष

कौन-सा पुरुष पापधर्मा से (भी) अधिकतर पापधर्मा है ?

यहाँ कोई एक पुरुष स्वयं प्राणी-हिंसा करने वाला होता है और दूसरों को (भी) प्राणी-हिंसा करने के लिए प्रेरित करता है, स्वयं चोरी करने वाला होता है और दूसरों को (भी) चोरी करने के लिए प्रेरित करता है ... स्वयं मिथ्या-दृष्टि से युक्त होता है और दूसरों को (भी) मिथ्या-दृष्टि से युक्त होने के लिए प्रेरित करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "पापधर्मा से (भी) अधिकतर पापधर्मा" कहा जाता है।

(ग) कल्याणधम्मो पुग्गलो

११. कतमो च पुग्गलो कल्याणधम्मो ?

[N.63] इधेकच्चो पुग्गलो पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति ... पे० ... सम्मादिट्ठि होति। अयं वुच्चति पुग्गलो "कल्याणधम्मो"।

(ग) कल्याणधर्मा पुरुष

कौन-सा पुरुष कल्याणधर्मा है ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्राणी-हिंसा से विरत होता है, चोरी करने से विरत होता है ... सम्यकदृष्टि से युक्त होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "कल्याणधर्मा" कहा जाता है।

(घ) कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरो पुग्गलो

१२. कतमो च पुग्गलो कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अत्तना च पाणातिपाता पटिविरतो होति परं च पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति ... पे० ... अत्तना च सम्मादिट्ठि होति परं च सम्मादिट्ठिया समादपेति। अयं वुच्चति पुग्गलो "कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरो"।

(घ) कल्याणधर्मा से (भी) अधिकतर कल्याणधर्मा पुरुष

कौन-सा पुरुष कल्याणधर्मा से (भी) अधिकतर कल्याणधर्मा है ?

यहाँ कोई एक पुरुष स्वयं प्राणी-हिंसा से विरत होता है और दूसरों को (भी) प्राणी-हिंसा से विरत रहने की प्रेरणा देता है ... स्वयं सम्यकदृष्टि से युक्त होता है और दूसरों को (भी) सम्यकदृष्टि से युक्त होने के लिए प्रेरणा देता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "कल्याणधर्मा से (भी) अधिकतर कल्याणधर्मा" कहा जाता है।

(४. क) सावज्जो पुग्गलो

१३. [R.41] कतमो च पुग्गलो सावज्जो ?

इधेकच्चो पुग्गलो सावज्जेन कायकम्मेन समन्नागतो होति, सावज्जेन वचीकम्मेन समन्नागतो होति, सावज्जेन मनोकम्मेन समन्नागतो होति। अयं वुच्चति पुग्गलो "सावज्जो"।

(४. क) निन्दनीय (सदोष) पुरुष

कौन-सा पुरुष निन्दनीय है ?

यहाँ कोई एक पुरुष निन्दनीय कायकर्म से युक्त होता है, निन्दनीय वचीकर्म से युक्त होता है, निन्दनीय मनोकर्म से युक्त होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "निन्दनीय" कहा जाता है।

(ख) वज्जबहुलो पुग्गलो

१४. [S.332] कतमो च पुग्गलो वज्जबहुलो[१]?

इधेकच्चो पुग्गलो सावज्जेन बहुलं कायकम्मेन समन्नागतो होति अप्पं अनवज्जेन, सावज्जेन बहुलं वचीकम्मेन समन्नागतो होति अप्पं अनवज्जेन, सावज्जेन बहुलं मनोकम्मेन समन्नागतो होति अप्पं अनवज्जेन। अयं वुच्चति पुग्गलो "वज्जबहुलो"।

(ख) अत्यधिक निन्दनीय (दोष-बहुल) पुरुष

कौन-सा पुरुष अत्यधिक निन्दनीय है?

यहाँ कोई एक पुरुष अत्यधिक निन्दनीय, अल्पतर निर्दोष कायकर्म से युक्त होता है; अत्यधिक निन्दनीय, अल्पतर निर्दोष वचीकर्म से युक्त होता है; अत्यधिक निन्दनीय, अल्पतर निर्दोष मनोकर्म से युक्त होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "अत्यधिक निन्दनीय" कहा जाता है।

(ग) अप्पवज्जो पुग्गलो

१५. [B.147] कतमो च पुग्गलो अप्पवज्जो[२]?

इधेकच्चो पुग्गलो अनवज्जेन बहुलं कायकम्मेन समन्नागतो होति अप्पं सावज्जेन, अनवज्जेन बहुलं वचीकम्मेन समन्नागतो होति अप्पं सावज्जेन, अनवज्जेन बहुलं मनोकम्मेन समन्नागतो होति अप्पं सावज्जेन। अयं वुच्चति पुग्गलो "अप्पवज्जो"।

(ग) अल्प निन्दनीय (अल्प-दोषी) पुरुष

कौन-सा पुरुष अल्प निन्दनीय है?

यहाँ कोई एक पुरुष अत्यधिक निर्दोष, अल्पतर निन्दनीय शारीरिक-कर्म से युक्त होता है; अत्यधिक निर्दोष, अल्पतर निन्दनीय वाणी-कर्म से युक्त होता है; अत्यधिक निर्दोष, अल्पतर निन्दनीय मनोकर्म से युक्त होता

---

१. सावज्जबहुलो – सी०, एवमुपरि पि।

२. अप्पसावज्जो – सी०, रो०, एवमुपरि पि।

है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "अल्प निन्दनीय" कहा जाता है।

(घ) अनवज्जो पुग्गलो

१६. [N.64] कतमो च पुग्गलो अनवज्जो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अनवज्जेन कायकम्मेन समन्नागतो होति, अनवज्जेन वचीकम्मेन समन्नागतो होति, अनवज्जेन मनोकम्मेन समन्नागतो होति। अयं वुच्चति पुग्गलो "अनवज्जो"।

(घ) निर्दोष पुरुष

कौन-सा पुरुष निर्दोष है ?

यहाँ कोई एक पुरुष निर्दोष शारीरिक-कर्म से युक्त होता है, निर्दोष वाणी-कर्म से युक्त होता है, निर्दोष मनोकर्म से युक्त होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "निर्दोष" कहा जाता है।

(५. क) उग्घटितञ्ञू पुग्गलो

१७. कतमो च पुग्गलो उग्घटितञ्ञू ?

यस्स पुग्गलस्स सह उदाहटवेलाय धम्माभिसमयो होति – अयं वुच्चति पुग्गलो "उग्घटितञ्ञू"।

(५. क) शीघ्र समझने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष शीघ्र समझने (जान लेने) वाला है ?

जो पुरुष उपदेश देने के समय ही धर्म-कथा को जान लेने (समझने) वाला होता है – (इस प्रकार का) यह पुरुष "शीघ्र समझने वाला" कहा जाता है।

(ख) विपञ्चितञ्ञू पुग्गलो

१८. कतमो च पुग्गलो विपञ्चितञ्ञू[1] ?

यस्स पुग्गलस्स सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थे विभजियमाने धम्माभिसमयो होति – अयं वुच्चति पुग्गलो "विपञ्चितञ्ञू"।

---

१. विपचितञ्ञू – स्या०, सी०; विपच्चितञ्ञू – रो०।

(ख) विस्तार से जानने (समझने) वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष विस्तार से जानने वाला है ?

जो पुरुष संक्षिप्त से कहे हुए उपदेश को विस्तारपूर्वक इच्छानुसार वर्गीकरण करता हुआ धर्म-कथा (यथार्थ ज्ञान) को जानता है – (इस प्रकार का) यह पुरुष "विस्तार से जानने वाला" कहा जाता है।

(ग) नेय्यो पुग्गलो

१६. कतमो च पुग्गलो नेय्यो ?

यस्स पुग्गलस्स उद्देसतो परिपुच्छतो योनिसो मनसिकरोतो कल्याणमित्ते सेवतो भजतो पयिरुपासतो एवं अनुपुब्बेन धम्माभिसमयो होति– अयं वुच्चति पुग्गलो "नेय्यो"।

(ग) ले जाने योग्य पुरुष

कौन-सा पुरुष ले जाने योग्य है ?

जिस पुरुष के प्रसंग में धर्म का कथन करते हुए, प्रश्नोत्तर करते हुए, उचित ढंग से विचार करते हुए, कल्याणमित्र की सेवा करते हुए, भजते हुए, संगति करते हुए, इस प्रकार क्रमशः धर्म का यथार्थ ज्ञान होता है– (इस प्रकार का) यह पुरुष "ले जाने योग्य" अर्थात् ले जाया जा सकने वाला कहा जाता है।

(घ) पदपरमो पुग्गलो

२०. कतमो च पुग्गलो पदपरमो ?

यस्स पुग्गलस्स बहुं पि सुणतो बहुं पि भणतो बहुं पि धारयतो बहुं पि वाचयतो न ताय जातिया धम्माभिसमयो होति – अयं वुच्चति पुग्गलो "पदपरमो"।

(घ) अक्षर मात्र को (ही) जानने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष अक्षर मात्र को (ही) जानने वाला है ?

जिस पुरुष को अधिक सुनते हुए, अधिक बोलते हुए, अधिक धारण करते हुए तथा अधिक पढ़ते हुए भी भवचक्र का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है– (इस प्रकार का) यह पुरुष "अक्षर मात्र को (ही) जानने वाला" कहा जाता है।

(६. क) युत्तप्पटिभानो, नो मुत्तप्पटिभानो

२१. [R.42; S.334] कतमो च पुग्गलो युत्तप्पटिभानो[१] नो मुत्तप्पटिभानो[१]?

इधेकच्चो पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो युत्तं वदति नो सीघं। अयं वुच्चति पुग्गलो "युत्तप्पटिभानो नो मुत्तप्पटिभानो"।

(६.क) ठीक उत्तर देने वाला, (पर) शीघ्र उत्तर न देने वाला

कौन-सा पुरुष ठीक उत्तर देने वाला, (पर) शीघ्र उत्तर न देने वाला है ?

यहाँ कोई एक पुरुष, प्रश्न पूछे जाने के सदृश ठीक उत्तर देता है पर शीघ्र (उत्तर) नहीं (देता है)। (इस प्रकार का) यह पुरुष "ठीक उत्तर देने वाला, (पर) शीघ्र उत्तर न देने वाला" कहा जाता है।

(ख) मुत्तप्पटिभानो, नो युत्तप्पटिभानो

२२. [N.65; B.148] कतमो च पुग्गलो मुत्तप्पटिभानो नो युत्तप्पटिभानो ?

इधेकच्चो पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो सीघं वदति नो युत्तं। अयं वुच्चति पुग्गलो "मुत्तप्पटिभानो नो युत्तप्पटिभानो"।

(ख) शीघ्र उत्तर देने वाला, (पर) ठीक उत्तर न देने वाला

कौन-सा पुरुष शीघ्र उत्तर देने वाला, (पर) ठीक उत्तर न देने वाला है ?

यहाँ कोई एक पुरुष, प्रश्न पूछे जाने के सदृश शीघ्र उत्तर देता है पर ठीक (उत्तर) नहीं (देता है)। (इस प्रकार का) यह पुरुष "शीघ्र उत्तर देने वाला, (पर) ठीक उत्तर न देने वाला" कहा जाता है।

(ग) युत्तप्पटिभानो च मुत्तप्पटिभानो च

२३. कतमो च पुग्गलो युत्तप्पटिभानो च मुत्तप्पटिभानो च ?

इधेकच्चो पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो युत्तं च वदति सीघं च। अयं वुच्चति पुग्गलो "युत्तप्पटिभानो च मुत्तप्पटिभानो च"।

१-१. युत्तपटिभानो नो मुत्तपटिभानो – सी०, रो०; युत्तपटिभाणो नो मुत्तपटिभाणो – स्या०, एवमुपरि पि।

(ग) ठीक उत्तर देने वाला और शीघ्र उत्तर देने वाला

कौन-सा पुरुष ठीक उत्तर देने वाला और शीघ्र उत्तर देने वाला है ?

यहाँ कोई एक पुरुष, प्रश्न पूछे जाने के सदृश ठीक उत्तर देता है और (समर्थता के कारण) शीघ्र (उत्तर देता है)। (इस प्रकार का) यह पुरुष "ठीक उत्तर देने वाला तथा शीघ्र उत्तर देने वाला" कहा जाता है।

(घ) नेव युत्तप्पटिभानो नो मुत्तप्पटिभानो

२४. कतमो च पुग्गलो नेव युत्तप्पटिभानो नो मुत्तप्पटिभानो ?

इधेकच्चो पुग्गलो पञ्हं पुट्ठो समानो नेव युत्तं वदति नो सीघं। अयं वुच्चति पुग्गलो "नेव युत्तप्पटिभानो नो मुत्तप्पटिभानो"।

(घ) न तो ठीक उत्तर देने वाला, (और) न (ही) शीघ्र उत्तर देने वाला

कौन-सा पुरुष न तो ठीक उत्तर देने वाला, (और) न (ही) शीघ्र उत्तर देने वाला है ?

यहाँ कोई एक पुरुष, प्रश्न पूछे जाने के सदृश न तो ठीक उत्तर देता है (और) न (ही) शीघ्र (उत्तर देता है)। (इस प्रकार का) यह पुरुष "न तो ठीक उत्तर देने वाला, (और) न (ही) शीघ्र उत्तर देने वाला" कहा जाता है।

(७) चत्तारो धम्मकथिका पुग्गला

२५. तत्थ कतमे चत्तारो[१] धम्मकथिका पुग्गला[१] ?

(क) इधेकच्चो धम्मकथिको अप्पं च भासति असहितं च, परिसा चस्स न[२] कुसला[२] होति सहितासहितस्स। एवरूपो धम्मकथिको एवरूपाय परिसाय धम्मकथिको त्वेव सङ्ख्यं गच्छति।

१-१. पुग्गला चत्तारो धम्मकथिका – सी०।

२-२. अकुसला – स्या०।

(७) चार प्रकार के धर्म-उपदेशक पुरुष

तब कौन-से चार प्रकार के धर्म-उपदेशक पुरुष हैं ?

(क) यहाँ कोई एक (पुरुष) धर्म के उपदेश को थोड़ा कहता है पर अर्थहीन (कहता है); और परिषद उसके सार्थक-निरर्थक का भेद समझने में सक्षम नहीं होती है। इस प्रकार धर्म का उपदेश देने वाला, ऐसी परिषद द्वारा धर्म-उपदेशक (पुरुष) ही गिना जाता है।

(ख) इध पनेकच्चो धम्मकथिको अप्पं च भासति सहितं च, परिसा चस्स कुसला होति सहितासहितस्स। एवरूपो धम्मकथिको एवरूपाय परिसाय धम्मकथिको त्वेव सङ्खं गच्छति।

(ख) यहाँ कोई एक (पुरुष) धर्म के उपदेश को थोड़ा कहता (बोलता) है पर सार्थक (अर्थयुक्त कहता है); और परिषद उसके सार्थक-निरर्थक का भेद समझने में सक्षम होती है। इस प्रकार धर्म का उपदेश देने वाला, ऐसी परिषद द्वारा धर्म-उपदेशक (पुरुष) ही गिना जाता है।

(ग) इध पनेकच्चो धम्मकथिको बहुं च भासति असहितं च, परिसा चस्स न कुसला होति सहितासहितस्स। एवरूपो धम्मकथिको एवरूपाय परिसाय धम्मकथिको त्वेव सङ्खं गच्छति।

(ग) यहाँ कोई एक (पुरुष) धर्म के उपदेश को बहुत कहता (बोलता) है पर अर्थहीन (कहता है); और परिषद उसके सार्थक-निरर्थक का भेद समझने में सक्षम नहीं होती है। इस प्रकार धर्म का उपदेश देने वाला, ऐसी परिषद द्वारा धर्म-उपदेशक (पुरुष) ही गिना जाता है।

(घ) इध पनेकच्चो धम्मकथिको बहुं च भासति सहितं [N.66] च, परिसा चस्स कुसला होति सहितासहितस्स। एवरूपो धम्मकथिको एवरूपाय परिसाय धम्मकथिको त्वेव सङ्खं गच्छति।

इमे चत्तारो "धम्मकथिका पुग्गला"।

(घ) यहाँ कोई एक (पुरुष) धर्म के उपदेश को बहुत कहता है पर सार्थक

(अर्थयुक्त कहता है); और परिषद उसके सार्थक-निरर्थक का भेद समझने में सक्षम होती है। इस प्रकार धर्म का उपदेश देने वाला, ऐसी परिषद द्वारा धर्म-उपदेशक (पुरुष) ही गिना जाता है।

ये ही चार प्रकार के "धर्म-उपदेशक पुरुष" हैं।

(८) चत्तारो वलाहकूपमा पुग्गला

२६. [S.336] तत्थ कतमे चत्तारो वलाहकूपमा पुग्गला ?

चत्तारो वलाहका – गज्जिता नो वस्सिता, वस्सिता नो गज्जिता, गज्जिता च वस्सिता च, नेव गज्जिता नो वस्सिता। एवमेवं[1] [R.43] चत्तारोमे वलाहकूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे [B.149] चत्तारो ? गज्जिता नो वस्सिता, वस्सिता नो गज्जिता, गज्जिता च वस्सिता च, नेव गज्जिता नो वस्सिता।

(८) चार प्रकार के मेघ सदृश पुरुष

तब कौन-से चार प्रकार के मेघ सदृश पुरुष हैं ?

चार प्रकार के मेघ हैं – गरजते हैं (पर) बरसते नहीं, बरसते हैं (पर) गरजते नहीं, गरजते भी हैं (और) बरसते भी हैं, न तो गरजते हैं (और) न ही बरसते हैं। इसी तरह ये चार प्रकार के मेघ सदृश पुरुष लोक में विद्यमान होते हैं। कौन-से चार ? गरजते हैं (पर) बरसते नहीं, बरसते हैं (पर) गरजते नहीं, गरजते भी हैं (और) बरसते भी हैं, न तो गरजते हैं (और) न ही बरसते हैं।

(क) कथं च पुग्गलो गज्जिता होति नो वस्सिता ?

इधेकच्चो पुग्गलो भासिता होति, नो कत्ता। एवं पुग्गलो गज्जिता होति, नो वस्सिता। सेय्यथापि सो वलाहको गज्जिता नो वस्सिता, तथूपमो अयं पुग्गलो।

---

१. एवमेव – सी०, स्या०।

(क) कैसे पुरुष गरजने वाला होता है पर बरसने वाला नहीं ?

यहाँ कोई एक पुरुष बोलने वाला होता है, (परन्तु) करने वाला नहीं। इस प्रकार पुरुष गरजने वाला होता है, (परन्तु) बरसने वाला नहीं। जैसे वह मेघ गरजता है पर बरसता नहीं, वैसे ही यह पुरुष है।

(ख) कथं च पुग्गलो वस्सिता होति नो गज्जिता ?

इधेकच्चो पुग्गलो कत्ता होति, नो भासिता। एवं पुग्गलो वस्सिता होति नो गज्जिता। सेय्यथापि सो वलाहको वस्सिता नो गज्जिता, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ख) कैसे पुरुष बरसने वाला होता है पर गरजने वाला नहीं ?

यहाँ कोई एक पुरुष करने वाला होता है, (परन्तु) बोलने वाला नहीं। इस प्रकार पुरुष बरसने वाला होता है, (परन्तु) गरजने वाला नहीं। जैसे वह मेघ बरसता (तो) है पर गरजता नहीं, वैसे ही यह पुरुष है।

(ग) कथं च पुग्गलो गज्जिता च होति वस्सिता च ?

इधेकच्चो पुग्गलो भासिता च होति, कत्ता च। एवं पुग्गलो गज्जिता च होति वस्सिता च। सेय्यथापि सो वलाहको गज्जिता च वस्सिता च, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ग) कैसे पुरुष गरजने वाला भी होता है और बरसने वाला भी ?

यहाँ कोई एक पुरुष बोलने वाला भी होता है और करने वाला भी। इस प्रकार पुरुष गरजने वाला भी होता है और बरसने वाला भी। जैसे वह मेघ गरजता भी है और बरसता भी, वैसे ही यह पुरुष है।

(घ) कथं च पुग्गलो नेव गज्जिता होति नो वस्सिता ?

इधेकच्चो पुग्गलो नेव भासिता होति नो कत्ता। एवं पुग्गलो नेव

गज्जिता होति नो वस्सिता। सेय्यथापि [N.67] सो वलाहको नेव गज्जिता नो वस्सिता, तथूपमो अयं पुग्गलो।

इमे चत्तारो वलाहकूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

(घ) कैसे पुरुष न तो गरजने वाला होता है और न ही बरसने वाला ?

यहाँ कोई एक पुरुष न तो बोलने वाला होता है, (और) न ही करने वाला। इस प्रकार पुरुष न तो गरजने वाला होता है, (और) न ही बरसने वाला। जैसे वह मेघ न तो गरजता है, न ही बरसता है, वैसे ही यह पुरुष है।

ये चार प्रकार के मेघ सदृश पुरुष लोक में विद्यमान हैं।

(६) चत्तारो मूसिकूपमा पुग्गला

२७. तत्थ कतमे चत्तारो मूसिकूपमा पुग्गला ?

चतस्सो मूसिका – गाधं कत्ता[1] नो वसिता, वसिता नो गाधं कत्ता, गाधं कत्ता च वसिता च, नेव गाधं कत्ता नो वसिता। एवमेवं चत्तारोमे[2] मूसिकूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो ? गाधं कत्ता नो वसिता, वसिता नो गाधं कत्ता, गाधं कत्ता च वसिता च, नेव गाधं कत्ता नो वसिता।

(६) चार प्रकार के चूहे सदृश पुरुष

तब कौन-से चार प्रकार के चूहे सदृश पुरुष हैं ?

चार प्रकार के चूहे हैं – बिल खोदते हैं (पर उसमें) रहते नहीं, रहते हैं (पर) बिल नहीं खोदते, बिल भी खोदते हैं और (उसमें) रहते भी हैं, न तो बिल खोदते हैं (और) न (ही) रहते हैं। इस तरह ये चार प्रकार के चूहे सदृश (चार प्रकार के) पुरुष संसार में विद्यमान होते हैं। कौन-से चार ? बिल खोदते हैं (पर

१. खत्ता – रो०, एवमुपरि पि।
२. चत्तारो – सी०।

उसमें) रहते नहीं, रहते हैं (पर) बिल नहीं खोदते, बिल भी खोदते हैं और (उसमें) रहते भी हैं, न तो बिल खोदते हैं (और) न (ही) रहते हैं।

(क) [S.338] कथं च पुग्गलो गाधं कत्ता होति नो वसिता ?

इधेकच्चो पुग्गलो धम्मं परियापुणाति – सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं[1] वेदल्लं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं नप्पजानाति, "अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं नप्पजानाति, "अयं [B.150] दुक्खनिरोधो"ति यथाभूतं नप्पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं पुग्गलो गाधं कत्ता होति नो वसिता। सेय्यथापि सा मूसिका गाधं कत्ता नो वसिता, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(क) कैसे पुरुष बिल खोदता है पर (उसमें) रहता नहीं ?

यहाँ कोई एक पुरुष धर्म का अध्ययन करता है– सुत्त का, गाने योग्य का, व्याकरण का, गाथा का, उदान का, इतिवुत्तक का, जातक का, अद्भुत-धर्म का, वेदल्ल का। (परन्तु) वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है; "यह दुःखसमुदय है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है; "यह दुःखनिरोध है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है; "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है। इस प्रकार पुरुष बिल खोदता है पर (उसमें) रहता नहीं। जैसे वह चूहा बिल खोदता है पर (उसमें) रहता नहीं, वैसे ही यह पुरुष है।

(ख) [R.44] कथं च पुग्गलो वसिता होति नो गाधं कत्ता ?

इधेकच्चो पुग्गलो धम्मं न परियापुणाति – सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं। सो "इदं दुक्खं" ति यथाभूतं पजानाति, " अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं पजानाति,

---

१ अब्भूतधम्मं – स्या०।

''अयं दुक्खनिरोधो''ति यथाभूतं पजानाति, ''अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा''ति यथाभूतं पजानाति। एवं पुग्गलो वसिता होति नो गाधं कत्ता। सेय्यथापि सा मूसिका वसिता नो गाधं कत्ता, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ख) कैसे पुरुष रहने वाला होता है परं बिल खोदने वाला नहीं ?

यहाँ कोई एक पुरुष धर्म का अध्ययन नहीं करता है – सुत्त का, गाने योग्य का, व्याकरण का, गाथा का, उदान का, इतिवुत्तक का, जातक का, अद्भुत-धर्म का, वेदल्ल का। (परन्तु) वह ''यह दुःख है'', इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है; ''यह दुःखसमुदय है'', इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है; ''यह दुःखनिरोध है'', इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है'', यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है'', इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है। इस प्रकार पुरुष रहने वाला होता है पर बिल खोदने वाला नहीं। जैसे वह चूहा रहने वाला होता है पर बिल खोदने वाला नहीं, वैसे ही यह पुरुष है।

(ग) [N.68] कथं च पुग्गलो गाधं कत्ता च होति वसिता च ?

इधेकच्चो पुग्गलो धम्मं परियापुणाति – सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं। सो ''इदं दुक्खं''ति यथाभूतं पजानाति, ''अयं दुक्खसमुदयो''ति यथाभूतं पजानाति, ''अयं दुक्खनिरोधो''ति यथाभूतं पजानाति, ''अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा''ति यथाभूतं पजानाति। एवं पुग्गलो गाधं कत्ता च होति वसिता च। सेय्यथापि सा मूसिका गाधं कत्ता च वसिता च, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ग) कैसे पुरुष बिल खोदने वाला भी होता है और रहने वाला भी होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष धर्म का अध्ययन करता है – सुत्त का, गाने योग्य का, व्याकरण का, गाथा का, उदान का, इतिवुत्तक का, जातक का, अद्भुतधर्म का, वेदल्ल का। वह ''यह दुःख है,'' इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है; ''यह दुःखसमुदय है,'' इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है; ''यह दुःखनिरोध है'', इस

प्रकार यथार्थ रूप से जानता है; "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है। इस प्रकार पुरुष बिल खोदने वाला भी होता है और रहने वाला भी होता है। जैसे वह चूहा बिल भी खोदने वाला होता है और रहने वाला भी होता है, वैसे ही यह पुरुष है।

(घ) कथं च पुग्गलो नेव गाधं कत्ता होति नो वसिता ?

इधेकच्चो पुग्गलो धम्मं न परियापुणाति – सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं नप्पजानाति, "अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं नप्पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधो"ति यथाभूतं नप्पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं पुग्गलो नेव गाधं कत्ता होति नो वसिता। सेय्यथापि सा मूसिका नेव गाधं कत्ता होति नो वसिता, तथूपमो अयं पुग्गलो।

इमे चत्तारो मूसिकूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

(घ) कैसे पुरुष न बिल खोदने वाला होता है और न ही रहने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष धर्म का अध्ययन नहीं करता है – सुत्त का, गाने योग्य का, व्याकरण का, गाथा का, उदान का, इतिवुत्तक का, जातक का, अद्भुतधर्म का, वेदल्ल का। (और) वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है; "यह दुःखसमुदय है," इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है; "यह दुःखनिरोध है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है; "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इसं प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है। इस प्रकार पुरुष न बिल खोदने वाला होता है और न ही रहने वाला होता है। जैसे वह चूहा न तो बिल खोदने वाला होता है और न रहने वाला होता है, वैसे ही यह पुरुष है।

ये चार प्रकार के चूहे सदृश पुरुष संसार में विद्यमान हैं।

(१०) चत्तारो अम्बूपमा पुग्गला

२८. [B.151; S.340] तत्थ कतमे चत्तारो अम्बूपमा पुग्गला ?

चत्तारि अम्बानि – आमं पक्कवण्णि[१], पक्कं आमवण्णि[१], आमं[२] आमवण्णि, पक्कं पक्कवण्णि। एवमेवं चत्तारोमे अम्बूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो ? आमो पक्कवण्णी, पक्को आमवण्णी, आमो आमवण्णी, पक्को पक्कवण्णी।

(१०) चार प्रकार के आम सदृश पुरुष

तब कौन-से चार प्रकार के आम सदृश पुरुष हैं ?

चार प्रकार के आम हैं – कच्चे पर पके प्रतीत होने वाले, पके पर कच्चे प्रतीत होने वाले, कच्चे तथा कच्चे प्रतीत होने वाले, पके तथा पके प्रतीत होने वाले। इसी तरह ये चार प्रकार के आम सदृश पुरुष लोक में विद्यमान हैं। कौन से चार प्रकार ? कच्चे पर पके प्रतीत होने वाले, पके पर कच्चे प्रतीत होने वाले, कच्चे तथा कच्चे प्रतीत होने वाले, पके तथा पके प्रतीत होने वाले।

(क) कथं च पुग्गलो आमो होति पक्कवण्णी ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं [N.69] पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं[३] पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं नप्पजानाति, "अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं नप्पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधो"ति यथाभूतं नप्पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं[४] नप्पजानाति। एवं पुग्गलो आमो होति पक्कवण्णी। सेय्यथापि तं अम्बं आमं पक्कवण्णि, तथूपमो अयं पुग्गलो।

१-१. पक्कवण्णी पक्को आमवण्णी – स्या०, एवमुपरि पि।

२. आमो – स्या०।

३. समिञ्जितं – म०।

४. रो० पोत्थकं नत्थि।

(क) कैसे पुरुष कच्चा परन्तु पका प्रतीत होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष को आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे देखना, (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी-पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर होता है। परन्तु वह "यह दुःख है" इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है; "यह दुःखसमुदय है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है; "यह दुःखनिरोध है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है; "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है। इस प्रकार का पुरुष कच्चा पर पका प्रतीत होने वाला होता है। जैसे वह आम कच्चा परन्तु पका प्रतीत होने वाला होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(ख) कथं च पुग्गलो पक्को होति आमवण्णी ?

[R.45] इधेकच्चस्स पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। एवं पुग्गलो पक्को होति आमवण्णी। सेय्यथापि तं अम्बं पक्कं आमवण्णि, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ख) कैसे पुरुष पका परन्तु कच्चा प्रतीत होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष का आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे देखना, (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी-पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर नहीं होता है। परन्तु वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है; "यह दुःखसमुदय है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है; "यह दुःखनिरोध है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है; "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है। इस प्रकार का पुरुष पका परन्तु कच्चा प्रतीत होने वाला होता है। जैसे वह आम पका परन्तु कच्चा प्रतीत होने वाला होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(ग) कथं च पुग्गलो आमो होति आमवण्णी ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं नप्पजानाति ... पे० ... "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं पुग्गलो आमो होति आमवण्णी। सेय्यथापि तं अम्बं आमं आमवण्णि, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ग) कैसे पुरुष कच्चा और कच्चा प्रतीत होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष का आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे देखना (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी-पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर नहीं होता है। वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है ... "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है। इस प्रकार का पुरुष कच्चा और कच्चा (ही) प्रतीत होने वाला होता है। जैसे वह आम कच्चा और कच्चा प्रतीत होने वाला होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(घ) [S.342] कथं च पुग्गलो पक्को होति पक्कवण्णी ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं [N.70] सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं [B.152] पजानाति ... पे० ... "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। एवं पुग्गलो पक्को होति पक्कवण्णी। सेय्यथापि तं अम्बं पक्कं पक्कवण्णि, तथूपमो अयं पुग्गलो।

इमे चत्तारो अम्बूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

(घ) कैसे पुरुष पका और पका प्रतीत होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष का आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे देखना, (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी-पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर होता है। वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है ... "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है। इस प्रकार

का पुरुष पका और पका (ही) प्रतीत होने वाला होता है। जैसे वह आम पका और पका प्रतीत होने वाला होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

ये चार प्रकार के आम सदृश पुरुष संसार में विद्यमान हैं।

(११) चत्तारो कुम्भूपमा पुग्गला

२६. तत्थ कतमे चत्तारो कुम्भूपमा पुग्गला ?

चत्तारो कुम्भा– तुच्छो पिहितो, पूरो विवटो[1], तुच्छो विवटो, पूरो पिहितो। एवमेवं चत्तारोमे कुम्भूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो ? तुच्छो पिहितो, पूरो विवटो, तुच्छो विवटो, पूरो पिहितो।

(११) चार प्रकार के घड़े सदृश पुरुष

तब कौन-से चार प्रकार के घड़े सदृश पुरुष हैं ?

चार प्रकार के घड़े हैं– खाली किन्तु ढका हुआ; पूर्ण किन्तु (मुँह) खुला हुआ; खाली और (मुँह) खुला हुआ; पूर्ण और ढका हुआ। इस तरह ये चार प्रकार के घड़े सदृश पुरुष लोक में विद्यमान हैं। कौन से चार प्रकार हैं ? खाली किन्तु ढका हुआ; पूर्ण किन्तु खुला हुआ; खाली और खुला हुआ; पूर्ण और ढका हुआ।

(क) कथं च पुग्गलो तुच्छो होति पिहितो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं नप्पजानाति ... पे० ... "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं पुग्गलो तुच्छो होति पिहितो। सेय्यथापि सो कुम्भो तुच्छो पिहितो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(क) कैसे पुरुष खाली किन्तु ढका हुआ प्रतीत होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष का आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे

---

१. पि वटो – रो०, एवमुपरि पि।

देखना, (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी-पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर होता है। वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है ... "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है। इस प्रकार का पुरुष खाली किन्तु ढका हुआ प्रतीत होने वाला होता है। जैसे वह घड़ा खाली है किन्तु ढका हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(ख) कथं च पुग्गलो पूरो होति विवटो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति ... पे० ... "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। एवं पुग्गलो पूरो होति विवटो। सेय्यथापि सो कुम्भो पूरो विवटो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ख) कैसे पुरुष पूर्ण किन्तु खुला हुआ प्रतीत होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष का आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे देखना, (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी-पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर नहीं होता है। वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है ... "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है। इस प्रकार का पुरुष पूर्ण किन्तु खुला हुआ प्रतीत होने वाला होता है। जैसे वह घड़ा पूर्ण है किन्तु खुला हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(ग) [N.71; R. 46] कथं च पुग्गलो तुच्छो होति विवटो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं नप्पजानाति ...पे० ... "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं पुग्गलो तुच्छो होति विवटो। सेय्यथापि सो कुम्भो तुच्छो विवटो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ग) कैसे पुरुष खाली और खुला हुआ प्रतीत होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष का आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे देखना, (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी-पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर नहीं होता है। वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है।.

.. "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है। इस प्रकार का पुरुष खाली और खुला हुआ प्रतीत होने वाला होता है। जैसे वह घड़ा खाली और (मुँह) खुला हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(घ) [S.344] कथं च पुग्गलो पूरो होति पिहितो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं [B.153] सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति ... पे० ... "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। एवं पुग्गलो पूरो होति पिहितो। सेय्यथापि सो कुम्भो पूरो पिहितो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

इमे चत्तारो कुम्भूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

(घ) कैसे पुरुष पूर्ण और ढका हुआ प्रतीत होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष का आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे देखना, (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी -पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर होता है। वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है ... "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है। इस प्रकार का पुरुष पूर्ण और ढका हुआ प्रतीत होता है। जैसे वह घड़ा पूर्ण और ढका हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

ये चार प्रकार के घड़े सदृश पुरुष लोक में विद्यमान हैं।

(१२) चत्तारो उदकरहदूपमा पुग्गला

३०. तत्थ कतमे चत्तारो उदकरहदूपमा पुग्गला ?

चत्तारो उदकरहदा– उत्तानो गम्भीरोभासो, गम्भीरो उत्तानोभासो, उत्तानो उत्तानोभासो, गम्भीरो गम्भीरोभासो। एवमेवं चत्तारोमे उदकरहदूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो ? उत्तानो गम्भीरोभासो, गम्भीरो उत्तानोभासो, उत्तानो उत्तानोभासो, गम्भीरो गम्भीरोभासो।

(१२) चार प्रकार के तालाब सदृश पुरुष

तब कौन-से चार प्रकार के तालाब सदृश पुरुष हैं ?

चार प्रकार के तालाब हैं– छिछला किन्तु गहरा प्रतीत होने वाला; गहरा किन्तु छिछला प्रतीत होने वाला; छिछला और छिछला प्रतीत होने वाला; गहरा और गहरा प्रतीत होने वाला। इस तरह ये चार प्रकार के तालाब सदृश पुरुष लोक में विद्यमान हैं। कौन से चार प्रकार हैं ? छिछले किन्तु गहरे प्रतीत होने वाले; गहरे किन्तु छिछले प्रतीत होने वाले; छिछले और छिछले प्रतीत होने वाले; गहरे और गहरे प्रतीत होने वाले।

(क) कथं च पुग्गलो उत्तानो होति गम्भीरोभासो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं नप्पजानाति ... पे० ... "अयं दुक्खनिरोधगामिनी [N.72] पटिपदा"ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं पुग्गलो उत्तानो होति गम्भीरोभासो। सेय्यथापि सो उदकरहदो उत्तानो गम्भीरोभासो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(क) कैसे पुरुष छिछला किन्तु गहरा प्रतीत होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष का आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे देखना, (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी-पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर होता है। वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है... "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है। इस प्रकार का पुरुष छिछला किन्तु गहरा प्रतीत होने वाला होता है। जैसे वह तालाब छिछला किन्तु गहरा प्रतीत होने वाला होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(ख) कथं च पुग्गलो गम्भीरो होति उत्तानोभासो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति ... पे० ..."अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। एवं पुग्गलो गम्भीरो होति उत्तानोभासो। सेय्यथापि सो उदकरहदो गम्भीरो उत्तानोभासो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ख) कैसे पुरुष गहरा किन्तु छिछला प्रतीत होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष का आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे देखना, (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी-पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर नहीं होता है। वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है ... "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है। इस प्रकार का पुरुष गहरा किन्तु छिछला प्रतीत होने वाला होता है। जैसे वह तालाब गहरा किन्तु छिछला प्रतीत होने वाला होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(ग) कथं च पुग्गलो उत्तानो होति उत्तानोभासो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं नप्पजानाति ... पे० ... "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति [B.154] यथाभूतं नप्पजानाति। एवं पुग्गलो उत्तानो होति उत्तानोभासो। सेय्यथापि सो उदकरहदो उत्तानो उत्तानोभासो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ग) कैसे पुरुष छिछला और छिछला प्रतीत होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष का आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे देखना, (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी-पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर नहीं होता है। वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है... "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से नहीं जानता है। इस प्रकार का पुरुष छिछला और छिछला प्रतीत होने वाला होता है। जैसे वह तालाब छिछला और छिछला प्रतीत होने वाला होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(घ) [S.346] कथं च पुग्गलो गम्भीरो होति गम्भीरोभासो ?

[R.47] इधेकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति ... पे० ... "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। एवं पुग्गलो गम्भीरो होति गम्भीरोभासो। सेय्यथापि सो उदकरहदो गम्भीरो गम्भीरोभासो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

इमे चत्तारो उदकरहदूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

(घ) कैसे पुरुष गहरा और गहरा प्रतीत होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष का आगे जाना, पीछे जाना, आगे देखना, पीछे देखना, (अंगों को) सिकोड़ना-फैलाना, संघाटी-पात्र-चीवर धारण करना प्रियकर होता है। वह "यह दुःख है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है ... "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है", इस प्रकार यथार्थ रूप से जानता है। इस प्रकार का पुरुष गहरा और गहरा प्रतीत होने वाला होता है। जैसे वह तालाब गहरा और गहरा प्रतीत होने वाला होता है, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

ये चार प्रकार के तालाब सदृश पुरुष लोक में विद्यमान हैं।

(१३) चत्तारो बलीबद्दूपमा पुग्गला

३१. [N.73] तत्थ कतमे चत्तारो बलीबद्दूपमा[1] पुग्गला ?

चत्तारो बलीबद्दा– सकगवचण्डो नो परगवचण्डो, परगवचण्डो नो सकगवचण्डो, सकगवचण्डो च परगवचण्डो च, नेव सकगवचण्डो नो परगवचण्डो। एवमेवं चत्तारोमे[2] बलीबद्दूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो ? सकगवचण्डो नो परगवचण्डो, परगवचण्डो नो सकगवचण्डो, सकगवचण्डो च परगवचण्डो च, नेव सकगवचण्डो नो परगवचण्डो।

(१३) चार प्रकार के वृषभ सदृश पुरुष

तब कौन-से चार प्रकार के वृषभ सदृश पुरुष हैं ?

चार प्रकार के वृषभ हैं– अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड (होते हैं) किन्तु दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड नहीं (होते हैं); दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड किन्तु अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड नहीं; अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड और दूसरी गायों के प्रति (भी) प्रचण्ड; न तो अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड और न ही दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड (होते हैं)। इस प्रकार के ये चार वृषभ सदृश पुरुष लोक में विद्यमान हैं। कौन से चार हैं– अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड किन्तु दूसरी गायों के प्रति

---

१. बलिवद्दूपमा – सी०, रो०; बलिबद्धूपमा – स्या०, एवमुपरि पि।

२. चत्तारो – सी०, रो०।

प्रचण्ड नहीं; दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड किन्तु अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड नहीं; अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड और दूसरी गायों के प्रति (भी) प्रचण्ड; न तो अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड और न ही दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड।

(क) कथं च पुग्गलो सकगवचण्डो होति नो परगवचण्डो ?

इधेकच्चो पुग्गलो सकपरिसं उब्बेजिता होति, नो परपरिसं। एवं पुग्गलो सकगवचण्डो होति नो परगवचण्डो। सेय्यथापि सो बलीबद्दो सकगवचण्डो नो परगवचण्डो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(क) कैसे पुरुष अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड किन्तु दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड नहीं होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष अपनी परिषद को भयभीत करने वाला होता है, दूसरी परिषद को नहीं। इस प्रकार का पुरुष अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड होता है किन्तु दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड नहीं (होता है)। जैसे वह वृषभ अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड किन्तु दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड नहीं, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(ख) कथं च पुग्गलो परगवचण्डो होति नो सकगवचण्डो ?

इधेकच्चो पुग्गलो परपरिसं उब्बेजिता होति, नो सकपरिसं। एवं पुग्गलो परगवचण्डो होति नो सकगवचण्डो। सेय्यथापि सो बलीबद्दो परगवचण्डो नो सकगवचण्डो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ख) कैसे पुरुष दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड किन्तु अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड नहीं होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष दूसरी परिषद को भयभीत करने वाला होता है, अपनी परिषद को नहीं। इस प्रकार का पुरुष दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड होता है किन्तु अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड नहीं (होता है)। जैसे वह वृषभ दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड किन्तु अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड नहीं, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(ग) कथं च पुग्गलो सकगवचण्डो च होति परगवचण्डो च ?

इधेकच्चो पुग्गलो सकपरिसं च उब्बेजिता होति, परपरिसं च। एवं [B.155] पुग्गलो सकगवचण्डो च होति परगवचण्डो च। सेय्यथापि सो बलीबद्दो सकगवचण्डो च परगवचण्डो च, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ग) कैसे पुरुष अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड और दूसरी गायों के प्रति भी प्रचण्ड होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष अपनी परिषद को भयभीत करने वाला होता है और दूसरी परिषद को भी। इस प्रकार का पुरुष अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड होता है और दूसरी गायों के प्रति भी प्रचण्ड (होता है)। जैसे वह वृषभ अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड और दूसरी गायों के प्रति भी प्रचण्ड, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(घ) कथं च पुग्गलो नेव सकगवचण्डो होति नो परगवचण्डो ?

इधेकच्चो पुग्गलो नेव सकपरिसं उब्बेजिता होति, नो परपरिसं। एवं पुग्गलो नेव सकगवचण्डो होति नो परगवचण्डो। सेय्यथापि सो बलीबद्दो नेव सकगवचण्डो नो परगवचण्डो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

[N.74] इमे चत्तारो बलीबद्दूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

(घ) कैसे पुरुष न तो अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड और न ही दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष न तो अपनी परिषद को भयभीत करने वाला होता है और न ही दूसरी परिषद को। इस प्रकार का पुरुष न तो अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड और न ही दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड होता है। जैसे वह वृषभ न तो अपनी गायों के प्रति प्रचण्ड और न ही दूसरी गायों के प्रति प्रचण्ड, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

ये चार प्रकार के वृषभ सदृश पुरुष लोक में विद्यमान हैं।

(१४) चत्तारो आसीविसूपमा पुग्गला

३२. [R.48; S.348] तत्थ कतमे चत्तारो आसीविसूपमा[1] पुग्गला ?

चत्तारो आसीविसा– आगतविसो नो घोरविसो, घोरविसो नो आगतविसो, आगतविसो च घोरविसो च, नेव आगतविसो नो घोरविसो। एवमेवं चत्तारोमे आसीविसूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो ? आगतविसो नो घोरविसो, घोरविसो नो आगतविसो, आगतविसो च घोरविसो च, नेव आगतविसो नो घोरविसो।

---

१. आसिविसूपमा – सी०, स्या०, एवमुपरि पि।

(१४) चार प्रकार के सर्प सदृश पुरुष

तब कौन-से चार प्रकार के सर्प सदृश पुरुष हैं ?

चार प्रकार के सर्प हैं– विषैला किन्तु अत्यधिक विषैला नहीं; अत्यधिक विषैला किन्तु विषैला नहीं; विषैला और अत्यधिक विषैला; न तो विषैला और न ही अत्यधिक विषैला। इस तरह ये चार प्रकार के सर्प सदृश पुरुष लोक में विद्यमान हैं। कौन से चार प्रकार हैं– विषैला किन्तु अत्यधिक विषैला नहीं; अत्यधिक विषैला किन्तु विषैला नहीं; विषैला और अत्यधिक विषैला; न तो विषैला और न ही अत्यधिक विषैला।

(क) कथं च पुग्गलो आगतविसो होति नो घोरविसो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो न चिरं दीघरत्तं अनुसेति। एवं पुग्गलो आगतविसो होति, नो घोरविसो। सेय्यथापि सो आसीविसो आगतविसो नो घोरविसो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(क) कैसे पुरुष विषैला होता है किन्तु अत्यधिक विषैला नहीं ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्रायः क्रोधित होता रहता है परन्तु उसका क्रोध दीर्घ समय तक नहीं रहता है। इस प्रकार का पुरुष विषैला होता है किन्तु अत्यधिक विषैला नहीं (होता है)। जैसे वह सर्प विषैला है किन्तु अत्यधिक विषैला नहीं, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(ख) कथं च पुग्गलो घोरविसो होति नो आगतविसो ?

इधेकच्चो पुग्गलो नहेव[1] खो अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो चिरं दीघरत्तं अनुसेति। एवं पुग्गलो घोरविसो होति, नो आगतविसो। सेय्यथापि सो आसीविसो घोरविसो नो आगतविसो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ख) कैसे पुरुष अत्यधिक विषैला होता है किन्तु विषैला नहीं ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्रायः क्रोधित नहीं होता है परन्तु उसका क्रोध दीर्घ समय तक रहता है। इस प्रकार का पुरुष अत्यधिक विषैला होता है किन्तु

---

१. नेव – सी०।

विषैला नहीं (होता)। जैसे वह सर्प अत्यधिक विषैला है किन्तु विषैला नहीं, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(ग) कथं च पुग्गलो आगतविसो च होति घोरविसो च ?

इधेकच्चो पुग्गलो अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो चिरं दीघरत्तं अनुसेति। एवं पुग्गलो आगतविसो च होति घोरविसो च। [B.156] सेय्यथापि सो आसीविसो आगतविसो च घोरविसो च, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ग) कैसे पुरुष विषैला और अत्यधिक विषैला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्रायः क्रोधित होता है और उसका क्रोध भी दीर्घ समय तक रहता है। इस प्रकार का पुरुष विषैला होता है और अत्यधिक विषैला भी। जैसे वह सर्प विषैला है और अत्यधिक विषैला भी, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

(घ) कथं च पुग्गलो नेव आगतविसो होति नो घोरविसो ?

इधेकच्चो पुग्गलो नहेव खो अभिण्हं कुज्झति। सो च ख्वस्स कोधो न चिरं दीघरत्तं अनुसेति। एवं [N.75] पुग्गलो नेव आगतविसो होति नो घोरविसो। सेय्यथापि सो आसीविसो नेव आगतविसो नो घोरविसो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

इमे चत्तारो आसीविसूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

(घ) कैसे पुरुष न तो विषैला होता है और न ही अत्यधिक विषैला ?

यहाँ कोई एक पुरुष न तो प्रायः क्रोधित होता है और न ही उसका क्रोध दीर्घ समय तक रहता है। इस प्रकार का पुरुष न तो विषैला होता है और न ही अत्यधिक विषैला। जैसे वह सर्प न तो विषैला है और न ही अत्यधिक विषैला, उसी प्रकार के उपमा सदृश यह पुरुष है।

ये चार प्रकार के सर्प सदृश पुरुष लोक में विद्यमान हैं।

(१५.क) अवण्णारहस्स वण्णं भासति

३३. [S.350] कथं च पुग्गलो अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासिता होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो दुप्पटिपन्नानं मिच्छापटिपन्नानं तित्थियानं तित्थियसावकानं वण्णं भासति– "सुप्पटिपन्ना"[१] इति पि, "सम्मापटिपन्ना" इति पी ति। एवं पुग्गलो अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासिता होति।

(१५.क) निन्दनीय की प्रशंसा करता है

कैसे पुरुष बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए, निन्दनीय की प्रशंसा करता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष बुरे मार्गों पर आरूढ़ और मिथ्या मार्गों पर आरूढ़ तीर्थंकरों तथा तीर्थंकर के शिष्यों के विषय में प्रशंसा करता है कि वे दोनों "सुप्रतिपन्न" भी और "सम्यक प्रतिपन्न" भी हैं। इस प्रकार का पुरुष बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए, निन्दनीय की प्रशंसा करता है।

(ख) वण्णारहस्स अवण्णं भासति

३४. कथं च पुग्गलो अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति ?

[R.49] इधेकच्चो पुग्गलो सुप्पटिपन्नानं सम्मापटिपन्नानं बुद्धानं बुद्धसावकानं अवण्णं भासति–"दुप्पटिपन्ना" इति पि, "मिच्छापटिपन्ना" इति पी ति। एवं पुग्गलो अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति।

(ख) प्रशंसनीय की निन्दा करता है

कैसे पुरुष बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए, प्रशंसनीय की निन्दा करता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष अच्छे मार्गों पर आरूढ़ और सम्यक मार्गों पर आरूढ़ बुद्धों तथा बुद्ध के शिष्यों के विषय में निन्दा करता है कि वे दोनों

---

१. सुपटिपन्ना – स्या०।

"दुष्प्रतिपन्न" भी और "मिथ्या प्रतिपन्न" भी हैं। इस प्रकार का पुरुष बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए, प्रशंसनीय की निन्दा करता है।

(ग) अप्पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति

३५. कथं च पुग्गलो अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने पसादं उपदंसिता होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो दुप्पटिपदाय मिच्छापटिपदाय पसादं जनेति– "सुप्पटिपदा" इति पि, "सम्मापटिपदा" इति पी ति। एवं पुग्गलो अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने पसादं उपदंसिता होति।

(ग) अश्रद्धेय स्थान पर श्रद्धायुक्त होता है

कैसे पुरुष बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए, अश्रद्धेय स्थान पर श्रद्धायुक्त होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष बुरे मार्ग पर और मिथ्या मार्ग पर श्रद्धायुक्त होता है और कहता है कि यह "अच्छा मार्ग" भी है, यह "ठीक मार्ग" भी है। इस प्रकार का पुरुष बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए, अश्रद्धेय स्थान पर श्रद्धायुक्त होता है।

(घ) पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति

३६. कथं च पुग्गलो अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसिता होति ?

[N.76] इधेकच्चो पुग्गलो सुप्पटिपदाय सम्मापटिपदाय अप्पसादं जनेति– "दुप्पटिपदा" इति पि, "मिच्छापटिपदा" इति पी ति। एवं पुग्गलो अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसिता होति।

(घ) श्रद्धेय स्थान पर अश्रद्धायुक्त होता है

कैसे पुरुष बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए, श्रद्धेय स्थान पर अश्रद्धायुक्त होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष अच्छे मार्ग पर और ठीक मार्ग पर अश्रद्धायुक्त होता है और कहता है कि यह "बुरा मार्ग" भी है, यह "मिथ्या मार्ग" भी है। इस प्रकार का पुरुष बिना विचार किए, बिना परीक्षण किए, श्रद्धेय स्थान पर अश्रद्धायुक्त होता है।

(१६.क) अवण्णारहस्स अवण्णं भासति

३७. [B.157] कथं च पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो दुप्पटिपन्नानं मिच्छापटिपन्नानं तित्थियानं तित्थियसावकानं अवण्णं भासति– "दुप्पटिपन्ना" इति पि, "मिच्छापटिपन्ना" इति पी ति। एवं पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति।

(१६.क) निन्दनीय की निन्दा करता है

कैसे पुरुष विचार करके, परीक्षण करके, निन्दनीय की निन्दा करता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष बुरे मार्ग पर आरूढ़ और मिथ्या मार्ग पर आरूढ़ तीर्थंकरों तथा तीर्थंकर के शिष्यों के विषय में निन्दा करता है कि वे दोनों "दुष्प्रतिपन्न" और "मिथ्या प्रतिपन्न" भी हैं। इस प्रकार का पुरुष विचार करके, परीक्षण करके, निन्दनीय की निन्दा करता है।

(ख) वण्णारहस्स वण्णं भासति

३८. कथं च पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो सुप्पटिपन्नानं सम्मापटिपन्नानं बुद्धानं बुद्धसावकानं वण्णं भासति– "सुप्पटिपन्ना" इति पि, "सम्मापटिपन्ना" इति पी ति। एवं पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति।

(ख) प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है

कैसे पुरुष विचार करके, परीक्षण करके, प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष अच्छे मार्ग पर आरूढ़ और सम्यक मार्ग पर आरूढ़ बुद्धों तथा बुद्ध के शिष्यों की प्रशंसा करता है कि वे दोनों "सुप्रतिपन्न" भी तथा "सम्यक प्रतिपन्न" भी हैं। इस प्रकार का पुरुष विचार करके, परीक्षण करके,

प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है।

(ग) अप्पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति

३९. [S.352] कथं च पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसिता होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो दुप्पटिपदाय मिच्छापटिपदाय अप्पसादं जनेति– "दुप्पटिपदा" इति पि, "मिच्छापटिपदा" इति पी ति। एवं पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसिता होति।

(ग) अश्रद्धेय स्थान पर अश्रद्धायुक्त होता है

कैसे पुरुष विचार करके, परीक्षण करके, अश्रद्धेय स्थान पर अश्रद्धायुक्त होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष बुरे मार्ग पर और मिथ्या मार्ग पर अश्रद्धायुक्त होता है और कहता है कि यह "बुरा मार्ग" भी है, यह "मिथ्या मार्ग" भी है। इस प्रकार का पुरुष विचार करके, परीक्षण करके, अश्रद्धेय स्थान पर अश्रद्धायुक्त होता है।

(घ) पसादनीये ठानं पसादं उपदंसेति

४०. कथं च पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने पसादं उपदंसिता होति ?

[R.50] इधेकच्चो पुग्गलो सुप्पटिपदाय सम्मापटिपदाय पसादं जनेति– "सुप्पटिपदा" इति पि, "सम्मापटिपदा" इति पी ति। एवं पुग्गलो अनुविच्च परियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने पसादं उपदंसिता होति।

(घ) श्रद्धेय स्थान पर श्रद्धायुक्त होता है

कैसे पुरुष विचार करके, परीक्षण करके, श्रद्धेय स्थान पर श्रद्धायुक्त होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष अच्छे मार्ग पर आरूढ़ और सम्यक मार्ग पर आरूढ़ होता है और कहता है कि यह "अच्छा मार्ग" भी है, यह "सम्यक मार्ग" भी है।

इस प्रकार का पुरुष विचार करके, परीक्षण करके, श्रद्धेय स्थान पर श्रद्धायुक्त होता है।

(१७.क) अवण्णारहस्स अवण्णं भासति, नो च वण्णारहस्स वण्णं

४१. [N.77] कथं च पुग्गलो अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च खो वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन ?

इधेकच्चो पुग्गलो वण्णो पि संविज्जति अवण्णो पि संविज्जति। यो तत्थ अवण्णो तं भणति भूतं तच्छं कालेन, यो तत्थ वण्णो तं न भणति भूतं तच्छं कालेन। एवं पुग्गलो अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च खो वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन।

(१७.क) निन्दनीय की निन्दा करता है परन्तु प्रशंसनीय की प्रशंसा नहीं

कैसे पुरुष ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से निन्दनीय की निन्दा करता है परन्तु ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से प्रशंसनीय की प्रशंसा नहीं करता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्रशंसनीय भी होता है और निन्दनीय भी होता है। जो वहाँ निन्दनीय है उसको ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से बोलता है और जो वहाँ प्रशंसनीय है उसको ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से नहीं बोलता है। इस प्रकार का पुरुष ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से निन्दनीय की निन्दा करता है परन्तु ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से प्रशंसनीय की प्रशंसा नहीं करता है।

(ख) वण्णारहस्स वण्णं भासति, नो च अवण्णारहस्स अवण्णं

४२. कथं च पुग्गलो वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च खो अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन ?

इधेकच्चो पुग्गलो वण्णो पि संविज्जति अवण्णो पि [B.158]

संविज्जति। यो तत्थ वण्णो तं भणति भूतं तच्छं कालेन, यो तत्थ अवण्णो तं न भणति भूतं तच्छं कालेन। एवं पुग्गलो वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च खो अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन।

(ख) प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है किन्तु निन्दनीय की निन्दा नहीं

कैसे पुरुष ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है परन्तु ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से निन्दनीय की निन्दा नहीं करता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्रशंसनीय भी होता है और निन्दनीय भी होता है। जो वहाँ प्रशंसनीय है उसको ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से बोलता है और जो वहाँ निन्दनीय है उसको ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से नहीं बोलता है। इस प्रकार का पुरुष ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है परन्तु ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से निन्दनीय की निन्दा नहीं करता है।

(ग) अवण्णारहस्स च अवण्णं वण्णारहस्स च वण्णं भासति

४३. कथं च पुग्गलो अवण्णारहस्स च अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, वण्णारहस्स च वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन ?

इधेकच्चो[1] पुग्गलो[1] वण्णो पि संविज्जति अवण्णो पि संविज्जति। यो तत्थ अवण्णो तं भणति भूतं तच्छं कालेन, यो पि[2] तत्थ वण्णो तं पि भणति भूतं तच्छं कालेन। तत्र[3] कालञ्ञू होति तस्स पञ्हस्स वेय्याकरणाय। एवं पुग्गलो अवणारहस्स च अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, वण्णारहस्स च वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन।

१-१. इधेकच्चे पुग्गले – सी०।
२. स्या०, रो० पोत्थकेसु नत्थि।
३. तत्थ – स्या०।

(ग) निन्दनीय की निन्दा और प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है

कैसे पुरुष ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से निन्दनीय की निन्दा करता है और ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष प्रशंसनीय भी होता है और निन्दनीय भी होता है। जो वहाँ निन्दनीय है उसको ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से बोलता है और जो भी वहाँ प्रशंसनीय है उसको भी ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से बोलता है। वहाँ पर पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देने के लिए ठीक समय का जानकार होता है। इस प्रकार का पुरुष ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से निन्दनीय की निन्दा करता है और ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है।

(घ) नेव अवण्णारहस्स अवण्णं न वण्णारहस्स वण्णं भासति

४४. [S.354] कथं च पुग्गलो नेव अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं [N.78] तच्छं कालेन ?

इधेकच्चो पुग्गलो वण्णो पि संविज्जति अवण्णो पि संविज्जति। यो तत्थ अवण्णो तं न भणति भूतं तच्छं कालेन, यो पि तत्थ वण्णो तं पि न भणति भूतं [R.51] तच्छं कालेन। उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो। एवं पुग्गलो नेव अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो पि वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन।

(घ) न तो निन्दनीय की निन्दा और न ही प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है

कैसे पुरुष ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से न तो निन्दनीय की निन्दा करता है और न ही ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है ?

यहाँ कोई पुरुष प्रशंसनीय भी होता है और निन्दनीय भी होता है। जो वहाँ निन्दनीय है उसको ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से नहीं बोलता

है और जो भी वहाँ प्रशंसनीय है उसको भी ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से नहीं बोलता है। वह स्मृतिवान, सम्प्रजन्य होकर उपेक्षा भाव द्वारा विहार करता है। इस प्रकार का पुरुष ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से न तो निन्दनीय की निन्दा करता है और न ही ठीक समय पर सत्य और यथार्थ रूप से प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है।

(१८.क) उट्ठानफलूपजीवी नो पुञ्ञफलूपजीवी

४५. कतमो च पुग्गलो उट्ठानफलूपजीवी नो पुञ्ञफलूपजीवी ?

यस्स पुग्गलस्स उट्ठहतो घटतो वायमतो आजीवो अभिनिब्बत्तति, नो पुञ्ञतो– अयं वुच्चति पुग्गलो "उट्ठानफलूपजीवी, नो पुञ्ञफलूपजीवी"।

(१८.क) प्रयास के फल पर निर्भर किन्तु पुण्य के फल पर निर्भर नहीं

कौन-सा पुरुष प्रयास के फल पर निर्भर है किन्तु पुण्य के फल पर निर्भर नहीं ?

जो पुरुष उठता हुआ, कोशिश करता हुआ, प्रयास करता हुआ, जीविका चलाता हुआ जन्म ग्रहण करता है, किन्तु पुण्य के फल पर निर्भर नहीं होता है– (इस प्रकार) यह पुरुष "प्रयास के फल पर निर्भर किन्तु पुण्य के फल पर निर्भर नहीं" कहा जाता है।

(ख) पुञ्ञफलूपजीवी नो उट्ठानफलूपजीवी

४६. कतमो च पुग्गलो पुञ्ञफलूपजीवी नो उट्ठानफलूपजीवी ?

परनिम्मितवसवत्ती[1] देवे[1] उपादाय ततूपरि[2] देवा पुञ्ञफलूपजीविनो न उट्ठानफलूपजीविनो।

(ख) पुण्य के फल पर निर्भर किन्तु प्रयास के फल पर निर्भर नहीं

कौन-सा पुरुष पुण्य के फल पर निर्भर है किन्तु प्रयास के फल पर निर्भर नहीं ?

१-१. परनिम्मितवसवत्तिदेवे – सी०, स्या०, रो०।

२. तत्थुपरि – स्या०।

परनिर्मितवशवर्ती देव में तथा उसके ऊपर के देवों में उत्पन्न होने वाले, पुण्य के फल पर निर्भर हैं किन्तु प्रयास के फल पर निर्भर नहीं हैं।

(ग) उट्ठानफलूपजीवी च पुञ्ञफलूपजीवी च

४७. [B.159] कतमो च पुग्गलो उट्ठानफलूपजीवी च पुञ्ञफलूपजीवी च ?

यस्स पुग्गलस्स उट्ठहतो घटतो वायमतो आजीवो अभिनिब्बत्तति पुञ्ञतो च– अयं वुच्चति पुग्गलो "उट्ठानफलूपजीवी च पुञ्ञफलूपजीवी च"।

(ग) प्रयास के फल पर निर्भर और पुण्य के फल पर भी निर्भर

कौन-सा पुरुष प्रयास के फल पर निर्भर और पुण्य के फल पर भी निर्भर है ?

जो पुरुष उठता हुआ, कोशिश करता हुआ, प्रयास करता हुआ, जीविका चलाता हुआ जन्म ग्रहण करता है तथा पुण्य के फल पर भी निर्भर होता है– (इस प्रकार) यह पुरुष "प्रयास के फल पर निर्भर तथा पुण्य के फल पर भी निर्भर" कहा जाता है।

(घ) नेव उट्ठानफलूपजीवी नो पुञ्ञफलूपजीवी

४८. कतमो च पुग्गलो नेव उट्ठानफलूपजीवी नो पुञ्ञफलूपजीवी ?
नेरयिका नेव उट्ठानफलूपजीविनो नो पुञ्ञफलूपजीविनो।

(घ) न तो प्रयास के फल पर निर्भर, न ही पुण्य के फल पर निर्भर

कौन-सा पुरुष न तो प्रयास के फल पर निर्भर और न ही पुण्य के फल पर निर्भर है ?

निरय (नरक) में उत्पन्न होने वाले (पुरुष), न तो प्रयास के फल पर निर्भर और न ही पुण्य के फल पर निर्भर होते हैं।

(१६.क) तमो तमपरायनो पुग्गलो

४६. कथं च पुग्गलो तमो होति तमपरायनो[1]?

[N.79] इधेकच्चो पुग्गलो नीचे कुले पच्चाजातो होति– चण्डालकुले वा नेसादकुले वा वेनकुले[2] वा रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा दलिद्दे[3] अप्पन्नपानभोजने कसिरवुत्तिके, यत्थ कसिरेन घासच्छादो लब्भति। सो च होति दुब्बण्णो दुद्दसिको ओकोटिमको बव्हाबाधो काणो वा कुणी वा खञ्जो वा पक्खहतो वा, न लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। एवं पुग्गलो तमो होति तमपरायनो।

(१६.क) अन्धकार से अन्धकार में जाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष अन्धकार से अन्धकार में जाने वाला होता है?

यहाँ कोई एक पुरुष निम्न कुल में जन्म ग्रहण करता है –चण्डाल (जाति-बहिष्कृत) कुल में या शिकारियों के कुल में या बाँस की टोकरी बनाने वाले कुल में या रथ बनाने वाले कुल में या सफाई करने वाले कुल में या ऐसे कुल में जो गरीब (दरिद्र) होता है, अल्प अन्न-पान-भोजन कठिनाई से प्राप्त होता है, जहाँ निवास, वस्त्र (आदि) मुश्किल से प्राप्त होता है। वह होता है– दुर्वर्ण, दुर्दर्शनीय, पीछे से झुका हुआ (बौना), रोग-बहुल, काना या लूला या लँगड़ा या लकवा (अंगघात) वाला। उसे खाने-पीने की, वस्त्र की, वाहन की, माला-गन्ध-विलेपन की, सोने-रहने की, तेलबत्ती आदि की प्राप्ति नहीं होती है। वह शरीर से दुष्चरित्र होता है, वाणी से दुष्चरित्र होता है, मन से दुष्चरित्र होता है, वह शरीर से दुष्चरित्र (दुष्कर्म) कर्म करके, वाणी से दुष्चरित्र (दुष्कर्म) कर्म करके, मन से दुष्चरित्र (दुष्कर्म) कर्म करके, शरीर त्यागने पर, मरने पर अपाय, दुर्गति, विनिपात, नरक में उत्पन्न होता है। इस प्रकार का पुरुष अन्धकर से अन्धकार में जाने वाला होता है।

---

१. तमपरायणो – सी०।
२. वेणकुले – सी०, स्या०, रो०।
३. दळिद्दे – सी०।

(ख) तमो जोतिपरायनो पुग्गलो

५०. [S.356] कथं च पुग्गलो तमो होति जोतिपरायनो ?

इधेकच्चो पुग्गलो नीचे कुले पच्चाजातो होति– चण्डालकुले वा नेसादकुले वा वेनकुले वा रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा दलिद्दे अप्पन्नपानभोजने कसिरवुत्तिके, यत्थ कसिरेन घासच्छादो लब्भति। सो च होति दुब्बण्णो दुद्दसिको ओकोटिमको बव्हाबाधो काणो वा कुणी वा खञ्जो वा पक्खहतो वा, न लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं [R.52] चरति, मनसा सुचरितं चरति। सो कायेन सुचरितं चरित्वा वाचाय सुचरितं चरित्वा मनसा सुचरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। एवं पुग्गलो तमो होति जोति परायनो।

(ख) अन्धकार से प्रकाश में जाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष अन्धकार से प्रकाश में जाने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष निम्न कुल में जन्म ग्रहण करता है– चण्डाल कुल में या शिकारियों के कुल में या बाँस का सामान बनाने वाले कुल में या रथ बनाने वाले कुल में या सफाई करने वाले कुल में या ऐसे कुल में जो गरीब (दरिद्र) होता है, अल्प अन्न-पान-भोजन कठिनाई से प्राप्त होता है, जहाँ निवास, वस्त्र (आदि) मुश्किल से प्राप्त होता है। वह होता है – दुर्वर्ण, दुर्दर्शनीय, पीछे से झुका हुआ (बौना), रोग-बहुल, काना या लूला या लँगड़ा या लकवा (अंगघात) वाला। उसे खाने-पीने की, वस्त्र की, वाहन की, माला-गन्ध-विलेपन की, सोने-रहने की, तेलबत्ती आदि की प्राप्ति नहीं होती है। वह शरीर से कुशल कर्म करता है, वाणी से कुशल कर्म करता है, मन से कुशल कर्म करता है। वह शरीर से कुशल कर्म करके, वाणी से कुशल कर्म करके, मन से कुशल कर्म करके, शरीर त्यागने पर, मरने पर सुगति तथा स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है। इस प्रकार का पुरुष अन्धकार से प्रकाश में जाने वाला होता है।

(ग) जोति तमपरायनो पुग्गलो

५१. कथं च पुग्गलो जोति होति तमपरायनो ?

इधेकच्चो पुग्गलो उच्चे कुले पच्चाजातो होति– खत्तियमहासालकुले वा [B.160] ब्राह्मणमहासालकुले[1] वा गहपतिमहासालकुले वा अड्ढे

---

१. ब्राह्मणमहासाळकुले – सी०, एवमुपरि पि।

महद्धने महाभोगे पहूतजातरूपरजते पहूतवित्तूपकरणे पहूतधनधञ्ञे। सो च होति अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, लाभी [N.80] अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। एवं पुग्गलो जोति होति तमपरायनो।

(ग) प्रकाश से अन्धकार में जाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष प्रकाश से अन्धकार में जाने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष उच्च कुल में जन्म ग्रहण करता है– क्षत्रिय महासारवान (प्रभावशाली) कुल में या ब्राह्मण महासारवान कुल में या गृहपति महासारवान कुल में या ऐसे कुल में जो धनी होता है, अत्यन्त धनवान होता है, ऐश्वर्यशाली होता है, सोना-चांदी बहुत होता है, सम्पत्ति बहुत होती है, धन-धान्य से परिपूर्ण होता है। वह होता है– सुन्दर, दर्शनीय, आकर्षक, श्रेष्ठतम वर्ण-सौन्दर्य से युक्त। उसे खाने-पीने की, वस्त्र की, वाहन की, माला-गन्ध-विलेपन की, सोने-रहने की, (दीपक के लिए) तेलबत्ती आदि की प्राप्ति होती है। वह शरीर से दुष्कर्म करता है, वाणी से दुष्कर्म करता है, मन से अकुशल कार्य करता है। वह शरीर से दुष्कर्म करके, वाणी से दुष्कर्म करके, मन से अकुशल कर्म करके, शरीर त्यागने पर, मरने पर अपाय, दुर्गति, विनिपात, निरय लोक में उत्पन्न होता है। इस प्रकार का पुरुष प्रकाश से अन्धकार में जाने वाला होता है।

(घ) जोति जोतिपरायनो पुग्गलो

५२. कथं च पुग्गलो जोति होति जोतिपरायनो ?

इधेकच्चो पुग्गलो उच्चे कुले पच्चाजातो होति– खत्तियमहासालकुले वा ब्राह्मणमहासालकुले वा गहपतिमहासालकुले वा अड्ढे महद्धने महाभोगे पहूतजातरूपरजते पहूतवित्तूपकरणे पहूतधनधञ्ञे। सो च होति अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स

सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। सो कायेन सुचरितं चरित्वा वाचाय सुचरितं चरित्वा मनसा सुचरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। एवं पुग्गलो जोति होति जोतिपरायनो।

(घ) प्रकाश से प्रकाश में जाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष प्रकाश से प्रकाश में जाने वाला होता है?

यहाँ कोई एक पुरुष उच्च कुल में जन्म ग्रहण करता है– क्षत्रिय महासारवान कुल में या ब्राह्मण महासारवान कुल में या गृहपति महासारवान कुल में या ऐसे कुल में जो धनी होता है, अत्यन्त धनवान होता है, ऐश्वर्यशाली होता है, सोना-चाँदी बहुत होता है, सम्पत्ति बहुत होती है, धन-धान्य से परिपूर्ण होता है। वह होता है – सुन्दर, दर्शनीय, आकर्षक, श्रेष्ठतम वर्ण-सौन्दर्य से युक्त। उसे खाने-पीने की, वस्त्र की, वाहन की, माला-गन्ध-विलेपन की, सोने-रहने की, (दीपक के लिए) तेलबत्ती आदि की प्राप्ति होती है। वह शरीर से कुशल कर्म करता है, वाणी से कुशल कर्म करता है, मन से कुशल कर्म करता है। वह शरीर से कुशल कर्म करके, वाणी से कुशल कर्म करके, मन से कुशल कर्म करके, शरीर के छिन्न होने (त्यागने) पर, मरने पर सुगति (अच्छी गति) तथा स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है। इस प्रकार का पुरुष प्रकाश से प्रकाश में जाने वाला होता है।

(२०.क) ओणतोणतो पुग्गलो

५३. [S.358] कथं च पुग्गलो ओणतोणतो[1] होति?

इधेकच्चो पुग्गलो नीचे कुले ... पे० ... विनिपातं निरयं उपपज्जति। एवं पुग्गलो ओणतोणतो होति।

(२०.क) नीचे से नीचे की ओर जाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष नीचे से नीचे की ओर जाने वाला होता है?

यहाँ कोई एक पुरुष निम्न कुल में ... विनिपात, निरय लोक में उत्पन्न होता है। इस प्रकार का पुरुष नीचे से नीचे की ओर जाने वाला होता है।

---

१. ओनतोन[illegible]ी०, एवमुपरि पि।

(ख) ओणतुण्णतो पुग्गलो

५४. कथं च पुग्गलो ओणतुण्णतो होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो नीचे कुले ... पे० ... सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। एवं पुग्गलो ओणतुण्णतो होति।

(ख) नीचे से ऊपर की ओर जाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष नीचे से ऊपर की ओर जाने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष निम्न कुल में ... अच्छी गति तथा स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है। इस प्रकार का पुरुष नीचे से ऊपर की ओर जाने वाला होता है।

(ग) उण्णतोणतो पुग्गलो

५५. कथं च पुग्गलो उण्णतोणतो होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो उच्चे कुले ... पे० ... विनिपातं निरयं उपपज्जति। एवं पुग्गलो उण्णतोणतो होति।

(ग) ऊपर से नीचे की ओर जाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष ऊपर से नीचे की ओर जाने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष उच्च कुल में ... विनिपात, निरय लोक में उत्पन्न होता है। इस प्रकार का पुरुष ऊपर से नीचे की ओर जाने वाला होता है।

(घ) उण्णतुण्णतो पुग्गलो

५६. कथं च पुग्गलो उण्णतुण्णतो होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो उच्चे कुले ... पे० ... सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। एवं पुग्गलो उण्णतुण्णतो होति।

(घ) ऊपर से ऊपर की ओर जाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष ऊपर से ऊपर की ओर जाने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष उच्च कुल में... अच्छी गति तथा स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है। इस प्रकार का पुरुष ऊपर से ऊपर की ओर जाने वाला होता है।

(२१) चत्तारो रुक्खूपमा पुग्गला

५७. [N.81; B.161] तत्थ कतमे चत्तारो रुक्खूपमा पुग्गला ?

चत्तारो रुक्खा– फेग्गु सारपरिवारो, सारो फेग्गुपरिवारो, फेग्गु फेग्गुपरिवारो, सारो सारपरिवारो। एवमेवं चत्तारोमे रुक्खूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो ? फेग्गु सारपरिवारो, सारो फेग्गुपरिवारो, फेग्गु फेग्गुपरिवारो, सारो सारपरिवारो।

(२१) चार प्रकार के वृक्ष सदृश पुरुष

तब कौन-से चार प्रकार के वृक्ष सदृश पुरुष हैं ?

चार प्रकार के वृक्ष हैं– निम्न कोटि का किन्तु श्रेष्ठता से परिपूर्ण, श्रेष्ठ कोटि का किन्तु निम्नता से परिपूर्ण, निम्न कोटि का तथा निम्नता से परिपूर्ण, श्रेष्ठ कोटि का तथा श्रेष्ठता से परिपूर्ण। इस प्रकार इस संसार में वृक्षों से समानता रखने वाले चार प्रकार के पुरुष होते हैं। कौन से चार (प्रकार के पुरुष) ? निम्न कोटि का किन्तु श्रेष्ठता से परिपूर्ण, श्रेष्ठ कोटि का किन्तु निम्नता से परिपूर्ण, निम्न कोटि का तथा निम्नता से परिपूर्ण, श्रेष्ठ कोटि का तथा श्रेष्ठता से परिपूर्ण।

(क) [R.53] कथं च पुग्गलो फेग्गु होति सारपरिवारो ?

इधेकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो, परिसा च ख्वस्स होति सीलवती कल्याणधम्मा। एवं पुग्गलो फेग्गु होति सारपरिवारो। सेय्यथापि सो रुक्खो फेग्गु सारपरिवारो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(क) कौन-सा पुरुष निम्न कोटि का किन्तु श्रेष्ठता से परिपूर्ण है ?

यहाँ कोई एक पुरुष दुश्शील होता है,पापी होता है और उसकी परिषद शीलवान तथा कल्याणवान होती है। इस प्रकार पुरुष निम्न कोटि का किन्तु श्रेष्ठता से परिपूर्ण होता है। जैसे वह वृक्ष निम्न कोटि का किन्तु श्रेष्ठता से परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार यह पुरुष है।

(ख) कथं च पुग्गलो सारो होति फेग्गुपरिवारो ?

इधेकच्चो पुग्गलो सीलवा होति कल्याणधम्मो, परिसा च ख्वस्स होति दुस्सीला[1] पापधम्मा[1]। एवं पुग्गलो सारो होति फेग्गुपरिवारो। सेय्यथापि सो रुक्खो सारो फेग्गुपरिवारो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ख) कौन-सा पुरुष श्रेष्ठ कोटि का किन्तु निम्नता से परिपूर्ण होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष शीलवान होता है तथा कल्याणवान होता है और उसकी परिषद दुश्शील तथा पापी होती है। इस प्रकार पुरुष श्रेष्ठ कोटि का किन्तु निम्नता से परिपूर्ण होता है। जैसे वह वृक्ष श्रेष्ठ कोटि का किन्तु निम्नता से परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार यह पुरुष है।

(ग) कथं च पुग्गलो फेग्गु होति फेग्गुपरिवारो ?

इधेकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो, परिसा पिस्स होति दुस्सीला पापधम्मा। एवं पुग्गलो फेग्गु होति फेग्गुपरिवारो। सेय्यथापि सो रुक्खो फेग्गु फेग्गुपरिवारो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

(ग) कौन-सा पुरुष निम्न कोटि का तथा निम्नता से परिपूर्ण होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष दुश्शील होता है तथा पापी होता है और उसकी परिषद भी दुश्शील तथा पापी होती है। इस प्रकार पुरुष निम्न कोटि का तथा निम्नता से परिपूर्ण होता है। जैसे वह वृक्ष निम्न कोटि का तथा निम्नता से परिपूर्ण होता है। उसी प्रकार यह पुरुष है।

१-१. दुस्सीलो पापधम्मो – रो०।

(घ) कथं च पुग्गलो सारो होति सारपरिवारो ?

इधेकच्चो पुग्गलो सीलवा होति कल्याणधम्मो, परिसा पिस्स होति सीलवती कल्याणधम्मा। एवं पुग्गलो सारो होति सारपरिवारो। सेय्यथापि सो रुक्खो सारो[1] सारपरिवारो, तथूपमो अयं पुग्गलो।

इमे चत्तारो रुक्खूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

(घ) कौन-सा पुरुष श्रेष्ठ कोटि का तथा श्रेष्ठता से परिपूर्ण होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष शीलवान होता है तथा कल्याणवान होता है और उसकी परिषद भी शीलवान तथा कल्याणवान होती है। इस प्रकार पुरुष श्रेष्ठ कोटि का तथा श्रेष्ठता से परिपूर्ण होता है। जैसे वह वृक्ष श्रेष्ठ कोटि का तथा श्रेष्ठता से परिपूर्ण होता है। उसी प्रकार यह पुरुष है।

इन चार प्रकार के वृक्षों से समानता रखने वाले (चार प्रकार के) पुरुष लोक में विद्यमान हैं।

(२२.क) रूपप्पमाणो रूपप्पसन्नो पुग्गलो

५८. [S.360] कतमो च पुग्गलो रूपप्पमाणो रूपप्पसन्नो ?

इधेकच्चो [N.82] पुग्गलो आरोहं वा पस्सित्वा परिणाहं वा पस्सित्वा सण्ठानं वा पस्सित्वा पारिपूरिं[2] वा पस्सित्वा तत्थ पमाणं गहेत्वा पसादं जनेति। अयं वुच्चति पुग्गलो रूपप्पमाणो रूपप्पसन्नो।

(२२.क) रूप को प्रमाण मानने वाला तथा रूप पर प्रसन्न होने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष रूप को प्रमाण मानने वाला तथा रूप पर प्रसन्न होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष ऊँचाई को देखकर या लम्बाई-चौड़ाई को देखकर या आकार-प्रकार को देखकर या सम्पूर्णता को देखकर, उसी को प्रमाण मानता तथा उसी पर प्रसन्न होता है। (इस प्रकार) यह पुरुष रूप को प्रमाण मानने वाला तथा रूप पर प्रसन्न होने वाला कहा जाता है।

---

१. सारो होति – रो०।

२. परिपूरं – रो०।

(ख) घोसप्पमाणो घोसप्पसन्नो पुग्गलो

५६. [B.162] कतमो च पुग्गलो घोसप्पमाणो घोसप्पसन्नो ?

इधेकच्चो पुग्गलो परवण्णनाय परथोमनाय परपसंसनाय परवण्णहारिकाय[1] तत्थ पमाणं गहेत्वा पसादं जनेति। अयं वुच्चति पुग्गलो घोसप्पमाणो घोसप्पसन्नो।

(ख) शब्द को प्रमाण मानने वाला तथा शब्द पर प्रसन्न होने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष शब्द को प्रमाण मानने वाला तथा शब्द पर प्रसन्न होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष दूसरे के वर्णन के आधार पर, दूसरे के स्तुति के आधार पर, दूसरे के प्रशंसा के आधार पर, दूसरे के गुणगान के आधार पर, उसे प्रमाण मानता तथा उसी पर प्रसन्न होता है। (इस प्रकार) यह पुरुष शब्द को प्रमाण मानने वाला तथा शब्द पर प्रसन्न होने वाला कहा जाता है।

(ग) लूखप्पमाणो लूखप्पसन्नो पुग्गलो

६०. कतमो च पुग्गलो लूखप्पमाणो लूखप्पसन्नो ?

इधेकच्चो पुग्गलो चीवरलूखं वा परिस्सित्वा पत्तलूखं[2] वा परिस्सित्वा[2] सेनासनलूखं वा परिस्सित्वा विविधं वा दुक्करकारिकं परिस्सित्वा तत्थ पमाणं गहेत्वा पसादं जनेति। अयं वुच्चति पुग्गलो लूखप्पमाणो लूखप्पसन्नो।

(ग) रुक्षता को प्रमाण मानने वाला तथा रुक्षता पर प्रसन्न होने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष (चीवर आदि की) रुक्षता को प्रमाण मानने वाला तथा रुक्षता पर प्रसन्न होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष चीवर की रुक्षता को देखकर या पात्र की रुक्षता

---

१. परवण्णहारिया – सी०; परवण्णभारिताय – रो०।

२-२. सी० पोत्थके नत्थि।

को देखकर या शयनासन की रुक्षता को देखकर या विभिन्न प्रकार की दुष्करता को देखकर, उसी को प्रमाण मानता तथा उसी पर प्रसन्न होता है।(इस प्रकार) यह पुरुष रुक्षता को प्रमाण मानने वाला तथा रुक्षता पर प्रसन्न होने वाला कहा जाता है।

(घ) धम्मप्पमाणो धम्मप्पसन्नो पुग्गलो

६१. कतमो च पुग्गलो धम्मप्पमाणो धम्मप्पसन्नो ?

इधेकच्चो पुग्गलो सीलं वा पस्सित्वा समाधिं वा पस्सित्वा [R.54] पञ्ञं वा पस्सित्वा तत्थ पमाणं गहेत्वा पसादं जनेति। अयं वुच्चति पुग्गलो धम्मप्पमाणो धम्मप्पसन्नो।

(घ) धर्म को प्रमाण मानने वाला तथा धर्म पर प्रसन्न होने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष धर्म को प्रमाण मानने वाला तथा धर्म पर प्रसन्न होने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष शील के अभ्यास को देखकर या समाधि के अभ्यास को देखकर या प्रज्ञा के अभ्यास को देखकर, उसी को प्रमाण मानता तथा उसी पर प्रसन्न होता है। (इस प्रकार) यह पुरुष धर्म को प्रमाण मानने वाला तथा धर्म पर प्रसन्न होने वाला कहा जाता है।

(२३.क) अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय

६२. कथं च पुग्गलो अत्तहिताय पटिपन्नो होति नो परहिताय ?

इधेकच्चो पुग्गलो अत्तना सीलसम्पन्नो होति, नो परं सीलसम्पदाय समादपेति; अत्तना समाधिसम्पन्नो होति, नो परं समाधिसम्पदाय समादपेति; अत्तना पञ्ञासम्पन्नो होति, नो परं पञ्ञासम्पदाय समादपेति; अत्तना विमुत्तिसम्पन्नो होति, नो परं विमुत्तिसम्पदाय समादपेति; अत्तना विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नो होति, नो परं विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाय समादपेति। एवं पुग्गलो अत्तहिताय पटिपन्नो होति नो परहिताय।

(२३.क) अपने हित में लगा हुआ किन्तु परहित में नहीं

कैसे पुरुष अपने हित में लगा हुआ होता है किन्तु परहित में नहीं ?

यहाँ कोई एक पुरुष स्वयं शील-सम्पन्न होता है किन्तु दूसरों को शील-सम्पन्न होने के लिए प्रेरित नहीं करता है। स्वयं समाधि-सम्पन्न होता है किन्तु दूसरों को समाधि-सम्पन्न होने के लिए प्रेरित नहीं करता है। स्वयं प्रज्ञा-सम्पन्न होता है किन्तु दूसरों को प्रज्ञा-सम्पन्न होने के लिए प्रेरित नहीं करता है। स्वयं विमुक्त होता है किन्तु दूसरों को विमुक्त होने के लिए प्रेरित नहीं करता है। स्वयं विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न होता है किन्तु दूसरों को विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न होने के लिए प्रेरित नहीं करता है। इस प्रकार का पुरुष अपने हित में तो लगा रहता है किन्तु दूसरे के हित में नहीं(लगा होता है)।

(ख) परहिताय पटिपन्नो नो अत्तहिताय

६३. [N.83; S.362] कथं च पुग्गलो परहिताय पटिपन्नो होति नो अत्तहिताय ?

इधेकच्चो पुग्गलो अत्तना न सीलसम्पन्नो होति, परं सीलसम्पदाय समादपेति; अत्तना न समाधिसम्पन्नो होति, परं समाधिसम्पदाय समादपेति; अत्तना न पञ्ञासम्पन्नो होति, परं पञ्ञासम्पदाय समादपेति; अत्तना न विमुत्तिसम्पन्नो होति, परं विमुत्तिसम्पदाय समादपेति; अत्तना न विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नो होति, परं विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाय समादपेति। एवं पुग्गलो परहिताय पटिपन्नो होति नो अत्तहिताय।

(ख) दूसरे के हित में लगा हुआ किन्तु अपने हित में नहीं

कैसे पुरुष दूसरे के हित में लगा हुआ होता है किन्तु अपने हित में नहीं ?

यहाँ कोई एक पुरुष स्वयं शील-सम्पन्न नहीं होता है किन्तु दूसरों को शील-सम्पन्न होने के लिए प्रेरित करता है। स्वयं समाधि-सम्पन्न नहीं होता है परन्तु दूसरों को समाधि-सम्पन्न होने के लिए प्रेरित करता है। स्वयं प्रज्ञा-सम्पन्न नहीं होता है परन्तु दूसरों को प्रज्ञा-सम्पन्न होने के लिए प्रेरित करता है। स्वयं विमुक्त नहीं होता है परन्तु दूसरों को विमुक्त होने के लिए प्रेरित करता है। स्वंय विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न नहीं होता है परन्तु दूसरों को विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न

होने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार का पुरुष दूसरे के हित के लिए प्रतिपन्न होता है किन्तु अपने हित के लिए नहीं (होता)।

(ग) अत्तहिताय चेव पटिपन्नो परहिताय च

६४. [B. 163] कथं च पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो होति परहिताय च ?

इधेकच्चो पुग्गलो अत्तना च सीलसम्पन्नो होति, परं च सीलसम्पदाय समादपेति; अत्तना च समाधिसम्पन्नो होति, परं च समाधिसम्पदाय समादपेति; अत्तना च पञ्ञासम्पन्नो होति, परं च पञ्ञासम्पदाय समादपेति; अत्तना च विमुत्तिसम्पन्नो होति, परं च विमुत्तिसम्पदाय समादपेति; अत्तना च विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नो होति, परं च विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाय समादपेति। एवं[1] पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो होति परहिताय च।

(ग) अपने हित में लगा हुआ और दूसरे के हित में (भी) लगा हुआ

कैसे पुरुष अपने हित में लगा हुआ होता है और दूसरे के हित में भी लगा हुआ होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष स्वयं शील-सम्पन्न होता है और दूसरों को भी शील-सम्पन्न होने की प्रेरणा देता है। स्वयं समाधि-सम्पन्न होता है और दूसरों को भी समाधि-सम्पन्न होने की प्रेरणा देता है। स्वयं प्रज्ञा-सम्पन्न होता है और दूसरों को भी प्रज्ञा-सम्पन्न होने की प्रेरणा देता है। स्वयं विमुक्ति-सम्पन्न होता है और दूसरों को भी विमुक्ति-सम्पन्न होने की प्रेरणा देता है। स्वयं विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न होता है और दूसरों को भी विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न होने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार का पुरुष अपने हित में लगा हुआ और दूसरे के हित में (भी) लगा हुआ होता है।

---

१. रो० पोत्थके नत्थि।

(घ) नेव अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय

६५. कथं च पुग्गलो नेव अत्तहिताय पटिपन्नो होति नो परहिताय ?

इधेकच्चो पुग्गलो अत्तना न सीलसम्पन्नो होति, नो परं सीलसम्पदाय समादपेति; अत्तना न समाधिसम्पन्नो होति, नो परं समाधिसम्पदाय समादपेति; अत्तना न पञ्ञासम्पन्नो होति, नो परं पञ्ञासम्पदाय समादपेति; अत्तना न विमुत्तिसम्पन्नो होति, नो परं विमुत्तिसम्पदाय समादपेति; अत्तना [R.55] न विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नो होति, नो परं विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाय समादपेति। एवं पुग्गलो नेव अत्तहिताय पटिपन्नो होति नो परहिताय।

(घ) न तो अपने हित में लगा हुआ और न ही दूसरे के हित में (ही) लगा हुआ

कैसे पुरुष न तो अपने हित में लगा हुआ और न ही दूसरे के हित में (ही) लगा हुआ होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष न तो स्वयं शील-सम्पन्न होता है और न ही दूसरों को शील-सम्पन्न होने की प्रेरणा देता है। न तो स्वयं समाधि-सम्पन्न होता है और न ही दूसरों को समाधि-सम्पन्न होने की प्रेरणा देता है। न तो स्वयं प्रज्ञा-सम्पन्न होता है और न ही दूसरों को प्रज्ञा-सम्पन्न होने की प्रेरणा देता है। न तो स्वयं विमुक्ति-सर्म्पन्न होता है और न ही दूसरों को विमुक्ति-सम्पन्न होने की प्रेरणा देता है। न तो स्वयं विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न होता है और न ही दूसरों को विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न होने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार का पुरुष न तो अपने हित में लगा हुआ और न ही दूसरे के हित में (ही) लगा हुआ होता है।

(२४.क) अत्तन्तपो पुग्गलो

६६. [S.364] कथं च पुग्गलो अत्तन्तपो होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो ?

[N.84] इधेकच्चो पुग्गलो अचेलको होति मुत्ताचारो हत्थापलेखनो[1] नएहिभद्दन्तिको[2] नतिट्ठभद्दन्तिको नाभिहटं न उद्दिस्सकतं न निमन्तनं

१. हत्थावलेखनो – स्या०।
२. न एहिभदन्तिको – सी०, स्या०, रो०, एवमुपरि पि।

सादियति, सो न कुम्भिमुखा[१] पटिग्गण्हाति[२] न कळोपिमुखा[३] पटिग्गण्हाति न एळकमन्तरं[४] न दण्डमन्तरं न मुसलमन्तरं[५] न द्विन्नं भुञ्जमानानं न गब्भिनिया न पायमानाय न पुरिसन्तरगताय न सङ्कित्तीसु न यत्थ सा उपट्ठितो होति न यत्थ मक्खिका सण्डसण्डचारिनी, न मच्छं न मंसं न सुरं न मेरयं न थुसोदकं पिवति। सो एकागारिको वा होति एकालोपिको, द्वागारिको वा होति द्वालोपिको ... पे० ... सत्तागारिको वा होति सत्तालोपिको; एकिस्सा पि दत्तिया यापेति द्वीहि पि दत्तीहि यापेति ... पे० ... सत्तहि पि दत्तीहि यापेति; एकाहिकं पि आहारं आहारेति, द्वीहिकं[६] पि आहारं आहारेति ... पे०... सत्ताहिकं पि आहारं आहारेति। इति [B.164] एवरूपं अड्ढमासिकं पि परियायभत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। सो साकभक्खो वा होति सामाकभक्खो वा होति नीवारभक्खो वा होति दद्दुलभक्खो वा होति हटभक्खो वा होति कणभक्खो वा होति आचामभक्खो वा होति पिञ्ञाकभक्खो वा होति तिणभक्खो वा होति गोमयभक्खो वा होति, वनमूलफलाहारो[७] यापेति पवत्तफलभोजी। सो साणानि पि धारेति मसाणानि पि धारेति छवदुस्सानि पि धारेति पंसुकूलानि पि धारेति तिरीटानि पि धारेति अजिनं[८] पि धारेति अजिनक्खिपं पि धारेति कुसचीरं पि धारेति वाकचीरं पि धारेति फलकचीरं पि धारेति केसकम्बलं पि धारेति वाळकम्बलं[९] पि धारेति उलूकपक्खं[१०] पि धारेति, केसमस्सुलोचको[११] पि होति केसमस्सुलोचनानुयोगमनुयुत्तो, उब्भट्ठको पि होति आसनपटिक्खित्तो, उक्कुटिको पि होति उक्कुटिकप्पधानमनुयुत्तो, कण्टकापस्सयिको पि होति कण्टकापस्सये सेय्यं कप्पेति, सायततियकं[१२] पि

१. कुम्भीमुखा – स्या०।
२. पतिगण्हाति – सी०; पटिगण्हाति – रो०।
३. कलोपिमुखा – सी०, स्या०; खळोपिमुखा – रो०।
४. एलकमन्तरं – सी०।
५. मूसलमन्तरं – स्या०।
६. द्वाहिकं – सी०।
७. वनमूलफलाहारे – रो०।
८. अजिनानि – सी०, रो०।
९. वालकम्बलं – सी०, स्या०, रो०।
१०. उलुकपक्खं – स्या०; उलूकपक्खिकं – रो०।
११. केसमस्सुलोचनो – रो०।
१२. सायंततियकं – स्या०, रो०।

उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। इति एवरूपं अनेकविहितं कायस्स आतापनपरितापनानुयोगमनुयुत्तो [N.85; R.56] विहरति। एवं पुग्गलो अत्तन्तपो होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

(२४.क) अपने को तपाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष अपने को तपाने वाला और अपने को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला होता है?

यहाँ कोई एक पुरुष निर्वस्त्र होता है, शिष्टाचार में शून्य (शिथिलाचार), हाथ चाटने वाला, "भदन्त आएं" कहने पर न आने वाला, "भदन्त खड़े रहें" कहने पर खड़ा न रहने वाला, लाया हुआ को न खाने वाला, उद्देश्य से बनाया हुआ न खाने वाला और निमन्त्रण को भी न स्वीकार करने वाला होता है। वह न (तो) घड़े में से दिया हुआ (भोजन) लेता है, न कड़ाह में से दिया हुआ लेता है, न प्रवेश द्वार से दिया हुआ लेता है, न डण्डे के बीच में पड़ जाने से लेता है, न मुसल के बीच में पड़ जाने से लेता है, जब दो लोग भोजन कर रहे हों तो उनमें से एक के उठकर देने पर (भोजन) नहीं लेता है, न गर्भिणी का दिया हुआ लेता है, न बच्चे को दूध पिलाती हुई (माँ) का दिया हुआ लेता है, न पुरुष के पास गयी हुई (औरत के हाथ) का दिया हुआ लेता है, न संग्रह किए हुए अन्न में से पकाया हुआ लेता है, न जहाँ कुत्ता खड़ा हो वहाँ से लेता है, न जहाँ मक्खियाँ उड़ती हों वहाँ से लेता है, वह न मछली, न मांस खाता है, न सुरा, न मेरय पीता है, न चावल का पानी पीता है। वह या तो एक ही घर से लेकर खाने वाला होता है या एक ही कौर खाने वाला, दो घर से लेकर खाने वाला होता है या दो ही कौर खाने वाला ... सात घरों से लेकर खाने वाला होता है या सात ही कौर खाने वाला। वह एक ही छोटे बर्तन से भी जीवन-यापन करने वाला होता है, (वह) दो ही छोटे बर्तन से भी जीवन-यापन करने वाला होता है ... (वह) सात ही छोटे बर्तन से भी जीवन-यापन करने वाला होता है। वह दिन में एक बार भी भोजन ग्रहण करने वाला होता है, दो दिन में एक बार भी भोजन ग्रहण करने वाला होता है ... सात दिन में एक बार भी भोजन ग्रहण करने वाला होता है। इस प्रकार वह पन्द्रह दिन में एक बार भी भात का भोजन करके, उसमें लिप्त होकर विहार करता है। वह शाक-सब्जी खाने वाला भी होता है, ऊसर की भूमि का चावल (सामाक) भी खाने वाला होता है, जंगल की भूमि का चावल (नीवार) खाने वाला भी होता है, मुलायम चावल (दद्दुल) खाने वाला भी होता है, छिलका निकाला हुआ चना (हटभक्खो) भी खाने वाला होता है, छोटे-छोटे अनाज के टुकड़ों को खाने वाला भी होता है, कूड़ा-करकट को भी खाने वाला होता है, खली (पिञ्ञाक) खाने वाला भी होता है, तिनका या घास खाने वाला

भी होता है, गोबर खाने वाला भी होता है, जंगल के मूल और फल को खाने वाला तथा पेड़ों से गिरे हुए फल को भी खाने वाला होता है। वह सन के कपड़े को भी धारण करता है, सन-मिश्रित कपड़े को भी धारण करता है, शव-वस्त्र अर्थात् कफन को भी धारण करता है, कूड़े-करकट पर पड़े हुए वस्त्रों को भी धारण करता है, वृक्ष विशेष की छाल के वस्त्रों को भी धारण करता है, मृग के खाल से बने हुए वस्त्रों को भी धारण करता है, मृग की चमड़ी से बना हुआ वस्त्र को भी धारण करता है, कुश घास का बना हुआ वस्त्र भी धारण करता है, छाल का वस्त्र भी धारण करता है, लकड़ी के टुकड़ों का बना हुआ वस्त्र भी धारण करता है, केशों से बना हुआ कम्बल भी धारण करता है, पूँछ के बालों का बना हुआ कम्बल भी धारण करता है, उल्लू के पंखों का बना हुआ वस्त्र भी धारण करता है। केश और दाढ़ी को जड़ से उखाड़ने वाला भी होता है, केश-दाढ़ी को जड़ से उखाड़ने का अभ्यास करने वाला होता है, वह आसन पर बैठने को त्यागकर निरन्तर खड़ा ही रहने वाला होता है, वह उकडू बैठने का प्रयत्न कर, उकडू ही बैठने वाला भी होता है, काँटों की शय्या पर सोने वाला भी होता है, काँटों की श्रेष्ठतर शय्या तैयार करने वाला भी होता है। प्रातः, मध्याह्न सायं अर्थात् दिन में तीन बार पानी में जाकर, साधना कर तथा उसमें आसक्त होकर विहार करता है। इस प्रकार वह विभिन्न प्रकार से शरीर को तपाकर तथा कष्ट देकर विहार करता है। इस प्रकार का पुरुष अपने को तपाने वाला तथा अपने को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला होता है।

(ख) परन्तपो पुग्गलो

६७. [S. 366] कथं च पुग्गलो परन्तपो होति परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो ओरब्भिको होति सूकरिको साकुणिको मागविको लुद्दो मच्छघातको चोरो चोरघातको गोघातको[1] बन्धनागारिको, ये वा पनञ्ञे पि केचि कुरूरकम्मन्ता। एवं पुग्गलो परन्तपो होति परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

(ख) दूसरे को तपाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष दूसरे को तपाने वाला तथा दूसरे को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला होता है ?

---

१. सी०, रो० पोत्थकेसु नत्थि।

यहाँ कोई एक पुरुष भेड़ों को मारने वाला होता है, सूअरों को मारने वाला होता है, पक्षियों को मारने वाला, मृगों को मारने वाला होता है, निर्दयी होता है, मछलियों को मारने वाला होता है, चोर होता है, जल्लाद, कसाई, कारागारिक होता है, तथा और भी जो क्रूर कर्म हैं उसको भी करने वाला होता है। इस प्रकार का पुरुष दूसरे को तपाने वाला तथा दूसरे को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला होता है।

(ग) अत्तन्तपो च परन्तपो च पुग्गलो

६८. कथं च पुग्गलो अत्तन्तपो च होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, परन्तपो च[१] परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो राजा वा होति खत्तियो मुद्धावसित्तो[२] ब्राह्मणो वा महासालो। सो पुरत्थिमेन नरस्स नवं[३] सन्धागारं[३] कारापेत्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा खराजिनं[४] निवासेत्वा सप्पितेलेन कायं [B.165] अब्भञ्जित्वा मिगविसाणेन[५] पिट्ठिं कण्डुवमानो[६] सन्धागारं पविसति सद्धिं महेसिया ब्राह्मणेन च पुरोहितेन। सो तत्थ अनन्तरहिताय भूमिया हरितुपलित्ताय[७] सेय्यं कप्पेति। एकिहस्सा[८] गाविया सरूपवच्छाय यं एकस्मिं थने खीरं होति तेन[९] राजा यापेति, यं दुतियस्मिं थने खीरं होति[९] तेन महेसी यापेति, यं ततियस्मिं थने खीरं होति तेन ब्राह्मणो पुरोहितो यापेति,यं चतुत्थस्मिं थने खीरं होति तेन अग्गिं जुहति, अवसेसेन वच्छको यापेति। सो एवमाह–"एत्तका उसभा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका वच्छतरा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका वच्छतरियो हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका अजा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका उरब्भा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका[१०] अस्सा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय[१०], एत्तका रुक्खा छिज्जन्तु यूपत्थाय, एत्तका दब्भा लूयन्तु[११] बरिहिसत्थाया[१२]"ति। ये पिस्स ते होन्ति दासा ति वा पेस्सा ति वा कम्मंकरा[१३][N.86] ति वा,

---

१. च होति – सी०। २. मुद्धाभिसित्तो – स्या०।
३-३. नवं यञ्ञागारं – सी०; नवं सन्थागारं – स्या०; नवयञ्ञागारं – रो०।
४. खुराजिनं – स्या०। ५. मगविसाणेन – सी०।
६. कण्डूयमानो – सी०।
७. हरितुपत्ताय – सी०। ८. एतिस्सा – स्या०।
९-९. सी० पोत्थके न दिस्सति।
१०-१०. सी०, रो० पोत्थकेसु नत्थि। ११. लुयन्तु –स्या०।
१२. परहिंसत्थाया – सी०; परिहिंसत्थाया – स्या०।
१३. कम्मकारा – रो०।

ते पि दण्डतज्जिता भयतज्जिता अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि करोन्ति। एवं पुग्गलो अत्तन्तपो च होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

(ग) अपने को तपाने वाला और दूसरे को तपाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष अपने को तपाने वाला और अपने को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला तथा दूसरे को तपाने वाला और दूसरे को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष या तो मुकुटधारी क्षत्रिय राजा होता है या सम्पत्तिशाली और प्रभावशाली ब्राह्मण होता है। वह नगर के पूर्व की ओर नया सन्थागार (सभा-भवन) बनवाता है, वह सिर-दाढ़ी मुड़वाकर, मृग-छाल पहनकर, शरीर पर तेल लगाकर, हिरण (मृग) के सींग से पीठ को खुजलाते हुए, रानी और ब्राह्मण पुरोहित के साथ सभा-भवन में प्रवेश करता है। वह वहाँ दूब (घास) बिखेरी हुई और गोबर से लीपी हुई नंगी धरती पर लेट जाता है। तब अपने रंग (वर्ण) जैसे बछड़े वाली गाय के एक स्तन में जितना दूध होता है, उसे राजा पीता है; जो दूसरे स्तन का दूध होता है, उसे रानी पीती है; जो तीसरे स्तन का दूध होता है, उसे ब्राह्मण पुरोहित पीता है और जो चौथे स्तन का दूध होता है, उससे अग्नि-होम किया जाता है; शेष दूध को बछड़ा पीता है। वह (राजा) ऐसा कहता है—"यज्ञ के लिए इतने वृषभ मारे जायँ,यज्ञ के लिए इतने बछड़े मारे जायँ, यज्ञ के लिए इतनी बछड़ियां मारी जायँ, यज्ञ के लिए इतनी बकरियाँ मारी जायँ, यज्ञ के लिए इतनी भेड़ें मारी जायँ, यज्ञ के लिए इतने घोड़े मारे जायँ, यज्ञ के लिए इतने पेड़ काटे जायँ, यज्ञ में घास की आवश्यकता के लिए इतनी दूब काटकर लायी जायँ।" उसके जितने भी दास होते हैं, जितने भी सन्देशवाहक होते हैं, जितने भी कर्मकार होते हैं, वे सभी दण्ड से तर्जित होने के कारण, भय से भयभीत होने के कारण, आँसू बहाते हुए, रोते हुए, उन-उन कर्मों (कार्यों) को करते हैं। इस प्रकार का पुरुष अपने को तपाने वाला और अपने को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला तथा दूसरे को तपाने वाला और दूसरे को कष्ट देने में ही लगा रहने वाला होता है।

(घ) नेव अत्तन्तपो च न परन्तपो च पुग्गलो

६६. कथं च पुग्गलो नेव अत्तन्तपो च होति न अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो ?

सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो[1] सुखप्पटिसंवेदी[2] ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति।

(घ) न तो अपने को तपाने वाला और न ही दूसरे को तपाने वाला पुरुष

कैसे पुरुष न तो अपने को तपाने वाला और न अपने को कष्ट देने में लगा रहने वाला तथा न दूसरे को तपाने वाला और न दूसरे को कष्ट देने में लगा रहने वाला होता है ?

वह न अपने को अनुतप्त, न दूसरे को अनुतप्त करने वाला होता है। वह इसी जीवन में तृष्णा-विहीन होकर, निर्वृत्त होकर, शान्त भाव को प्राप्त होकर, सुख का अनुभव करता हुआ श्रेष्ठतम जीवन व्यतीत करता है।

७०. इध तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो [R.57] विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। तं धम्मं सुणाति गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अञ्ञतरस्मिं वा कुले [B.166] पच्चाजातो। [S.368] सो तं धम्मं सुत्वा तथागते सद्धं पटिलभति। सो तेन सद्धापटिलाभेन समन्नागतो इति पटिसञ्चिक्खति—"सम्बाधो घरावासो रजापथो, अब्भोकासो पब्बज्जा। नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं[3] ब्रह्मचरियं चरितुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं"ति ! सो अपरेन समयेन अप्पं वा भोगक्खन्धं पहाय महन्तं वा भोगक्खन्धं पहाय अप्पं वा ञातिपरिवट्टं पहाय महन्तं वा ञातिपरिवट्टं पहाय केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति।

---

१. सीतिभूतो – सी०, रो०।
२. सुखपटिसंवेदी – सी०, स्या०, रो०।
३. सङ्खलिखितं – स्या०, रो०।

तथागत इसी लोक में उत्पन्न होते हैं, अर्हत, सम्यकसम्बुद्ध, विद्या तथा आचरण से सम्पन्न, सुगति प्राप्त, लोक के जानकार, अनुत्तर, दम्यपुरुषों को प्रशिक्षित करने वाले सारथी, देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता भगवान बुद्ध हैं। वह देव-मार-ब्रह्म के साथ इस लोक को, श्रमण-ब्राह्मणों से युक्त प्रजा को, देवताओं तथा मनुष्यों को स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर (धर्म की) घोषणा करते हैं। वह ऐसे धर्म का उपदेश देते हैं जो आदि में कल्याणकारक है, मध्य में कल्याणकारक है, अन्त में कल्याणकारक है। वह शब्दों तथा उनके अर्थ सहित सम्पूर्ण रूप से परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रकाशित करते हैं। उस धर्म को कोई गृहपति या गृहपति का पुत्र या अन्य किसी कुल में उत्पन्न हुआ कोई सुनता है। वह उस धर्म (अर्थ) को सुनकर तथागत के प्रति श्रद्धावान हो जाता है। उस श्रद्धा से युक्त होने पर वह इस प्रकार सोचता है– "गृहस्थी में बड़ी बाधाएं हैं, यह धूल-पथ है, प्रव्रज्या खुला आकाश है। घर में रहते हुए सम्पूर्ण रूप से शंख के समान परिशुद्ध, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करना सरल नहीं। क्यों न मैं केश-मूँछ मुड़ाकर, काषाय-वस्त्र धारण कर, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ ?" वह आगे चलकर थोड़ी (अल्प) धन-सम्पत्ति को छोड़ या बहुत धन-सम्पत्ति को छोड़, थोड़े से सगे-सम्बन्धियों को छोड़ या बहुत से सगे-सम्बन्धियों को छोड़, केश-मूँछ मुड़ाकर, काषाय-वस्त्र पहनकर घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाता है।

७१. सो एवं पब्बजितो समानो भिक्खूनं सिक्खासाजीवसमापन्नो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति निहितदण्डो निहितसत्थो लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरति।

इस प्रकार प्रव्रजित हो वह भिक्षुओं की शिक्षा और जीवन का अभ्यासी बन प्राणी-हिंसा को छोड़, प्राणी-हिंसा (जीव-हिंसा) से विरत होता है। दण्ड त्यागी, शस्त्र त्यागी, लज्जा शील, दयावान, सभी प्राणियों का हित चाहने वाला, अनुकम्पा करने वाला हो विहार करता है।

[N.87] अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो होति दिन्नादायी दिन्नपाटिकङ्खी, अथेनेन सुचिभूतेन अत्तना विहरति।

अब्रह्मचरियं पहाय ब्रह्मचारी होति आराचारी पटिविरतो मेथुना गामधम्मा।

मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति सच्चवादी सच्चसन्धो थेतो पच्चयिको अविसंवादको लोकस्स।

वह चोरी करना छोड़, चोरी करने से विरत होता है, कोई वस्तु दी जाने पर ही लेने वाला, दी जाने वाली वस्तु की ही आकांक्षा करने वाला, चौर्यरहित पवित्र जीवन व्यतीत करने वाला हो विहार करता है।

वह अब्रह्मचर्य को छोड़, ब्रह्मचारी होता है, दुश्शीलता से दूर रहने वाला, ग्राम्य मैथुन धर्म से विरत होता है।

वह झूठ बोलना छोड़, झूठ बोलने से विरत होता है, सत्यवादी, विश्वसनीय, यथार्थवादी, विश्वास करने योग्य, लोक में झूठा व्यवहार न करने वाला होता है।

पिसुणं वाचं पहाय पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, इतो सुत्वा न अमुत्र अक्खाता इमेसं भेदाय, अमुत्र वा सुत्वा न इमेसं अक्खाता अमूसं भेदाय। इति भिन्नानं वा सन्धाता सहितानं[1] वा अनुप्पदाता समग्गारामो समग्गरतो समग्गनन्दी समग्गकरणिं वाचं भासिता होति।

फरुसं[2] वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति। या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपिं वाचं भासिता होति।

[R.58; B. 167] सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी निधानवतिं वाचं भासिता[3] कालेन सापदेसं परियन्तवतिं अत्थसंहितं।

वह चुगली करना छोड़, चुगली करने से विरत होता है, वह यहाँ सुनकर वहाँ नहीं कहता है कि यहाँ के लोगों में भेद पैदा हो जाय, वहाँ सुनकर यहाँ नहीं कहता है कि वहाँ के लोगों में भेद पैदा हो जाय। इस प्रकार वह अलग हुए को मिलाने वाला, मिले हुए को और मेल बढ़ाने वाला होता है। वह एकता रखने वाले को प्यार करने वाला, एकता में रत रहने वाला, एकता में आनन्दित होने वाला, एकता में वृद्धि लाने वाली बात को ही बोलने वाला होता है।

वह कठोर वचन बोलना छोड़, कठोर वचन बोलने से विरत होता है जो वाणी मधुर होती है, कर्ण-सुख होती है, प्रेम से युक्त होती है, हृदय को अच्छी लगने वाली होती है, विनम्र होती है, बहुत लोगों को सुन्दर लगने वाली होती

१. समाहितानं – स्या०।
२. फरुसा – सी०।
३. भासिता होति – सी०।

है, बहुत लोगों को अच्छी लगने वाली होती है वैसी वाणी बोलने वाला होता है।

वह व्यर्थ बोलना छोड़, व्यर्थ बातचीत से विरत होता है, समयोचित बोलने वाला, सत्य बोलने वाला, अर्थ-युक्त बात बोलने वाला, धर्म-युक्त बात बोलने वाला, विनय (नियम) युक्त बात बोलने वाला, निधि सदृश वचन मुख से निकालने वाला होता है, वह समय पर बोलता है, तर्क के अनुकूल बोलता है, सीमित बोलता है, प्रयोजन से युक्त बात बोलता है।

७२. [S.370] सो बीजगामभूतगामसमारम्भा पटिविरतो होति, एकभत्तिको होति रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना, नच्चगीतवादितविसूकदस्सना पटिविरतो होति, मालागन्धविलेपनधारणमण्डनविभूसनट्ठाना पटिविरतो होति, उच्चासयनमहासयना पटिविरतो होति, जातरूपरजतपटिग्गहणा पटिविरतो होति, आमकधञ्ञपटिग्गहणा पटिविरतो होति, आमकमंसपटिग्गहणा पटिविरतो होति, इत्थिकुमारिकापटिग्गहणा[१] पटिविरतो होति, दासिदासपटिग्गहणा[२] पटिविरतो होति, अजेळकपटिग्गहणा[३] पटिविरतो होति, कुक्कुटसूकरपटिग्गहणा पटिविरतो होति, हत्थिगवास्सवळवपटिग्गहणा[४] पटिविरतो होति, खेत्तवत्थुपटिग्गहणा पटिविरतो होति, दूतेय्यपहिणगमनानुयोगा[५] पटिविरतो होति, [N.88] कयविक्कया पटिविरतो होति, तुलाकूटकंसकूटमानकूटा[६] पटिविरतो होति, उक्कोटनवञ्चननिकतिसाचियोगा[७] पटिविरतो होति, छेदनवधबन्धनविपरामोसआलोपसहसाकारा[८] पटिविरतो होति।

वह बीजों (के समूह) और वनस्पतियों (के समूह) को नष्ट करने से विरत होता है, (वह) एक बार भोजन करने वाला होता है, रात्रि के भोजन को

---

१. इत्थीकुमारीपटिग्गहणा – स्या०; इत्थिकुमारिपटिग्गहणा – रो०।
२. दासीदास० – स्या०।
३. अजेलक० – सी०।
४. हत्थिगवास्सवलवा० – सी०; हत्थिगवस्सवळव० – स्या०।
५. दूतेय्यपहीनगमनानुयोगा – स्या०; दूतेय्यपहीण० – रो०।
६. तुलाकूटमानकूटा – सी०।
७. उक्कोटन वञ्चन निकतिसावियोगा – सी०, स्या०।
८. छेदन वध बन्ध विपरामोसआलोप सहसाकारा – स्या०।

त्यागे हुए, विकाल भोजन से विरत रहने वाला होता है। वह नाच-गाना-बाजा-तमाशा देखने से विरत रहने वाला होता है। वह माला, गन्ध, लेपन तथा अन्य शारीरिक सजावटों से विरत रहने वाला होता है। वह ऊँची शय्याओं तथा ऊँचे चारपाइयों से विरत रहने वाला होता है, सोने-चांदी के ग्रहण से विरत रहने वाला होता है, कच्चे अन्नों को ग्रहण करने से विरत रहने वाला होता है, कच्चे मांसों को ग्रहण करने से विरत रहने वाला होता है, स्त्रियों, कुमारियों (जो अविवाहित हैं) को ग्रहण करने से विरत रहने वाला होता है, दास-दासियों को ग्रहण करने से विरत रहने वाला होता है। बकरी-भेड़ों को ग्रहण करने से विरत रहने वाला होता है, मुर्गी, सुअरों को ग्रहण करने से विरत रहने वाला होता है, हाथी, बैल, घोड़े-घोड़ियों को ग्रहण करने से विरत रहने वाला होता है, खेत-स्थान को ग्रहण करने से विरत रहने वाला होता है, सन्देशवाहक दूत आदि का ग्रहण करने से विरत रहने वाला होता है, क्रय-विक्रय से विरत रहने वाला होता है, तराजू सम्बन्धी वंचना, सोने के वर्तन को लेकर वंचना, घी-तेल आदि मापों को लेकर वंचना करने से विरत रहने वाला होता है, रिश्वत सम्बन्धी वंचना तथा ठगी आदि से विरत रहने वाला होता है, वह काटना, मारना, बाँधना, लूटना, डाका डालना आदि से विरत रहने वाला होता है।

७३. सो सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति समादायेव पक्कमति, सेय्यथापि नाम[1] पक्खी सकुणो येन येनेव डेति सपत्तभारो व डेति। एवमेवं भिक्खु सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो[2] येन येनेव पक्कमति समादायेव पक्कमति। सो इमिना अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो अज्झत्तं अनवज्जसुखं पटिसंवेदेति।

वह शरीर को ढकने के लिए चीवर तथा पेट पालने के लिए भिक्षा-पात्र से सन्तुष्ट होता है। वह जहाँ-जहाँ भी जाता है अपने चीवर तथा भिक्षा-पात्र को साथ लेकर ही जाता है, जैसे एक पक्षी जहाँ-जहाँ भी उड़कर जाती है, अपने पंखों के बल पर ही उड़कर जाती है (अर्थात् अपने पंखों को साथ लेकर जाती है), इसी प्रकार वह भिक्षु शरीर को ढकने के लिए चीवर तथा पेट पालने के लिए भिक्षा-पात्र से सन्तुष्ट होता है। वह जहाँ-जहाँ भी जाता है अपने चीवर तथा भिक्षा-पात्र को साथ लेकर जाता है। वह इस श्रेष्ठ शील-स्कन्ध से युक्त होने के कारण अपने अन्दर निर्दोषता सुख का अनुभव करता है।

१. सी० पोत्थके नत्थि।
२. सी० पोत्थके नत्थि।

७४. सो चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति; सोतेन सद्दं सुत्वा ...पे०... [B.168] घानेन गन्धं घायित्वा ... जिव्हाय रसं सायित्वा ... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा ... मनसा[1] धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति मनिन्द्रियं, [R. 59] मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। सो इमिना अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो अज्झत्तं अब्यासेकसुखं पटिसंवेदेति।

वह चक्षु से रूप को देखकर, न उसके आकार-प्रकार को सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करता है और न ही उसके ब्यौरे को विभिन्न रूप से ग्रहण करता है। क्योंकि कहीं चक्षुन्द्रिय के असंयम से विहार करते हुए लोभ, द्वेष आदि पापमय अकुशल धर्म इकट्ठा न हो जाय। उस (पापमय विचारों) को दूर रखने के लिए मार्ग में आरूढ़ हो जाता है, चक्षुन्द्रिय की रक्षा करता है, अपनी चक्षुन्द्रिय पर संयम रखता है। कान से शब्द सुनकर ... नाक से सुगन्ध लेकर ... जिह्वा से रस चखकर ... काय से स्पर्श कर ... मन से सोचकर, न उसके आकार-प्रकार को सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करता है और न ही उसके ब्यौरे को विभिन्न रूप से ग्रहण करता है। क्योंकि कहीं मन-इन्द्रिय के असंयम से विहार करते हुए लोभ, द्वेष आदि पापमय अकुशल धर्म इकट्ठा न हो जाय, उसके संवर के लिए मार्ग में आरूढ़ हो जाता है, मन-इन्द्रिय की रक्षा करता है, अपनी मन-इन्द्रिय पर संयम रखता है। वह इस श्रेष्ठ इन्द्रिय-संयम से युक्त होने के कारण अपने अन्दर निर्मलता सुख का अनुभव करता है।

७५. [S.372] सो अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति, आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी होति, सम्मिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति, सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी होति, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति, उच्चारपस्सावकम्मे

---

१. मानसा – सी०।

सम्पजानकारी होति, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति।

वह (पुरुष) जानते हुए आता-जाता है, जानते हुए आगे-पीछे देखता है, जानते हुए सिकोड़ता-फैलाता है, जानते हुए संघाटी-पात्र-चीवर को धारण करता है, जानते हुए भोजन, पान, स्वादन, आस्वादन करता है, जानते हुए पाखाना, पेशाब करता है, जानते हुए चलता, खड़ा रहता, बैठता, सोता, जागता, बोलता, चुप रहता है।

७६. [N.89] सो इमिना च[1] अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो इमिना च अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो इमिना च अरियेन सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो इमाय च अरियाय सन्तुट्ठिया समन्नागतो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो अभिज्झं लोके पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहरति, अभिज्झाय चित्तं परिसोधेति; ब्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो विहरति, सब्बपाणभूतहितानुकम्पी, ब्यापादपदोसा चित्तं परिसोधेति; थीनमिद्धं[2] पहाय विगतथीनमिद्धो विहरति आलोकसञ्ञी सतो सम्पजानो, थीनमिद्धा चित्तं परिसोधेति; उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहरति अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो, उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेति; विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहरति अकथङ्कथी कुसलेसु धम्मेसु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेति।

वह इस श्रेष्ठ शील-स्कन्ध से युक्त होकर, इस श्रेष्ठ इन्द्रिय-संयम से युक्त होकर, इस श्रेष्ठ स्मृति-सम्प्रजन्य से युक्त होकर तथा इस आर्य से सन्तुष्ट होकर एकान्त शयनासन ग्रहण करता है, जैसे अरण्य, वृक्ष-मूल, पर्वत, कन्दरा, गुफा, श्मशान, जंगल, खुले आकाश तथा पुवाल के ढेर में। वह पिण्डपात से लौट, भोजन कर चुकने पर पालथीमार, शरीर को सीधाकर, स्मृति को सामने कर बैठता है। वह सांसारिक लोभों को छोड़ लोभ-रहित चित्त वाला हो विहार करता है; चित्त से लोभ को परिशुद्ध (अर्थात् दूर) करता है, क्रोध, द्वेष को छोड़, क्रोध-रहित चित्त

---

१. सी० पोत्थके नत्थि।

२. थिनमिद्धं – म०, एवमुपरि पि।

वाला हो विहार करता है, सभी प्राणियों पर दया एवं अनुकम्पा करता है, चित्त से क्रोध, द्वेष को परिशुद्ध (अर्थात् दूर) करता है। (वह) आलस्य को छोड़, आलस्य-रहित हो, प्रकाश-संज्ञी, स्मृति तथा सम्प्रजन्य युक्त हो विहार करता है, चित्त से आलस्य को परिशुद्ध (अर्थात् दूर) करता है। (वह) उद्धतपन तथा पछतावे को छोड़, उद्धतता-रहित अन्दर से शान्त-चित्त हो विहार करता है, चित्त से उद्धतपन तथा पछतावे को परिशुद्ध करता है। (वह) संशय को छोड़, संशय-तीर्ण हो विहार करता है, कुशल धर्मों (अच्छी बातों) के विषय में संदेह-रहित होता है, चित्त से संदेह को परिशुद्ध करता है।

७७. सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि विविच्च[1] अकुसलेहि धम्मेहि [B.169] सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति; वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति, सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति – ''उपेक्खको सतिमा सुखविहारी''ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; सुखस्स च पहाना[2] दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

वह (पुरुष) इन पाँच नीवरणों (बाधाओं) को चित्त से छोड़, उपक्लेशों अर्थात् चित्त मलों को जान, उनको दुर्बल करने के लिए कामों से पृथक हो, अकुशल धर्मों से पृथक हो, सवितर्क, सविचार, विवेक से उत्पन्न, प्रीति सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है; (पुरुष) वितर्क और विचार के उपशान्त होने पर, भीतर के सम्प्रसाद चित्त की एकाग्रता को प्राप्त हो, वितर्क-विचार-रहित, समाधि से उत्पन्न प्रीति सुख वाले, द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है; (वह) प्रीति और विराग से उपेक्षक (उपेक्षा करने वाला) हो, स्मृति और सम्प्रजन्य से युक्त हो, काया से सुख का अनुभव करता हुआ विहार करता है, जिसको कि आर्य लोग उपेक्षक स्मृतिमान सुख विहारी कहते हैं, ऐसे तृतीय ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है; (वह) सुख और दुःख के विनाश से, सौमनस्य और दौर्मनस्य के पूर्व ही अस्त हो जाने से, दुःख-रहित, सुख-रहित, उपेक्षक हो, स्मृति की परिशुद्धता युक्त चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है।

---

१. विविच्चेव – सी०।

२. पहाणा – सी०, एवमुपरि पि।

७८. [R.60; S.374] सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये[१] ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं[२] – एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो [N.90] चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं[३] पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं[४] पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे– "अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खपटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं[५]; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खपटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो"ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति।

इस प्रकार उसका चित्त एकाग्र हो जाता है, परिशुद्ध हो जाता है, निर्मल हो जाता है, निर्दोष हो जाता है, उपक्लेशों से रहित हो जाता है, मृदु हो जाता है, कमनीय हो जाता है, स्थित हो जाता है, स्थिरता को प्राप्त हो जाता है तो वह अपने चित्त को पूर्व जन्मानुस्मृति ज्ञान की ओर झुकाता (ले जाता) है। वह विभिन्न प्रकार से पूर्व जन्मों को स्मरण करता है, जैसे – एक जन्म भी, दो जन्म भी, तीन जन्म भी, चार जन्म भी, पाँच जन्म भी, दस जन्म भी, बीस जन्म भी, तीस जन्म भी, चालीस जन्म भी, पचास जन्म भी, सौ जन्म भी, हजार जन्म भी, सौ हजार जन्म भी, अनेक संवर्त (प्रलय) कल्प को भी, अनेक विवर्त (सृष्टि) कल्प को भी, अनेक संवर्त-विवर्त कल्प को भी– "मै इस नाम वाला, इस गोत्र वाला, इस वर्ण वाला, इस आहार वाला, इस प्रकार के सुख-दुःख को अनुभव करने वाला, इतनी आयु-पर्यन्त अमुक स्थान पर रहा। इस प्रकार मैं वहाँ से च्युत हो अमुक स्थान पर उत्पन्न हुआ; वहाँ मैं इस नाम वाला, इस गोत्र वाला, इस वर्ण वाला, इस आहार वाला, इस प्रकार के सुख-दुःख को अनुभव करने वाला, इतनी

१. कम्मनीये – स्या०, रो०।
२. सेय्यथिदं – म०, एवमुपरि पि।
३. वीसतिं – सी०।
४. चत्तारीसं – सी०।
५. उप्पादिं – सी०।

आयु-पर्यन्त रहा। इस प्रकार मैं वहाँ से च्युत हो, यहाँ उत्पन्न हुआ।'' इस प्रकार आकार-सहित, उद्देश्य-सहित अनेक किये गये पूर्व निवासों को स्मरण करता रहा।

७६. सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने[1] पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति – ''इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता, वचीदुच्चरितेन समन्नागता, मनोदुच्चरितेन समन्नागता, अरियानं उपवादका, मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना। ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना[2]। इमे वा पन[3] भोन्तो सत्ता [B.170] कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना। ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना''ति। सो इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति।

इस प्रकार उसका चित्त एकाग्र हो जाता है, परिशुद्ध हो जाता है, निर्मल हो जाता है, निर्दोष हो जाता है, उपक्लेशों से रहित हो जाता है, मृदु हो जाता है, कमनीय हो जाता है, स्थित हो जाता है, स्थिरता को प्राप्त हो जाता है तो प्राणियों के जन्म-मरण के ज्ञान (च्युति-उत्पाद-ज्ञान) के लिए चित्त को झुकाता है। वह अति प्रियकर पुरुष, विशुद्ध दिव्य चक्षु से हीन, उच्च, सुवर्ण, दुर्वर्ण, सुगति, दुर्गति, मरते, उत्पन्न होते सत्त्वों (प्राणियों) को देखता है। उनके कर्मों के साथ सत्त्वों को ठीक प्रकार से जानता है– ''ये सत्त्व काय-दुष्चरित-युक्त, वचन-दुष्चरित-युक्त, मन-दुष्चरित-युक्त थे, आर्यों के निन्दक, मिथ्या-दृष्टि वाले, मिथ्या-दृष्टि-सम्बन्धी कर्मों से युक्त थे। वे शरीर छोड़, मरने के पश्चात अपाय, दुर्गति, विनिपात, नरक में उत्पन्न हुए हैं। और ये सत्त्व काय-सुचरित्र से युक्त,

---

१. हीणे – सी०।
२. उप्पन्ना – सी०।
३. रो० पोत्थके नत्थि।

वचन-सुचरित्र से युक्त, मन-सुचरित्र से युक्त थे, आर्यों के अनिन्दक, सम्यकदृष्टि वाले, सम्यकदृष्टि सम्बन्धी कर्मों से युक्त थे। वे शरीर छोड़, मरने के पश्चात सुगति तथा स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुए हैं।" इस प्रकार वह अति प्रियकर विशुद्ध दिव्य चक्षु से हीन, उच्च, सुवर्ण, दुर्वर्ण, सुगति, दुर्गति, मरते, उत्पन्न होते सत्त्वों को देखता है तथा उनके कर्मों के साथ सत्त्वों को ठीक प्रकार से जानता है।

८०. [S.376] सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति, [R.61] "इमे आसवा"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं आसवसमुदयो"ति [N.91] यथाभूतं पजानाति, "अयं आसवनिरोधो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति भवासवा पि चित्तं विमुच्चति अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। "खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया"ति पजानाति। एवं पुग्गलो नेव अत्तन्तपो च[1] होति न अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति।

इस प्रकार उसका चित्त एकाग्र हो जाता है, परिशुद्ध हो जाता है, निर्मल हो जाता है, निर्दोष हो जाता है, उपक्लेशों से रहित हो जाता है, मृदु हो जाता है, कमनीय हो जाता है, स्थित हो जाता है, स्थिरता को प्राप्त हो जाता है तो वह अपने चित्त को आस्रवों के क्षय-ज्ञान की ओर झुकाता (ले जाता) है। "यह दुःख है" इसे वह यथार्थ रूप से जानता है, "यह दुःख-समुदय है" इसे (वह) यथार्थ रूप से जानता है, "यह दुःख-निरोध है" इसे (वह) यथार्थ रूप से जानता है, "यह

१. सी०, स्या०, रो०, पोत्थकेसु नत्थि।

दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है'' इसे (वह) यथार्थ रूप से जानता है; ''यह आस्रव है'' इसे यथार्थ रूप से जानता है, ''यह आस्रव-समुदय है'' इसे यथार्थ रूप से जानता है, ''यह आस्रव-निरोध है'' इसे यथार्थ रूप से जानता है, ''यह आस्रव-निरोधगामिनी प्रतिपदा है'' इसे (वह) यथार्थ रूप से जानता है। उसको चित्त के द्वारा ऐसा जानते हुए तथा देखते हुए कामास्रवों से भी मुक्त हो जाता है, चित्त के द्वारा भवास्रवों से भी मुक्त हो जाता है, चित्त के द्वारा अविद्यास्रवों से भी मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर, मुक्त होने का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। वह प्रज्ञापूर्वक यह जान जाता है कि ''जन्मों का ग्रहण करना क्षीण हो गया है, श्रेष्ठ जीवन-वास पूर्ण हो गया है, जो करणीय था वह कर लिया है, इससे परे यहाँ आना नहीं है।'' इस प्रकार का पुरुष न तो अपने को तपाने वाला, न अपने को कष्ट देने में लगा रहने वाला और न ही दूसरे को तपाने वाला, न दूसरे को कष्ट देने में लगा रहने वाला होता है। वह अपने को अनुतप्त करने वाला नहीं होता है, वह इसी जीवन में तृष्णा-विहिन होकर, निर्वृत्त होकर, शान्त भाव को प्राप्त होकर, सुख का अनुभव करता हुआ, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता हुआ विहार करता है।

(२५. क) सरागो पुग्गलो

८१. कतमो च पुग्गलो सरागो ?

यस्स पुग्गलस्स रागो अप्पहीनो, अयं वुच्चति पुग्गलो ''सरागो''।

(२५. क) रागयुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष रागयुक्त है ?

जिस पुरुष का राग प्रहीण नहीं हुआ है, इस प्रकार का यह पुरुष ''रागयुक्त'' कहा जाता है।

(ख) सदोसो पुग्गलो

८२. कतमो च पुग्गलो सदोसो ?

यस्स पुग्गलस्स दोसो अप्पहीनो, अयं वुच्चति पुग्गलो ''सदोसो''।

(ख) द्वेषयुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष द्वेषयुक्त है ?

जिस पुरुष का द्वेष प्रहीण नहीं हुआ है, इस प्रकार का यह पुरुष "द्वेषयुक्त" कहा जाता है।

(ग) समोहो पुग्गलो

८३. कतमो च पुग्गलो समोहो ?

यस्स पुग्गलस्स मोहो अप्पहीनो, अयं वुच्चति पुग्गलो "समोहो"।

(ग) मोहयुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष मोहयुक्त है ?

जिस पुरुष का मोह प्रहीण नहीं हुआ है, इस प्रकार का यह पुरुष "मोहयुक्त" कहा जाता है।

(घ) समानो पुग्गलो

८४. कतमो च पुग्गलो समानो ?

यस्स पुग्गलस्स मानो अप्पहीनो, अयं वुच्चति पुग्गलो "समानो"।

(घ) मानयुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष मान (अहंकार) युक्त है ?

जिस पुरुष का मान अर्थात् अहंकार प्रहीण नहीं हुआ है, इस प्रकार का यह पुरुष "मानयुक्त" कहा जाता है।

(२६. क) चेतोसमथस्स लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय न लाभी

८५. [B.171] कथं च पुग्गलो लाभी होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स, न लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय ?

इधेकच्चो पुग्गलो लाभी होति रूपसहगतानं वा अरूपसहगतानं वा समापत्तीनं, न लाभी लोकुत्तरमग्गस्स वा फलस्स वा। एवं पुग्गलो

लाभी होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स, न लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

(२६. क) चित्त की शान्ति का लाभ प्राप्त करने वाला किन्तु श्रेष्ठ प्रज्ञा-धर्म-विपश्यना का लाभ न प्राप्त करने वाला (पुरुष)

कैसे पुरुष अन्दर से चित्त की शान्ति का लाभ प्राप्त करने वाला होता है किन्तु श्रेष्ठ प्रज्ञा-धर्म-विपश्यना का लाभ प्राप्त करने वाला नहीं होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष रूप से युक्त या अरूप से युक्त समापत्तियों का लाभ प्राप्त करता है किन्तु लोकुत्तर मार्ग और फल का लाभ नहीं प्राप्त करता है। इस प्रकार का पुरुष अन्दर से चित्त की शान्ति का लाभ प्राप्त करने वाला होता है किन्तु श्रेष्ठ प्रज्ञा-धर्म-विपश्यना का लाभ प्राप्त करने वाला नहीं होता है।

(ख) अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय लाभी चेतोसमथस्स न लाभी

८६. [N.92; S.378] कथं च पुग्गलो लाभी होति अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय, न लाभी अज्झत्तं चेतोसमथस्स ?

इधेकच्चो पुग्गलो लाभी होति लोकुत्तरमग्गस्स वा फलस्स वा, न लाभी रूपसहगतानं वा अरूपसहगतानं वा समापत्तीनं। एवं पुग्गलो लाभी होति अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय, न लाभी अज्झत्तं चेतोसमथस्स।

(ख) श्रेष्ठ प्रज्ञा-धर्म-विपश्यना का लाभ प्राप्त करने वाला किन्तु चित्त की शान्ति का लाभ न प्राप्त करने वाला (पुरुष)

कैसे पुरुष श्रेष्ठ प्रज्ञा-धर्म-विपश्यना का लाभ प्राप्त करने वाला होता है किन्तु अन्दर से चित्त की शान्ति का लाभ न प्राप्त करने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष लोकुत्तर मार्ग या फल का लाभ प्राप्त करता है किन्तु रूप से युक्त या अरूप से युक्त समापत्तियों का लाभ नहीं प्राप्त करता है। इस प्रकार का पुरुष श्रेष्ठ प्रज्ञा-धर्म-विपश्यना का लाभ प्राप्त करने वाला होता है किन्तु अन्दर से चित्त की शान्ति का लाभ न प्राप्त करने वाला होता है।

(ग) उभिन्नं लाभी

८७. [R.62] कथं च पुग्गलो लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स, लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय ?

इधेकच्चो पुग्गलो लाभी होति रूपसहगतानं वा अरूपसहगतानं वा समापत्तीनं, लाभी लोकुत्तरमग्गस्स वा फलस्स वा। एवं पुग्गलो लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स, लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

(ग) इन दोनों का लाभ प्राप्त करने वाला (पुरुष)

कैसे पुरुष अन्दर से चित्त की शान्ति का लाभ प्राप्त करने वाला और श्रेष्ठ प्रज्ञा-धर्म-विपश्यना का भी लाभ प्राप्त करने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष रूप से युक्त या अरूप से युक्त समापत्तियों का लाभ प्राप्त करता है और लोकुत्तर मार्ग या फल का भी लाभ प्राप्त करता है। इस प्रकार का पुरुष अन्दर से चित्त की शान्ति का लाभ प्राप्त करने वाला और श्रेष्ठ प्रज्ञा-धर्म-विपश्यना का भी लाभ प्राप्त करने वाला होता है।

(घ) उभिन्नं अलाभी

८८. कथं च पुग्गलो नेव लाभी होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स, न लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय ?

इधेकच्चो पुग्गलो नेव लाभी होति रूपसहगतानं वा अरूपसहगतानं वा समापत्तीनं, न लाभी लोकुत्तरमग्गस्स वा फलस्स वा। एवं पुग्गलो नेव लाभी होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स, न लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

(घ) इन दोनों का लाभ न प्राप्त करने वाला (पुरुष)

कैसे पुरुष न तो अन्दर से चित्त की शान्ति का लाभ प्राप्त करने वाला और न श्रेष्ठ प्रज्ञा-धर्म-विपश्यना का ही लाभ प्राप्त करने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष न तो रूप से युक्त या अरूप से युक्त समापत्तियों का लाभ प्राप्त करता है और न लोकुत्तर मार्ग या फल का ही लाभ प्राप्त करता है। इस प्रकार का पुरुष न तो अन्दर से चित्त की शान्ति का लाभ प्राप्त करने वाला और न श्रेष्ठ प्रज्ञा-धर्म-विपश्यना का ही लाभ प्राप्त करने वाला होता है।

(२७. क) अनुसोतगामी पुग्गलो

८६. कतमो च पुग्गलो अनुसोतगामी ?

इधेकच्चो पुग्गलो कामे च पटिसेवति पापं च कम्मं करोति। अयं वुच्चति पुग्गलो "अनुसोतगामी"।

(२७. क) स्रोत के अनुकूल जाने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष स्रोत के अनुकूल जाने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष काम-भोगों का सेवन करता है, पापकर्म करता है। (इस प्रकार) यह "अनुस्रोतगामी" अर्थात् स्रोत के अनुकूल जाने वाला पुरुष कहा जाता है।

(ख) पटिसोतगामी पुग्गलो

६०. कतमो च पुग्गलो पटिसोतगामी ?

इधेकच्चो पुग्गलो कामे च न पटिसेवति[1] पापं च कम्मं न करोति। सो सहा[2] पि दुक्खेन सहा[2] पि दोमनस्सेन अस्सुमुखेन[3] पि[3] रुदमानो परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं चरति। अयं वुच्चति पुग्गलो "पटिसोतगामी"।

(ख) स्रोत के विपरीत जाने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष स्रोत के विपरीत जाने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष काम-भोगों का सेवन नहीं करता है, पाप कर्म भी नहीं करता है। वह दुःख सहन करता हुआ भी, दौर्मनस्य सहन करता हुआ भी, अश्रु-मुख, रोता हुआ भी परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का आचरण करता है। (इस प्रकार) यह "प्रतिस्रोतगामी" या स्रोत के विपरीत जाने वाला पुरुष कहा जाता है।

---

१. सेवति – सी०।
२-२. सह – सी०।
३-३. अस्सुमुखो – सी०।

(ग) ठितत्तो पुग्गलो

६१. [N.93; B.172] कतमो च पुग्गलो ठितत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं[1] परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं वुच्चति पुग्गलो "ठितत्तो"।

(ग) स्थित पुरुष

कौन-सा पुरुष स्थित है ?

यहाँ कोई एक पुरुष पाँच ओरम्भागिय (इस लोक सम्बन्धी) संयोजनों (बन्धनों) का क्षय कर 'ओपपातिक' हो जाता है और वहीं से परिनिर्वृत्त हो जाने वाला तथा उस लोक से न लौटने वाला होता है। (इस प्रकार) यह "स्थित" पुरुष कहा जाता है।

(घ) पारङ्गतो पुग्गलो

६२. [S.380] कतमो च पुग्गलो तिण्णो पारङ्गतो[2] थले[3] तिट्ठति ब्राह्मणो ?

इधेकच्चो पुग्गलो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति पुग्गलो तिण्णो पारङ्गतो थले तिट्ठति ब्राह्मणो।

(घ) पार चला जाने वाला पुरुष

कौन-सा पुरुष तीर्ण (पार) होकर, पार चला जाने वाला और स्थल पर स्थित हो जाने वाला ब्राह्मण है ?

यहाँ कोई एक पुरुष आस्रवों का क्षय कर, अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्तकर विहार

---

१. सञ्ञोजनानं – स्या०।
२. पारगतो – सी०, स्या०।
३. फले – रो०, एवमुपरि पि।

करता है। (इस प्रकार) यह पुरुष तीर्ण होकर, पार चला जाने वाला और स्थल पर स्थित हो जाने वाला ब्राह्मण कहा जाता है।

(२८. क) अप्पस्सुतो सुतेन अनुपपन्नो

६३. कथं च पुग्गलो अप्पस्सुतो होति, सुतेन अनुपपन्नो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स अप्पकं सुतं होति सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं। सो तस्स अप्पकस्स सुतस्स न अत्थमञ्ञाय धम्मपञ्ञाय[1] [R. 63] धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो[2] होति। एवं पुग्गलो अप्पस्सुतो होति सुतेन अनुपपन्नो[3]।

(२८. क) अल्प-श्रुत तथा सुनने के अनुसार आचरण न करने वाला

कैसे पुरुष अल्प-श्रुत होता है तथा सुनने के अनुसार आचरण न करने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष सुत्त, गाने योग्य, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अद्भुत धर्म, वेदल्ल को अल्प (थोड़ा) सुना हुआ होता है। वह उस अल्प सुने हुए अर्थ को न जानकर और धर्म को न जानकर, धर्म-अधर्म के अनुसार आचरण करने वाला नहीं होता है। इस प्रकार का पुरुष अल्प-श्रुत तथा सुनने के अनुसार आचरण न करने वाला होता है।

(ख) अप्पस्सुतो सुतेन उपपन्नो

६४. कथं च पुग्गलो अप्पस्सुतो होति सुतेन उपपन्नो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स अप्पकं सुतं होति सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं। सो तस्स अप्पकस्स सुतस्स अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति। एवं पुग्गलो अप्पस्सुतो होति सुतेन उपपन्नो।

---

१. न धम्ममञ्ञाय – स्या०, रो०।

२. धम्मानुधम्मपटिपन्नो – सी०; न धम्मानुधम्मपटिपन्नो – स्या०, रो०।

३. अनुप्पन्नो – सी०।

(ख) अल्प-श्रुत तथा सुनने के अनुसार आचरण करने वाला

कैसे पुरुष अल्प-श्रुत होता है और सुनने के अनुसार आचरण करने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष सुत्त, गाने योग्य, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अद्भुत धर्म, वेदल्ल को अल्प सुना हुआ होता है। वह उस अल्प सुने हुए अर्थ को जानकर तथा धर्म को जानकर, धर्म-अधर्म के अनुसार आचरण करने वाला होता है। इस प्रकार का पुरुष अल्प-श्रुत तथा सुनने के अनुसार आचरण करने वाला होता है।

(ग) बहुस्सुतो सुतेन अनुपपन्नो

६५. कथं च पुग्गलो बहुस्सुतो होति सुतेन अनुपपन्नो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स बहुकं सुतं होति सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं। सो तस्स बहुकस्स सुतस्स न [N. 94] अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति। एवं पुग्गलो बहुस्सुतो होति सुतेन अनुपपन्नो।

(ग) बहु-श्रुत तथा सुनने के अनुसार आचरण न करने वाला

कैसे पुरुष बहु-श्रुत होता है किन्तु सुनने के अनुसार आचरण न करने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष सुत्त, गाने योग्य, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अद्भुत धर्म, वेदल्ल को अत्यधिक जाना हुआ होता है। वह उस बहुत (या अत्यधिक) सुने हुए अर्थ को न जानकर तथा धर्म को न जानकर, धर्म-अधर्म के अनुसार आचरण करने वाला नहीं होता है। इस प्रकार का पुरुष बहु-श्रुत तथा सुनने के अनुसार आचरण न करने वाला होता है।

(घ) बहुस्सुतो सुतेन उपपन्नो

६६. कथं च पुग्गलो बहुस्सुतो होति सुतेन उपपन्नो ?

इधेकच्चस्स पुग्गलस्स बहुकं सुतं होति सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथं उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं। सो तस्स बहुकस्स सुतस्स अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति। एवं पुग्गलो बहुस्सुतो होति सुतेन उपपन्नो।

(घ) बहु-श्रुत तथा सुनने के अनुसार आचरण करने वाला

कैसे पुरुष बहु-श्रुत होता है और सुनने के अनुसार आचरण करने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष सुत्त, गाने योग्य, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अद्भुत धर्म, वेदल्ल को बहुत जानने वाला होता है। वह उस बहुत सुने हुए अर्थ को जानकर तथा धर्म को जानकर, धर्म-अधर्म के अनुसार आचरण करने वाला होता है। इस प्रकार का पुरुष बहु-श्रुत तथा सुनने के अनुसार आचरण करने वाला होता है।

(२६. क) समणमचलो पुग्गलो

६७. [B.173; S. 382] कतमो च पुग्गलो समणमचलो ?

इधेकच्चो पुग्गलो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो होति अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो। अयं वुच्चति पुग्गलो "समणमचलो"।

(२६. क) अचल-श्रमण पुरुष

कौन-सा पुरुष अचल-श्रमण होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष तीन संयोजनों का क्षय करके स्रोतापन्न होता है, इसके पतन की सम्भावना नहीं होती है तथा बोधि-प्राप्ति सुनिश्चित होती है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "अचल-श्रमण" कहा जाता है।

(ख) समणपदुमो पुग्गलो

६८. कतमो च पुग्गलो समणपदुमो ?

इधेकच्चो पुग्गलो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी होति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करोति। अयं वुच्चति पुग्गलो "समणपदुमो"।

(ख) पद्म-श्रमण पुरुष

कौन-सा पुरुष पद्म-श्रमण होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष तीन संयोजनों का क्षय करके राग, द्वेष तथा मोह को दुर्बल कर सकृदागामी होता है, वह एक ही बार इस लोक में आकर दुःख का अन्त करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "पद्म-श्रमण" कहा जाता है।

(ग) समणपुण्डरीको पुग्गलो

९९. कतमो च पुग्गलो समणपुण्डरीको ?

इधेकच्चो पुग्गलो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं वुच्चति पुग्गलो "समणपुण्डरीको"।

(ग) पुण्डरीक-श्रमण पुरुष

कौन-सा पुरुष पुण्डरीक-श्रमण होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष पाँच ओरम्भागीय संयोजनों का क्षय करके ओपपातिक (या अनागामी) होता है और वहीं से परिनिर्वृत्त हो जाने वाला तथा उस लोक से न लौटने वाला होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "पुण्डरीक-श्रमण" कहा जाता है।

(घ) समणेसु समणसुखुमालो पुग्गलो

१००. कतमो च पुग्गलो समणेसु समणसुखुमालो ?

इधेकच्चो पुग्गलो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति पुग्गलो "समणेसु समणसुखुमालो"ति।

चतुक्कनिद्देसो निट्ठितो।

(घ) श्रमणों में सुकुमार-श्रमण पुरुष

कौन-सा पुरुष श्रमणों में सुकुमार-श्रमण होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष आस्रवों का क्षय करके, अनास्रव चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्तकर विहार करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "श्रमणों में सुकुमार-श्रमण" कहा जाता है।

चार-चार निर्देश समाप्त।

पञ्चमो परिच्छेदो

५. पञ्चकपुग्गलपञ्ञत्ति[1]

(१. क) आरभति च विप्पटिसारी होति

१. [N. 95; R. 64; S. 384] तत्र य्वायं पुग्गलो आरभति[2] च विप्पटिसारी च होति तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सो एवमस्स वचनीयो– "आयस्मतो खो आरम्भजा आसवा संविज्जन्ति, विप्पटिसारजा[3] आसवा पवड्ढन्ति। साधु वतायस्मा आरम्भजे आसवे पहाय विप्पटिसारजे आसवे पटिविनोदेत्वा चित्तं पञ्ञं च भावेतु। एवमायस्मा अमुना पञ्चमेन पुग्गलेन समसमो भविस्सती" ति।

५. पाँच-पाँच प्रकार के पुरुषों का प्रज्ञापन

(१. क) कार्य करने वाला और पश्चात्ताप करने वाला (पुरुष)

यहाँ कोई पुरुष कार्य करने वाला और पश्चात्ताप करने वाला होता है, जो चित्त-विमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्ति को यथार्थ रूप से नहीं जानता है, जिसके प्राप्त होने पर सभी अकुशल पाप-धर्मों का मूलोच्छेद हो जाता है, उसको इस प्रकार का वचन बोलना चाहिए – "आयुष्मान के मन में सदोषता के कारण आस्रव उत्पन्न हुए हैं और पश्चात्ताप से उत्पन्न आस्रव वृद्धि पा रहे हैं। आयुष्मान के लिए यह अच्छा होगा, यदि आयुष्मान सदोषता से उत्पन्न आस्रवों को छोड़ और पश्चात्ताप से उत्पन्न आस्रवों को दूर कर चित्त और प्रज्ञा की भावना करें। इस प्रकार आयुष्मान आप इस समूह में पांचवें प्रकार के पुरुष के सदृश हो जाएंगे।"

---

१. पञ्चकनिद्देसो – सी०, स्या०; पञ्च पुग्गला – रो०।

२. आरम्भति – सी०, स्या०।

३. विप्पटिसारजा च – सी०।

(ख) आरभति न विप्पटिसारी होति

२. तत्र ख्वायं पुग्गलो आरभति न विप्पटिसारी च होति तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना [B. 174] पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सो एवमस्स वचनीयो – "आयस्मतो खो आरम्भजा आसवा संविज्जन्ति, विप्पटिसारजा आसवा नप्पवड्ढन्ति। साधु वतायस्मा आरम्भजे आसवे पहाय चित्तं पञ्ञं च भावेतु। एवमायस्मा अमुना पञ्चमेन पुग्गलेन समसमो भविस्सती" ति।

(ख) कार्य करने वाला किन्तु पश्चात्ताप न करने वाला (पुरुष)

यहाँ कोई पुरुष कार्य करने वाला किन्तु पश्चात्ताप न करने वाला होता है, जो चित्त-विमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्ति को यथार्थ रूप से नहीं जानता है, जिसके प्राप्त होने पर सभी अकुशल पाप-धर्मों का मूलोच्छेद हो जाता है, उसको इस प्रकार वचन बोलना चाहिए – "आयुष्मान के मन में सदोषता के कारण आस्रव उत्पन्न हुए हैं, किन्तु पश्चात्ताप से उत्पन्न आस्रवों की वृद्धि नहीं हो रही है। आयुष्मान के लिए यह अच्छा होगा, यदि आयुष्मान सदोषता से उत्पन्न आस्रवों को छोड़ चित्त और प्रज्ञा की भावना करें। इस प्रकार आयुष्मान आप इस समूह में पांचवें प्रकार के पुरुष के सदृश हो जाएंगे।"

(ग) नारभति विप्पटिसारी होति

३. तत्र ख्वायं पुग्गलो न आरभति विप्पटिसारी च होति तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सो एवमस्स वचनीयो – "आयस्मतो खो आरम्भजा आसवा न संविज्जन्ति, विप्पटिसारजा आसवा पवड्ढन्ति। साधु वतायस्मा विप्पटिसारजे आसवे पटिविनोदेत्वा चित्तं पञ्ञं च भावेतु। एवमायस्मा अमुना पञ्चमेन पुग्गलेन समसमो भविस्सती" ति।

(ग) कार्य न करने वाला किन्तु पश्चात्ताप करने वाला (पुरुष)

यहाँ कोई पुरुष कार्य न करने वाला किन्तु पश्चात्ताप करने वाला होता है, जो चित्त-विमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्ति को यथार्थ रूप से नहीं जानता है, जिसके प्राप्त (उत्पन्न) होने पर सभी अकुशल पाप-धर्मों का नाश हो जाता है, उसको इस प्रकार का वचन बोलना चाहिए – "आयुष्मान के मन में सदोषता से उत्पन्न आस्रव नहीं हैं किन्तु पश्चात्ताप से उत्पन्न आस्रवों की वृद्धि हो रही है। आयुष्मान के लिए अच्छा होगा, यदि आयुष्मान पश्चात्ताप से उत्पन्न आस्रवों को छोड़ चित्त और प्रज्ञा की भावना करें। इस प्रकार आयुष्मान आप इस समूह में पांचवें प्रकार के पुरुष के सदृश हो जाएंगे।"

(घ) नारभति न विप्पटिसारी होति

४. तत्र य्वायं पुग्गलो न आरभति न विप्पटिसारी होति तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना[1] पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सो एवमस्स वचनीयो– [N. 96] "आयस्मतो खो आरम्भजा आसवा न संविज्जन्ति, विप्पटिसारजा आसवा नप्पवड्ढन्ति। साधु वतायस्मा चित्तं पञ्ञं च भावेतु। एवमायस्मा अमुना पञ्चमेन पुग्गलेन समसमो भविस्सती"ति।

(घ) कार्य न करने वाला और पश्चात्ताप (भी) न करने वाला (पुरुष)

यहाँ कोई पुरुष कार्य न करने वाला और पश्चात्ताप (भी) न करने वाला होता है, जो चित्त-विमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्ति को यथार्थ रूप से नहीं जानता है, जिसके प्राप्त (उत्पन्न) होने पर सभी अकुशल पाप-धर्मों का नाश हो जाता है, उसको इस प्रकार का वचन बोलना चाहिए – "आयुष्मान के मन में न तो सदोषता से उत्पन्न आस्रव हैं और न ही पश्चात्ताप से उत्पन्न आस्रवों की वृद्धि हो रही है। आयुष्मान के लिए यह अच्छा होगा, यदि आयुष्मान चित्त और प्रज्ञा की भावना करें। इस प्रकार आयुष्मान आप इस समूह में पांचवें प्रकार के पुरुष के सदृश हो जाएंगे।"

---

१. म० पोत्थके नत्थि।

(ङ) पञ्चमो पुग्गलो

५. इमे चत्तारो पुग्गला[1] अमुना पञ्चमेन पुग्गलेन एवं ओवदियमाना एवं अनुसासियमाना अनुपुब्बेन आसवानं खयं पापुणन्ति।

(ङ) पांचवां पुरुष

इस प्रकार ये चारों प्रकार के पुरुष इस पांचवें प्रकार के पुरुष द्वारा इस तरह उपदेश दिए जाने पर, इस प्रकार अनुशासन किये जाने पर, क्रमशः आस्रवों के क्षय को प्राप्त होते हैं।

(२. क) दत्वा अवजानाति

६. [R. 65; S. 386] कथं च पुग्गलो दत्वा अवजानाति ?

इधेकच्चो पुग्गलो यस्स[2] पुग्गलस्स देति चीवरपिण्डपात-सेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं, तस्स एवं होति – "अहं[3] दम्मि, अयं[4] पटिग्गण्हाती"ति, तमेनं दत्वा अवजानाति। एवं पुग्गलो दत्वा अवजानाति।

(२. क) देकर अवज्ञा करने वाला (पुरुष)

कैसे पुरुष देकर अवज्ञा करने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष दूसरे (जिस किसी) पुरुष को चीवर, भिक्षा, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय, भेषज्य, परिष्कार देता है, उसके मन में ऐसा होता है– "मैं देने वाला हूँ, यह लेने (ग्रहण करने) वाला है" इस प्रकार उसे देकर अवज्ञा करता है। इस प्रकार का पुरुष देकर अवज्ञा करने वाला होता है।

(ख) संवासेन अवजानाति

७. कथं च पुग्गलो संवासेन अवजानाति ?

इधेकच्चो पुग्गलो येन[5] पुग्गलेन सद्धिं संवसति द्वे वा तीणि वा वस्सानि, तमेनं संवासेन अवजानाति। एवं पुग्गलो संवासेन अवजानाति।

---

१. पुग्गलो – सी०।
२. सी० पोत्थके नत्थि।
३. अयं – रो०।
४. अयं पन – सी०, स्या०, रो०।
५. सी०, रो० पोत्थकेसु नत्थि।

(ख) साथ रहकर अवज्ञा करने वाला (पुरुष)

कैसे पुरुष साथ रहकर अवज्ञा करने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष दूसरे (जिस किसी) पुरुष के साथ दो या तीन वर्ष तक रहता है, उसके साथ रहते हुए उसकी अवज्ञा करता है। इस प्रकार का पुरुष साथ रहकर अवज्ञा करने वाला होता है।

(ग) आधेय्यमुखो होति

८. [B. 175] कथं च पुग्गलो आधेय्यमुखो होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो परस्स वण्णे वा अवण्णे वा भासियमाने खिप्पञ्ञेव अधिमुच्चिता होति। एवं पुग्गलो आधेय्यमुखो होति।

(ग) मुँह से धारण करने वाला होता है

कैसे पुरुष मुँह से धारण करने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष दूसरे की निन्दा या प्रशंसा सुनते हुए शीघ्र ही उसके प्रति मुग्ध हो जाता है। इस प्रकार का पुरुष मुँह से धारण करने वाला होता है।

(घ) लोलो होति

९. कथं च पुग्गलो लोलो होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो इत्तरसद्धो होति इत्तरभत्ती[1] इत्तरपेमो इत्तरप्पसादो। एवं पुग्गलो लोलो होति।

(घ) लोभी होता है

कैसे पुरुष लोभी होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष थोड़ी श्रद्धा वाला होता है, थोड़ी भक्ति वाला होता है, थोड़ा प्रेम वाला होता है, थोड़ी प्रसन्नता वाला होता है। इस प्रकार का पुरुष लोभी होता है।

---

१. इत्तरभत्ति – स्या०, रो०।

(ङ) मन्दो मोमूहो होति

१०. कथं च पुग्गलो मन्दो मोमूहो होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो कुसलाकुसले धम्मे न जानाति, सावज्जानवज्जे धम्मे न जानाति, हीनप्पणीते धम्मे न जानाति, कण्हसुक्कसप्पटिभागे धम्मे न जानाति। एवं पुग्गलो मन्दो मोमूहो होति।

(ङ) मन्द और मूढ़ होता है

कैसे पुरुष मन्द और मूढ़ होता है ?

यहाँ कोई पुरुष कुशल एवं अकुशल धर्मों को नहीं जानता है, सदोष-निर्दोष धर्मों को नहीं जानता है, नीच और श्रेष्ठ धर्मों को नहीं जानता है, कृष्ण और शुक्ल धर्मों को नहीं जानता है। इस प्रकार का पुरुष मन्द और मूढ़ (बुद्धि वाला) होता है।

(३) पञ्च योधाजीवूपमा पुग्गला

११. [N. 97] तत्थ कतमे पञ्च योधाजीवूपमा पुग्गला ?

पञ्च योधाजीवा – इधेकच्चो योधाजीवो रजग्गञ्ञेव दिस्वा संसीदति विसीदति न सन्थम्भति[1] न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवरूपो पि इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं पठमो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

(३) पाँच प्रकार के योद्धा (सैनिक) सदृश पुरुष

तब कितने पाँच प्रकार के योद्धा सदृश पुरुष हैं ?

पाँच योद्धा हैं – यहाँ कोई योद्धा धूलि को उड़ते हुए (अर्थात् सेना द्वारा परेड के समय उड़ती हुई धूलि) देखकर ही हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता, संग्राम (युद्ध स्थल) में नहीं उतर सकता। इस प्रकार का भी कोई एक योद्धा होता है। यह प्रथम प्रकार का योद्धा लोक में विद्यमान है।

---

१. सत्थम्भति – सी०।

पुन च परं इधेकच्चो योधाजीवो सहति रजग्गं, अपि च खो धजग्गञ्ञेव दिस्वा संसीदति विसीदति न सन्थम्भति न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवरूपो पि इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं दुतियो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

पुनः दूसरा यहाँ कोई योद्धा धूलि को सहन करता है (अर्थात् धूलि के उड़ने से घबराता नहीं है), फिर भी (रथों पर लगी हुई) पताकाओं को देखकर हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता है, संग्राम में नहीं उतर सकता है। इस प्रकार का भी कोई एक योद्धा होता है। यह दूसरे प्रकार का योद्धा लोक में विद्यमान है।

[S. 388] पुन च परं इधेकच्चो योधाजीवो सहति रजग्गं सहति धजग्गं, अपि च खो उस्सारणञ्ञेव[1] सुत्वा संसीदति विसीदति न सन्थम्भति न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवरूपो पि इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं ततियो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

पुनः दूसरा यहाँ कोई योद्धा धूलि को सहन करता है, (रथों पर लगी हुई) पताकाओं को देखकर सहन करता है (अर्थात् पताकाओं से भी नहीं घबराता है), फिर भी (घोड़ों, रथों आदि की) ध्वनि को सुनकर हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता है, संग्राम में नहीं उतर सकता है। इस प्रकार का भी कोई एक योद्धा होता है। यह तीसरे प्रकार का योद्धा लोक में विद्यमान है।

पुन च परं इधेकच्चो योधाजीवो सहति रजग्गं [R. 66] सहति धजग्गं सहति उस्सारणं[2], अपि च खो सम्पहारे हञ्ञति ब्यापज्जति[3]। एवरूपो पि इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं चतुत्थो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

पुनः दूसरा यहाँ कोई योद्धा धूलि से नहीं धबराता है, न ही (रथों पर लगी हुई) पताकाओं से घबराता है और न ही (घोड़ों, रथों आदि की) ध्वनि सुनकर घबराता है, फिर भी प्रहार होने पर हिम्मत हार जाता है। इस प्रकार का भी कोई एक योद्धा होता है। यह चतुर्थ प्रकार का योद्धा लोक में विद्यमान है।

---

१. उस्सादनंयेव – सी०, रो०; उस्सादनञ्ञेव – स्या०।

२. उस्सादनं – सी०, स्या०, रो०, एवमुपरि पि।

३. व्यापज्जति – सी०, रो०।

[B. 176] पुन च परं इधेकच्चो योधाजीवो सहति रजग्गं सहति धजग्गं सहति उस्सारणं सहति सम्पहारं। सो तं सङ्गामं अभिविजिनित्वा विजितसङ्गामो तमेव सङ्गामसीसं अज्झावसति। एवरूपो पि इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं पञ्चमो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

इमे पञ्च योधाजीवा सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

पुनः दूसरा यहाँ कोई योद्धा न धूलि से घबराता है, न पताकाओं से घबराता है, न ध्वनि सुनकर घबराता है, न प्रहार होने पर घबराता है। वह उस संग्राम में उतरकर, संग्राम-विजयी हो, उसी संग्राम भूमि के शिखर पर निवास करता है। इस प्रकार का भी कोई एक योद्धा होता है। यह पाँचवें प्रकार का योद्धा लोक में विद्यमान है।

ये पाँच प्रकार के योद्धा लोक में विद्यमान हैं।

१२. एवमेवं[1] पञ्चिमे[2] योधाजीवूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसु। कतमे पञ्च ?

(क) इधेकच्चो भिक्खु रजग्गञ्ञेव दिस्वा संसीदति विसीदति न सन्थम्भति न सक्कोति ब्रह्मचरियं [N. 98] सन्धारितुं[3], सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा[4] सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। किमस्स रजग्गस्मिं ? इध भिक्खु सुणाति – "असुकस्मिं[5] नाम गामे वा निगमे वा इत्थी वा कुमारी वा अभिरूपा दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता"ति। सो तं सुत्वा संसीदति विसीदति न सन्थम्भति न सक्कोति ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं, सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। इदमस्स रजग्गस्मिं। सेय्यथापि सो योधाजीवो रजग्गञ्ञेव दिस्वा संसीदति विसीदति न सन्थम्भति न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं, तथूपमो अयं पुग्गलो। एवरूपो पि इधेकच्चो

---

१. एवमेव – सी०, स्या०।
२. पञ्च – सी०।
३. सन्तानेतुं – सी०, स्या०, रो०, एवमुपरि पि।
४. आवीकत्वा – सी०।
५. अमुकस्मिं – सी०, स्या०।

पुग्गलो होति। अयं पठमो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु[1]।

इसी प्रकार पाँच प्रकार के योद्धा सदृश पुरुष, भिक्षुओं में विद्यमान होते हैं। कौन से पाँच हैं ?

(क) यहाँ कोई एक भिक्षु धूलि को उड़ते हुए देखकर ही हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता, ब्रह्मचर्य धारण किये नहीं रह सकता, वह अपनी शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलता को प्रकट कर, शिक्षा को त्यागकर निम्न गृहस्थ का जीवन व्यतीत करता है। यहाँ 'धूलि' का क्या अर्थ है ? यहाँ भिक्षु सुनता है –"अमुक गाँव या निगम में कोई स्त्री या कुमारी है, जो सुन्दर है, दर्शनीय है, प्रासादिक है, वर्ण और शारीरिक गठन (बनावट) की दृष्टि से श्रेष्ठतर है।" यह सुनकर वह हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता, ब्रह्मचर्य धारण किये नहीं रह सकता, वह अपनी शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलता को प्रकट कर, शिक्षा को त्यागकर निम्न गृहस्थ का जीवन व्यतीत करता है। उसके लिए यह यहाँ 'धूलि' का अर्थ है। जैसे वह योद्धा धूलि देखकर ही हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता, संग्राम में नहीं उतर सकता, वैसे ही उपमा सदृश यह पुरुष है। इस प्रकार का भी यहाँ कोई एक पुरुष होता है। यह प्रथम प्रकार का योद्धा सदृश पुरुष होता है, जो भिक्षुओं में विद्यमान होता है।

(ख) पुन च परं इधेकच्चो भिक्खु सहति रजग्गं, अपि च खो धजग्गञ्ञेव दिस्वा संसीदति विसीदति न सन्थम्भति न सक्कोति ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं, सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। किमस्स धजग्गस्मिं ? इध भिक्खु न हेव खो सुणाति– "असुकस्मिं नाम गामे वा निगमे वा इत्थी वा कुमारी वा अभिरूपा दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता"ति, [S.390] अपि च खो सामं[2] पस्सति इत्थिं वा कुमारिं वा अभिरूपं दस्सनीयं पासादिकं परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतं। सो तं दिस्वा संसीदति विसीदति न सन्थम्भति न सक्कोति ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं, सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। इदमस्स धजग्गस्मिं। [R.67; B.177] सेय्यथापि सो योधाजीवो सहति रजग्गं,

---

१. लोकस्मिं – रो०।

२. सामंयेव – सी०।

अपि च खो धजग्गञ्ञेव दिस्वा संसीदति विसीदति न [N.99] सन्थम्भति न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं, तथूपमो अयं पुग्गलो। एवरूपो पि इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं दुतियो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु।

(ख) पुनः दूसरा यहाँ कोई एक भिक्षु धूलि को देखकर नहीं घबराता है, फिर भी पताकाओं (ध्वजा) को देखकर ही हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता है, ब्रह्मचर्य धारण किए नहीं रह सकता है, वह अपनी शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलता को प्रकट कर, शिक्षा को त्यागकर नीच गृहस्थ का जीवन व्यतीत करता है। यहाँ 'ध्वजा' का क्या अर्थ है ? यहाँ भिक्षु यह सुनता ही नहीं है– "अमुक गाँव या निगम में कोई स्त्री या कुमारी है, जो सुन्दर है, दर्शनीय है, प्रासादिक है, वर्ण एवं शारीरिक बनावट की दृष्टि से श्रेष्ठतर है, वरन् वह यह स्वयं देखता भी है कि अमुक गाँव या निगम में कोई स्त्री या कुमारी है, जो सुन्दर है, दर्शनीय है, प्रासादिक है, वर्ण एवं शारीरिक बनावट की दृष्टि से श्रेष्ठतर है। यह सुनकर वह हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता है, ब्रह्मचर्य धारण किए नहीं रह सकता है, वह अपनी शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलता को प्रकट कर, शिक्षा को त्यागकर, नीच गृहस्थ का जीवन व्यतीत करता है। उसके लिए यह यहाँ 'ध्वजा' का अर्थ है। जैसे वह योद्धा धूलि को देखकर तो नहीं घबराता है किन्तु ध्वजा (पताकाओं) को देखकर हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता है, संग्राम में उतर नहीं सकता है, वैसे ही उपमा सदृश यह पुरुष है। इस प्रकार का भी यहाँ कोई एक पुरुष होता है। यह द्वितीय प्रकार का योद्धा सदृश पुरुष होता है, जो भिक्षुओं में विद्यमान होता है।

(ग) पुन च परं इधेकच्चो भिक्खु सहति रजग्गं सहति धजग्गं, अपि च खो उस्सारणञ्ञेव सुत्वा संसीदति विसीदति न सन्थम्भति न सक्कोति ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं, सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। किमस्स उस्सारणाय ? इध भिक्खुं अरञ्ञगतं वा रुक्खमूलगतं वा सुञ्ञागारगतं वा मातुगामो उपसङ्कमित्वा ऊहसति उल्लपति उज्जग्घति[1] उप्पण्डेति[2]। सो मातुगामेन ऊहसियमानो उल्लपियमानो उज्जग्घियमानो उप्पण्डियमानो संसीदति विसीदति न सन्थम्भति न सक्कोति ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा

---

१. उज्झग्घति – सी०; उज्जग्घेति – रो०।

२. उप्फण्डेति – स्या०, एवमुपरि पि।

सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। इदमस्स उस्सारणाय। सेय्यथापि सो योधाजीवो सहति रजग्गं सहति धजग्गं, अपि च खो उस्सारणञ्ञेव सुत्वा संसीदति विसीदति न सन्थम्भति न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं, तथूपमो अयं पुग्गलो। एवरूपो पि इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं ततियो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु।

(ग) पुनः दूसरा यहाँ कोई एक भिक्षु न धूलि को देखकर घबराता है, न ध्वाजा को देखकर घबराता है, किन्तु ध्वनि को सुनकर हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता है, ब्रह्मचर्य धारण किए नहीं रह सकता है, वह अपनी शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलता को प्रकट कर, शिक्षा को त्यागकर, नीच गृहस्थ का जीवन व्यतीत करता है। यहाँ 'ध्वनि' का क्या अर्थ है ? यहाँ भिक्षु अरण्यवासी होता है या वृक्ष के मूल में रहने वाला होता है या शून्यागार में रहने वाला होता है या वहाँ उसके पास कोई स्त्री पहुँचकर हँसी करती है, बातचीत करती है, छेड़ती है, नपुंसक कहकर चिढ़ाती है। वह स्त्री के साथ हँसी करता हुआ, बातचीत करता हुआ, छेड़खानी करता हुआ, नपुंसक कहकर चिढ़ाया जाता हुआ, हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता है, ब्रह्मचर्य धारण किए नहीं रह सकता है, वह अपनी शिक्षा सम्बन्धी दुर्बलता को प्रकट कर, शिक्षा को त्यागकर, नीच गृहस्थ का जीवन व्यतीत करता है। यह यहाँ 'ध्वनि' का अर्थ है। जैसे वह योद्धा न धूलि को देखकर घबराता है, न पताकाओं को देखकर घबराता है, किन्तु ध्वनि को सुनकर हिम्मत हार जाता है, पीछे हट जाता है, खड़ा नहीं रह सकता है, संग्राम में नहीं उतर सकता है, वैसे ही उपमा सदृश यह पुरुष है। इस प्रकार का भी यहाँ कोई एक पुरुष होता है। यह तृतीय प्रकार का योद्धा सदृश पुरुष होता है, जो भिक्षुओं में विद्यमान होता है।

(घ) पुन च परं इधेकच्चो भिक्खु सहति रजग्गं सहति धजग्गं सहति उस्सारणं, अपि च खो सम्पहारे हञ्ञति ब्यापज्जति। किमस्स सम्पहारस्मिं ? इध भिक्खुं अरञ्ञगतं वा रुक्खमूलगतं वा सुञ्ञागारगतं वा मातुगामो उपसङ्कमित्वा अभिनिसीदति अभिनिपज्जति अज्झोत्थरति। सो मातुगामेन अभिनिसीदियमानो अभिनिपज्जियमानो अज्झोत्थरियमानो [N.100] सिक्खं अप्पच्चक्खाय दुब्बल्यं अनाविकत्वा मेथुनं धम्मं पटिसेवति। इदमस्स सम्पहारस्मिं। सेय्यथापि सो योधाजीवो सहति रजग्गं सहति धजग्गं सहति उस्सारणं, अपि च खो सम्पहारे हञ्ञति

ब्यापज्जति, [B.178] तथूपमो अयं पुग्गलो। एवरूपो पि इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं चतुत्थो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु।

(घ) पुनः दूसरा यहाँ कोई एक भिक्षु न धूलि को देखकर घबराता है, न ध्वजा को देखकर घबराता है, न ध्वनि को सुनकर घबराता है, किन्तु प्रहार होने पर हिम्मत हार जाता है। यहाँ 'प्रहार' का क्या अर्थ है ? यहाँ भिक्षु अरण्यवासी होता है या वृक्ष के मूल में रहने वाला होता है या शून्यागार में रहने वाला होता है या वहाँ उसके पास कोई स्त्री पहुँचकर, उसके साथ बैठती है, साथ लेटती है, ऊपर लेट जाती है। वह स्त्री के साथ बैठा हुआ, साथ लेटा हुआ, नीचे लेटा हुआ, बिना शिक्षा त्याग किये, बिना अपनी दुर्बलता को प्रकट किए, मैथुन धर्म का सेवन करता है। यह यहाँ 'प्रहार' का अर्थ है। जैसे वह योद्धा न धूलि को देखकर घबराता है, न ध्वजा को देखकर घबराता है, न ध्वनि को सुनकर घबराता है, किन्तु प्रहार होने पर हिम्मत हार जाता है, वैसे ही यह पुरुष है। इस प्रकार का भी यहाँ कोई एक पुरुष होता है। यह चतुर्थ प्रकार का योद्धा सदृश पुरुष होता है, जो भिक्षुओं में विद्यमान होता है।

(ङ) [S.392] पुन च परं इधेकच्चो भिक्खु सहति रजग्गं सहति धजग्गं सहति उस्सारणं सहति सम्पहारं। सो तं सङ्गामं अभिविजिनित्वा विजितसङ्गामो तमेव सङ्गामसीसं अज्झावसति। किमस्स सङ्गामविजयस्मिं ? इध [R.68] भिक्खुं अरञ्ञगतं वा रुक्खमूलगतं वा सुञ्ञागारगतं वा मातुगामो उपसङ्कमित्वा अभिनिसीदति अभिनिपज्जति अज्झोत्थरति। सो मातुगामेन अभिनिसीदियमानो अभिनिपज्जियमानो अज्झोत्थरियमानो विनिवेठेत्वा विनिमोचेत्वा येन कामं पक्कमति।

(ङ) पुनः दूसरा यहाँ कोई एक भिक्षु न धूलि को देखकर घबराता है, न ध्वजा को देखकर घबराता है, न ध्वनि को सुनकर घबराता है, न प्रहार को देखकर घबराता है। (वरन्) वह उस संग्राम (युद्ध-स्थल) में उतरकर संग्राम में विजय प्राप्त कर, उसी संग्राम-भूमि के शिखर स्थान पर निवास करता है। यहाँ 'संग्राम में विजय' (या संग्राम-विजयी) का क्या अर्थ है ? यहाँ भिक्षु अरण्यवासी होता है या वृक्ष के मूल में रहने वाला होता है या शून्यागार में रहने वाला होता है या वहाँ उसके पास कोई स्त्री पहुँचकर, उसके साथ बैठती है, साथ लेटती है, ऊपर लेट जाती है। वह उस स्त्री के साथ बैठा हुआ, साथ लेटा हुआ, नीचे लेटा हुआ अपने आप को उससे छुड़ाकर, उससे मुक्त होकर, जहाँ इच्छा होती है वहाँ चल देता है।

सो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो अरञ्ञगतो वा रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो अभिज्झं लोके पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहरति, अभिज्झाय चित्तं परिसोधेति; ब्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो विहरति, सब्बपाणभूतहितानुकम्पी ब्यापादपदोसा चित्तं परिसोधेति; थीनमिद्धं[1] पहाय विगतथीनमिद्धो विहरति आलोकसञ्ञी सतो सम्पजानो, थीनमिद्धा चित्तं परिसोधेति; उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहरति अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेति; [N.101] विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहरति अकथङ्कथी कुसलेसु धम्मेसु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेति।

वह एकान्त-स्थान में, अरण्य में, वृक्ष-मूल में, पर्वत पर, कन्दरा में, गुफा में, श्मशान में, जंगल में, खुले आकाश में, प्रवाल के ढेर पर जाकर रहता है। वह अरण्य में जाकर या वृक्ष-मूल में जाकर या शून्यागार में जाकर पालथीमार, शरीर को सीधाकर, स्मृति को सामने उपस्थित कर बैठता है। वह सांसारिक लोभों को छोड़कर, लोभ-रहित चित्त वाला होकर विहार करता है। चित्त से लोभ को विशुद्ध (या दूर) करता है। वह ब्यापाद और द्वेष को छोड़कर, ब्यापाद तथा द्वेष (या क्रोध)-रहित चित्त वाला हो विहार करता है। सभी प्राणियों पर अनुकम्पा (दया) करता है, चित्त से ब्यापाद-द्वेष (क्रोध) को परिशुद्ध (दूर) करता है। वह आलस्य को छोड़कर, आलस्य-रहित हो, आलोक-संज्ञा, स्मृति, सम्प्रजन्य हो विहार करता है। वह चित्त से आलस्य को परिशुद्ध (दूर) करता है। वह उद्धतपन तथा पश्चात्ताप को छोड़कर, उद्धतपन-रहित, अन्दर से शान्त-चित्त हो विहार करता है। चित्त से उद्धतपन तथा पश्चात्ताप को परिशुद्ध करता है। वह संशय को छोड़कर, संशय से उत्तीर्ण होकर, कुशल धर्मों के विषय में संदेह-रहित होकर विहार करता है। चित्त से सन्देह को परिशुद्ध करता है।

सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति;

---

१. थिनमिद्धं – म०, एवमुपरि पि।

वितक्कविचारानं वूपसमा[1] दुतियं झानं ... पे० ... ततियं झानं ... पे० ... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

वह इन पाँच नीवरणों को चित्त से छोड़, उपक्लेशों अर्थात् चित्त-मलों को जानकर, उनको दुर्बल करने के लिए, कामों से पृथक हो, अकुशल धर्मों से पृथक हो, सवितर्क, सविचार, विवेक से उत्पन्न, प्रीति सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है; वितर्क और विचार के उपशान्त होने पर द्वितीय ध्यान ... तृतीय ध्यान ... चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है।

सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खसमुदयो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति, [S.394] "इमे आसवा"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं [B.179] आसवसमुदयो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं आसवनिरोधो"ति यथाभूतं पजानाति, "अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति।

इस प्रकार जब उसका चित्त एकाग्र हो जाता है, परिशुद्ध हो जाता है, स्वच्छ हो जाता है, मल-रहित हो जाता है, क्लेश-रहित हो जाता है, मृदु हो जाता है, कमनीय हो जाता है, स्थित हो जाता है तो वह अपने चित्त को आस्रव से क्षय-ज्ञान की ओर झुकाता (ले जाता) है। "यह दुःख है" इसे वह यथार्थ रूप से जानता है, "यह दुःख-समुदय है" इसे वह यथार्थ रूप से जानता है, "यह दुःख-निरोध है" इसे वह यथार्थ रूप से जानता है, "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है" इसे वह यथार्थ रूप से जानता है; "यह आस्रव है" इसे यथार्थ रूप से जानता है, "यह आस्रव-समुदय है" इसे यथार्थ रूप से जानता है, "यह आस्रव-निरोध है" इसे यथार्थ रूप से जानता है, "यह आस्रव-निरोधगामिनी प्रतिपदा है" इसे यथार्थ रूप से जानता है।

तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति।

---

१. वूपसमाय — स्या०।

विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। "खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया"ति पजानाति। इदमस्स सङ्गामविजयस्मिं। सेय्यथापि सो योधाजीवो सहति रजग्गं सहति धजग्गं सहति उस्सारणं सहति सम्पहारं, सो तं सङ्गामं अभिविजिनित्वा [R.69] विजितसङ्गामो तमेव सङ्गामसीसं अज्झावसति, तथूपमो अयं पुग्गलो। [N.102] एवरूपो पि इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं पञ्चमो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु।

इमे पञ्च योधाजीवूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसु।

उसके इस प्रकार जानने, इस प्रकार देखने के कारण काम-आस्रव भी चित्त से दूर हो जाते हैं, भव-आस्रव भी चित्त से दूर हो जाते हैं, अविद्या-आस्रव भी चित्त से दूर हो जाते हैं। (उनसे) विमुक्त होने पर, विमुक्त होने का ज्ञान हो जाता है। वह प्रज्ञापूर्वक जान जाता है कि "जन्म का बन्धन क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूर्ण हो गया, जो करना था सो कर लिया, इससे परे यहाँ आना नहीं है।" यह यहाँ 'संग्राम-विजयी' का अर्थ है। जैसे वह योद्धा न धूलि से घबराता है, न ध्वजा से घबराता है, न ध्वनि को सुनकर घबराता है, वह उस संग्राम में जाकर, संग्राम-विजयी हो, उसी संग्राम-भूमि के शिखर स्थान पर निवास करता है, वैसे ही यह पुरुष है। इस प्रकार का भी यहाँ कोई एक पुरुष होता है। यह पांचवें प्रकार का योद्धा सदृश पुरुष होता है, जो भिक्षुओं में विद्यमान होता है।

भिक्षुओं में, ये पाँच प्रकार के योद्धाओं के सदृश पुरुष विद्यमान हैं।

(४) पञ्च पिण्डपातिका

१३. तत्थ कतमे पञ्च पिण्डपातिका ?

मन्दत्ता मोमूहत्ता पिण्डपातिको होति, पापिच्छो इच्छापकतो पिण्डपातिको होति, उम्मादा चित्तविक्खेपा[1] पिण्डपातिको होति, "वण्णितं बुद्धेहि बुद्धसावकेही"ति पिण्डपातिको होति, अपि च अप्पिच्छतंयेव[2] निस्साय सन्तुट्ठिंयेव निस्साय सल्लेखंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव[3] निस्साय पिण्डपातिको होति।

---

१. चित्तविक्खेपो – रो०।

२. अप्पिच्छंयेव – स्या०, रो०।

३. इदमट्ठितंयेव – सी०; इदमट्ठिकंयेव – रो०, एवमुपरि पि।

(४) पाँच पिण्डपातिक

तब कौन से पाँच (पुरुष) पिण्डपातिक होते हैं ?

वह (बुद्धि में) मन्दता तथा मूढ़ता के कारण पिण्डपातिक होता है, पाप की इच्छा तथा इच्छा होने के कारण पिण्डपातिक होता है, उन्मत्त तथा विक्षिप्त चित्त होने के कारण पिण्डपातिक होता है, बुद्ध तथा बुद्ध-श्रावकों के द्वारा प्रशंसित होने के कारण भी पिण्डपातिक होता है, और भी अल्पेच्छता के ही कारण, सन्तुष्ट होने के ही कारण, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने की इच्छा के ही कारण , इतने से ही सन्तुष्ट होने के कारण भी पिण्डपातिक होता है। (पिण्डपातिक का अर्थ है— केवल भिक्षा-पात्र में मिले भोजन से ही जीवनयापन करने वाले पांच प्रकार के पुरुष)।

तत्र य्वायं पिण्डपातिको अप्पिच्छतंयेव निस्साय सन्तुट्ठिंयेव निस्साय सल्लेखंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव निस्साय पिण्डपातिको[1], अयं इमेसं पञ्चन्नं पिण्डपातिकानं अग्गो च सेट्ठो च पामोक्खो[2] च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि नाम गवा खीरं, खीरम्हा दधि, दधिम्हा नवनीतं[3], नवनीतम्हा सप्पि, सप्पिम्हा सप्पिमण्डो, सप्पिमण्डं तत्थ अग्गमक्खायति; एवमेवं य्वायं[4] पिण्डपातिको अप्पिच्छतंयेव निस्साय सन्तुट्ठिंयेव निस्साय सल्लेखंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव निस्साय पिण्डपातिको होति, अयं इमेसं पञ्चन्नं पिण्डपातिकानं अग्गो च सेट्ठो च पामोक्खो च उत्तमो च पवरो च। इमे पञ्च पिण्डपातिका।

यहाँ इन (पाँच प्रकार के) पिण्डपातिकों में जो अल्पेच्छता के ही कारण, सन्तुष्ट होने के ही कारण, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने की इच्छा के ही कारण, इतने से ही सन्तुष्ट होने के कारण पिण्डपातिक होता है, वही इन पाँचों पिण्डपातिकों में अग्र, श्रेष्ठ, प्रमुख, उत्तम और परम श्रेष्ठ होता है। जैसे गाय से दूध होता है, दूध से दही, दही से मक्खन (नवनीत), मक्खन से घी, घी से अति स्पष्ट घी होता है, यहाँ अति स्पष्ट घी (घी-माण्ड) ही इन सब में श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार इन (पांच प्रकार के) पिण्डपातिकों में जो अल्पेच्छता के ही कारण,

---

१. पिण्डपातिको होति – सी०।
२. मोक्खो – सी०।
३. नोनीतं – सी०।
४. स्वायं – रो०।

सन्तुष्ट होने के ही कारण, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने के ही कारण, इतने से ही सन्तुष्ट होने के कारण पिण्डपातिक होता है। वह इन पांच पिण्डपातिकों में अग्र,श्रेष्ठ, प्रमुख, उत्तम और परम श्रेष्ठ होता है।

(५-१४) पञ्च खलुपच्छाभत्तिकादि

१४. [B.180; S.396] तत्थ कतमे पञ्च खलुपच्छाभत्तिका ... पे० ... पञ्च एकासनिका ...पे०... पञ्च पंसुकूलिका...पे०... पञ्च तेचीवरिका ...पे०... पञ्च आरञ्ञिका ...पे०... पञ्च रुक्खमूलिका ...पे०... पञ्च अब्भोकासिका ...पे०... पञ्च नेसज्जिका ...पे०... पञ्च यथासन्थतिका ...पे०... ।

(५-१४) पाँच (पुरुष) सामान्य समय के पश्चात भिक्षा को अस्वीकार इत्यादि करने वाले

तब कौन-से पाँच पुरुष सामान्य समय के पश्चात भिक्षा को अस्वीकार करने वाले होते हैं ... कौन-से पाँच पुरुष एक ही आसन पर बैठने वाले होते हैं ... कौन-से पांच पुरुष धूल में पड़े चीथड़ों का बना हुआ चीवर पहनने वाले होते हैं ... कौन-से पाँच पुरुष तीन चीवरों (अन्तरवासक, उत्तरासंघ तथा संघाटी) को ही पहनने वाले होते हैं ... कौन-से पाँच पुरुष अरण्य में रहने वाले होते है ... कौन-से पाँच पुरुष वृक्ष-मूल में रहने वाले होते हैं... कौन-से पाँच पुरुष खुले आकाश के नीचे रहने वाले होते है ... कौन-से पाँच पुरुष बैठे ही रहने वाले होते हैं...कौन-से पाँच पुरुष जैसा भी आसन मिले वैसा ही ग्रहण करने वाले होते हैं ... ।

(१५) पञ्च सोसानिका

१५. [N.103] तत्थ कतमे पञ्च सोसानिका ?

मन्दत्ता मोमूहत्ता सोसानिको होति, पापिच्छो इच्छापकतो सोसानिको होति, उम्मादा चित्तविक्खेपा सोसानिको होति, "वण्णितं बुद्धेहि बुद्धसावकेही"ति सोसानिको होति, अपि च अप्पिच्छतंयेव निस्साय सन्तुट्ठिंयेव निस्साय सल्लेखंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव निस्साय सोसानिको होति।

(१५) पाँच श्मशानिक

तब कौन-से पांच पुरुष श्मशान में रहने वाले होते हैं ?

वह (बुद्धि में) मन्दता तथा मूढ़ता के कारण श्मशान में रहता है, पाप की इच्छा तथा इच्छा होने के कारण श्मशान में रहता है, उन्मत्त तथा विक्षिप्त चित्त होने के कारण श्मशान में रहता है, बुद्ध तथा बुद्ध-श्रावकों के द्वारा प्रशंसित होने के कारण भी श्मशान में रहता है, और भी अल्पेच्छता के ही कारण, सन्तुष्ट होने के ही कारण, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने की इच्छा के ही कारण, इतने से सन्तुष्ट होने के कारण भी श्मशान में रहता है।

तत्र य्वायं सोसानिको अप्पिच्छतंयेव निस्साय [R.70] सन्तुट्ठिंयेव निस्साय सल्लेखंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव निस्साय सोसानिको, अयं इमेसं पञ्चन्नं सोसानिकानं अग्गो च सेट्ठो च पामोक्खो च उत्तमो च पवरो च। सेय्यथापि नाम गवा[1] खीरं, खीरम्हा दधि, दधिम्हा नवनीतं, नवनीतम्हा सप्पि, सप्पिम्हा सप्पिमण्डो, सप्पिमण्डं तत्थ अग्गमक्खायति; एवमेवं य्वायं सोसानिको अप्पिच्छतंयेव निस्साय सन्तुट्ठिंयेव निस्साय सल्लेखंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव निस्साय सोसानिको होति, अयं इमेसं पञ्चन्नं सोसानिकानं अग्गो च सेट्ठो च पामोक्खो च उत्तमो[2] च[2] पवरो च। इमे पञ्च सोसानिका।

पञ्चकनिद्देसो निट्ठितो।

यहाँ इन (पाँच प्रकार के) श्मशानिकों में जो अल्पेच्छा के ही कारण, सन्तुष्ट होने के ही कारण, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने की इच्छा के ही कारण, इतने से ही सन्तुष्ट होने के कारण श्मशान में रहता है, वही इन पाँचों श्मशानिकों में अग्र, श्रेष्ठ, प्रमुख, उत्तम और परम श्रेष्ठ होता है। जैसे गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन (नवनीत), मक्खन (नवनीत) से घी, घी से अति स्पष्ट घी

---

१. गावा – सी०।

२-२. रो० पोत्थके न दिस्सति।

होता है, यह अति स्पष्ट घी ही इन सब में श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार इन (पाँच प्रकार के) श्मशानिकों में जो अल्पेच्छा के ही कारण, सन्तुष्ट होने के ही कारण, श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने के ही कारण, इतने से ही सन्तुष्ट होने के कारण श्मशानिक होता है, वही इन पांचों श्मशानिकों में अग्र, श्रेष्ठ, प्रमुख, उत्तम और परम श्रेष्ठ होता है। यही पाँच पुरुष श्मशान में रहने वाले होते हैं।

पाँच-पाँच निर्देश समाप्त।

छट्ठो परिच्छेदो

६. छक्कपुग्गलपञ्ञत्ति[1]

(१.क) सम्मासम्बुद्धो पुग्गलो

१. [N.104; S. 398] तत्र य्वायं पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति, तत्थ च सब्बञ्ञुतं पापुणाति बलेसु[2] च वसीभावं, सम्मासम्बुद्धो तेन दट्ठब्बो।

(१.क) सम्यकसम्बुद्ध पुरुष

यहाँ यह पुरुष पूर्व में न सुने गये धर्मों में स्वयं सत्यों को पूर्ण रूप से जानता है और उसमें सर्वज्ञता को प्राप्त होता है तथा (दस प्रकार के) बलों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है, इस प्रकार उसे सम्यकसम्बुद्ध जानना चाहिए।

(ख) पच्चेकसम्बुद्धो पुग्गलो

२. तत्र य्वायं पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति, न च तत्थ सब्बञ्ञुतं पापुणाति न च बलेसु[3] वसीभावं, पच्चेकसम्बुद्धो तेन दट्ठब्बो।

(ख) प्रत्येकसम्बुद्ध पुरुष

यहाँ यह पुरुष पूर्व में न सुने गये धर्मों में स्वयं सत्यों को पूर्ण रूप से जानता है, परन्तु न तो उसमें सर्वज्ञता प्राप्त होता है और न ही (दस) बलों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है, इस प्रकार उसे प्रत्येकसम्बुद्ध जानना चाहिए।

---

१. छक्कनिद्देसो – सी०, स्या०; छ पुग्गला – रो०।

२. फलेसु – रो०, एवमुपरि पि।

३. बलेसु च – स्या०।

(ग) महासावको पुग्गलो

३. [B.181] तत्र य्वायं पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अनभिसम्बुज्झति[१], दिट्ठेव धम्मे दुक्खस्सन्तकरो[२] होति, सावकपारमिं च पापुणाति, सारिपुत्तमोग्गल्लाना[३] तेन दट्ठब्बा।

(ग) महाश्रावक पुरुष

यहाँ यह पुरुष पूर्व में न सुने गये धर्मों में स्वयं सत्यों को पूर्ण रूप से नहीं जानता है परन्तु इसी जीवन में दुःख का अन्त करने वाला होता है, श्रावक-पारमी पूर्ण करता है, इस प्रकार उसे सारिपुत्त और मोग्गल्लान जानना चाहिए।

(घ) अरहन्तो पुग्गलो

४. तत्र य्वायं पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अनभिसम्बुज्झति, दिट्ठेव धम्मे दुक्खस्सन्तकरो होति, न च सावकपारमिं पापुणाति, अवसेसा अरहन्ता[४] तेन दट्ठब्बा।

(घ) अरहन्त पुरुष

यहाँ यह पुरुष पूर्व में न सुने गये धर्मों में सत्यों को स्वयं पूर्ण रूप से नहीं जानता है परन्तु इसी जीवन में दुःख का अन्त करने वाला होता है, पर श्रावक-पारमी पूर्ण नहीं करता है, अवशेष को अर्हत के रूप में जानना चाहिए।

(ङ) अनागामी पुग्गलो

५. तत्र य्वायं पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अनभिसम्बुज्झति, न च दिट्ठेव धम्मे दुक्खस्सन्तकरो होति, अनागामी होति अनागन्ता[५] इत्थत्तं, [R.71] अनागामी तेन दट्ठब्बो।

(ङ) अनागामी (कभी न आने वाला) पुरुष

यहाँ यह पुरुष पूर्व में न सुने गये धर्मों में स्वयं सत्यों को पूर्ण रूप से नहीं जानता है और न ही इसी जीवन में दुःख का अन्त करने वाला होता

---

१. अभिसम्बुज्झति – रो०, एवमुपरि पि।
२. दुक्खस्सन्तं करोति – सी०, एवमुपरि पि।
३. सारीपुत्तमोग्गल्लाना – स्या०।
४. अरहन्तो – स्या०।
५. अनागन्त्वा – स्या०, रो०।

है परन्तु अनागामी होता है तथा इस संसार में कभी न आने वाला होता है। इस प्रकार उसे अनागामी जानना चाहिए।

(च) सोतापन्नो सकदागामी पुग्गलो

६. [N.105] तत्र य्वायं पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अनभिसम्बुज्झति, न च दिट्ठेव धम्मे दुक्खस्सन्तकरो होति, आगामी[1] (सकदागामी) होति[1] आगन्ता[2] इत्थत्तं, सोतापन्नसकदागामिनो तेन दट्ठब्बा।

छक्कनिद्देसो निट्ठितो।

(च) स्रोतापन्न सकृदागामी पुरुष

यहाँ यह पुरुष पूर्व में न सुने गये धर्मों में स्वयं सत्यों को पूर्ण रूप से नहीं जानता है, और न ही इसी जीवन में दुःख का अन्त करने वाला होता है परन्तु सकृदागामी होता है तथा यहाँ (इस लोक में) आने वाला होता है। इस प्रकार उसे स्रोतापन्न, सकृदागामी जानना चाहिए।

छठवाँ निर्देश समाप्त।

१-१. म० पोत्थके नत्थि; सकदागामी होति – रो०।

२. आगन्त्वा – रो०।

सत्तमो परिच्छेदो

७. सत्तकपुग्गलपञ्ञत्ति

(१.क) सकिं निमुग्गो निमुग्गो व होति

१. [N.106; S.400] कथं च पुग्गलो सकिं निमुग्गो निमुग्गो व होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो समन्नागतो होति एकन्तकाळकेहि अकुसलेहि धम्मेहि। एवं पुग्गलो सकिं निमुग्गो[1] निमुग्गो व होति।

(१.क) एक बार डुबकी लगाकर पुनः डूब जाने वाला

कैसे पुरुष एक बार डुबकी लगाकर पुनः (उसी में) डूब जाने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष पूर्ण रूप से अन्धकारमय अकुशल धर्मों में युक्त होता है। इस प्रकार का पुरुष एक बार डुबकी लगाकर पुनः (उसी में) डूब जाने वाला होता है।

(ख) उम्मुज्जित्वा निमुज्जति

२. कथं च पुग्गलो उम्मुज्जित्वा निमुज्जति ?

इधेकच्चो पुग्गलो उम्मुज्जति, साहु सद्धा कुसलेसु धम्मेसु, साधु[2] हिरी[3] कुसलेसु धम्मेसु, साधु ओत्तप्पं कुसलेसु धम्मेसु, साधु विरियं कुसलेसु धम्मेसु, साधु पञ्ञा कुसलेसु धम्मेसू ति। तस्स सा सद्धा नेव

---

१. सी० पोत्थके नत्थि।

२. साहु – सी०; उम्मुज्जति साहु – स्या०, रो०, एवमुपरि पि।

३. हिरि – सी०, स्या०, रो०।

तिट्ठति नो वड्ढति हायतियेव, तस्स सा हिरी नेव तिट्ठति नो वड्ढति हायतियेव, तस्स तं ओत्तप्पं नेव तिट्ठति नो वड्ढति हायतियेव, तस्स तं विरियं नेव तिट्ठति नो वड्ढति हायतियेव, तस्स सा पञ्ञा नेव तिट्ठति नो वड्ढति हायतियेव। एवं पुग्गलो उम्मुज्जित्वा निमुज्जति।

(ख) (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर पुनः डूब जाने वाला

कैसे पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर पुनः (उसी में) डूब जाने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष को कुशल धर्मों में अच्छी श्रद्धा होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी विनम्रता (हिरी) होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी पाप-भीरुता होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी शक्ति (विरिय) होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी प्रज्ञा होने के कारण (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलता है। (लेकिन) उसकी वह श्रद्धा न तो स्थित रहती है, न ही बढ़ती है वरन् घटती ही रहती है; उसकी वह विनम्रता न तो स्थित रहती है, न ही बढ़ती है वरन् घटती ही रहती है; उसकी वह पाप-भीरुता न तो स्थित रहती है, न ही बढ़ती है वरन् घटती ही रहती है; उसकी वह शक्ति न तो स्थित रहती है, न ही बढ़ती है वरन् घटती ही रहती है; उसकी वह प्रज्ञा न तो स्थित रहती है, न ही बढ़ती है वरन् घटती ही रहती है। इस प्रकार का पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर पुनः (उसी में) डूब जाने वाला होता है।

(ग) उम्मुज्जित्वा ठितो होति

३. [B.182] कथं च पुग्गलो उम्मुज्जित्वा ठितो होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो उम्मुज्जति साहु सद्धा कुसलेसु धम्मेसु, साधु हिरी कुसलेसु धम्मेसु, साधु ओत्तप्पं कुसलेसु धम्मेसु, साधु विरियं कुसलेसु धम्मेसु, साधु पञ्ञा कुसलेसु धम्मेसू ति। तस्स सा सद्धा नेव हायति नो वड्ढति ठिता होति, तस्स सा हिरी नेव हायति नो वड्ढति ठिता होति, तस्स तं ओत्तप्पं नेव हायति नो वड्ढति ठितं[1] होति, तस्स तं विरियं

१. ठितो – रो०, एवमुपरि पि०।

नेव हायति नो वड्ढति ठितं होति, तस्स सा पञ्ञा नेव हायति नो वड्ढति ठिता होति। एवं पुग्गलो उम्मुज्जित्वा ठितो होति।

(ग) (अकुशल धर्मों से)बाहर निकलकर स्थित हो जाने वाला

कैसे पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर स्थित हो जाने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष को कुशल धर्मों में अच्छी श्रद्धा होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी विनम्रता (हिरी) होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी पाप-भीरुता होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी शक्ति (विरिय) होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी प्रज्ञा होने के कारण (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलता है। (लेकिन) उसकी वह श्रद्धा न तो घटती है, न ही बढ़ती है वरन् स्थित रहती है; उसकी वह विनम्रता न तो घटती है न ही बढ़ती है वरन् स्थित रहती है; उसकी वह पाप-भीरुता न तो घटती है, न ही बढ़ती है वरन् स्थित रहती है; उसकी वह शक्ति न तो घटती है, न ही बढ़ती है वरन् स्थित रहती है; उसकी वह प्रज्ञा न तो घटती है, न ही बढ़ती है, वरन् स्थित रहती है। इस प्रकार का पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर स्थित हो जाने वाला होता है।

(घ) उम्मुज्जित्वा विपस्सति

४. कथं च पुग्गलो उम्मुज्जित्वा विपस्सति विलोकेति ?

[N.107] इधेकच्चो पुग्गलो उम्मुज्जति साहु सद्धा कुसलेसु धम्मेसु, साधु हिरी कुसलेसु धम्मेसु, साधु ओत्तप्पं कुसलेसु धम्मेसु, साधु विरियं कुसलेसु धम्मेसु, साधु [R.72] पञ्ञा कुसलेसु धम्मेसू ति। सो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो होति अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायनो। एवं पुग्गलो उम्मुज्जित्वा विपस्सति विलोकेति।

(घ) (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर पूर्ण रूप से देखने वाला

कैसे पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर पूर्ण रूप से चारों तरफ देखने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष को कुशल धर्मों में अच्छी श्रद्धा होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी विनम्रता (हिरी) होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी पाप-भीरुता होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी शक्ति (विरिय) होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी प्रज्ञा होने के कारण (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलता है।

वह तीन संयोजनों का प्रहाण कर स्रोतापन्न होता है, नरक में जाने की कोई सम्भावना नहीं होती है तथा सम्बोधि प्राप्त करना निश्चित होता है। इस प्रकार का पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर पूर्ण रूप से चारों तरफ देखने वाला होता है।

(ङ) उम्मुज्जित्वा पतरति

५. [S.402] कथं च पुग्गलो उम्मुज्जित्वा पतरति ?

इधेकच्चो पुग्गलो उम्मुज्जति साहु सद्धा कुसलेसु धम्मेसु, साधु हिरी कुसलेसु धम्मेसु, साधु ओत्तप्पं कुसलेसु धम्मेसु, साधु विरियं कुसलेसु धम्मेसु, साधु पञ्ञा कुसलेसु धम्मेसू ति। सो तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी होति सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तकरो होति। एवं पुग्गलो उम्मुज्जित्वा पतरति।

(ङ) (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर पार चला जाने वाला

कैसे पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर पार चला जाने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष को कुशल धर्मों में अच्छी श्रद्धा होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी विनम्रता होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी पाप-भीरुता होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी शक्ति होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी प्रज्ञा होने के कारण (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलता है। वह तीन संयोजनों का प्रहाण कर तथा राग, द्वेष, मोह को कमजोर बनाकर सकृदागामी होता है, वह एक ही बार इस लोक में आकर दुःखों का अन्त करने वाला होता है। इस प्रकार का पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर पार चला जाने वाला होता है।

(च) उम्मुज्जित्वा पटिगाधप्पत्तो होति

६. कथं च पुग्गलो उम्मुज्जित्वा पटिगाधप्पत्तो[1] होति ?

इधेकच्चो पुग्गलो उम्मुज्जति साहु सद्धा कुसलेसु धम्मेसु, साधु

---

१. पतिगाधप्पत्तो – म०, एवमुपरि पि।

हिरी कुसलेसु धम्मेसु, साधु ओत्तप्पं कुसलेसु धम्मेसु, साधु विरियं कुसलेसु धम्मेसु, साधु पञ्ञा कुसलेसु धम्मेसू ति। सो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। एवं पुग्गलो उम्मुज्जित्वा पटिगाधप्पत्तो होति।

(च) (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर स्थिरता प्राप्त कर लेने वाला

कैसे पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर स्थिरता प्राप्त कर लेने वाला होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष को कुशल धर्मों में अच्छी श्रद्धा होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी विनम्रता होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी पाप-भीरुता होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी शक्ति होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी प्रज्ञा होने के कारण (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलता है। वह पाँच ओरम्भागीय संयोजनों का प्रहाण कर ओपपातिक होता है तथा वहीं पर परिनिर्वाण प्राप्त कर इस लोक में कभी न आने वाला होता है। इस प्रकार का पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर स्थिरता प्राप्त कर लेता है।

(छ) उम्मुज्जित्वा तिण्णो होति

७. कथं च पुग्गलो उम्मुज्जित्वा तिण्णो होति पारङ्गतो[1] थले[2] तिट्ठति ब्राह्मणो ?

इधेकच्चो पुग्गलो उम्मुज्जति साहु सद्धा कुसलेसु [B.183] धम्मेसु, साधु हिरी कुसलेसु धम्मेसु, साधु ओत्तप्पं कुसलेसु धम्मेसु, साधु विरियं कुसलेसु धम्मेसु, साधु पञ्ञा कुसलेसु धम्मेसू ति। सो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। एवं पुग्गलो उम्मुज्जित्वा तिण्णो होति पारङ्गतो थले तिट्ठति ब्राह्मणो।

---

१. पारगतो – सी०,स्या०।

२. फले – रो०, एवमुपरि पि।

(छ) (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर तीर्ण होने वाला

कैसे पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर तीर्ण, पारंगत और फल (या स्थल) पर स्थित होने वाला ब्राह्मण होता है ?

यहाँ कोई एक पुरुष को कुशल धर्मों में अच्छी श्रद्धा होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी विव्रमता होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी पाप-भीरुता होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी शक्ति होने के कारण, कुशल धर्मों में अच्छी प्रज्ञा होने के कारण (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलता है। वह आस्रवों का क्षय कर, अनास्रव-रहित चित्त-विमुक्ति तथा प्रज्ञा-विमुक्ति के द्वारा स्वयं जानकर इसी जीवन में सत्य का साक्षात्कार कर विहार करता है। इस प्रकार का पुरुष (अकुशल धर्मों से) बाहर निकलकर तीर्ण, पारंगत और फल (या स्थल) पर स्थित होने वाला ब्राह्मण कहा जाता है।

(२.क) उभतोभागविमुत्तो पुग्गलो

८. [N.108] कतमो च पुग्गलो उभतोभागविमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति पञ्ञाय चस्स दिस्वा आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो उभतोभागविमुत्तो।

(२.क) दोनों प्रकार से विमुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष दोनों प्रकार से विमुक्त है ?

यहाँ कोई एक पुरुष आठ विमोक्षों को स्वयं साक्षात्कार करके विहार करता है और प्रज्ञा द्वारा देखकर वह आस्रवों को पूर्ण रूप से नष्ट कर देता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष दोनों प्रकार से विमुक्त कहा जाता है।

(ख-च) पञ्ञाविमुत्तो ... धम्मानुसारी पुग्गलो

९. कतमो च पुग्गलो पञ्ञाविमुत्तो ... पे० ... कायसक्खी ... दिट्ठिप्पत्तो ... सद्धाविमुत्तो ... धम्मानुसारी ...।

(ख-च) प्रज्ञाविमुक्त ... धर्मानुसारी पुरुष

कौन-सा पुरुष प्रज्ञाविमुक्त है ... कायसाक्षी ... दृष्टिप्राप्त... श्रद्धाविमुक्त ... धर्मानुसारी ...।

(छ) सद्धानुसारी पुग्गलो

१०. कतमो च पुग्गलो सद्धानुसारी ?

यस्स पुग्गलस्स सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नस्स सद्धिन्द्रियं अधिमत्तं होति, सद्धावाहिं[1] सद्धापुब्बङ्गमं अरियमग्गं भावेति। अयं वुच्चति पुग्गलो सद्धानुसारी। सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो सद्धानुसारी, फले ठितो सद्धाविमुत्तो ति।

सत्तकनिद्देसो निट्ठितो।

(छ) श्रद्धानुसारी पुरुष

कौन-सा पुरुष श्रद्धानुसारी है ?

जो पुरुष स्रोतापत्तिफल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न है, श्रद्धा-इन्द्रिय बलवती है, श्रद्धा अग्रसर है, श्रद्धा उत्तम है एवं आर्य मार्ग की भावना करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष श्रद्धानुसारी कहा जाता है। स्रोतापत्तिफल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न पुरुष श्रद्धानुसारी तथा फल पर आरूढ़ (पुरुष) श्रद्धा-विमुक्त है।

सात-सात निर्देश समाप्त।

---

१. सद्धावाही – सी०।

अट्ठमो परिच्छेदो

८. अट्ठकपुग्गलपञ्ञत्ति

(१. क-ज) चत्तारो मग्गसमङ्गिनो, चत्तारो फलसमङ्गिनो पुग्गला

१. [N.109; R. 73; S.404] तत्थ[1] कतमे चत्तारो मग्गसमङ्गिनो, चत्तारो फलसमङ्गिनो पुग्गला ?

सोतापन्नो, सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो; सकदागामी, सकदागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो; अनागामी, अनागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो; अरहा, अरहत्तफलसच्छिकिरियाय[2] पटिपन्नो; इमे चत्तारो मग्गसमङ्गिनो, इमे[3] चत्तारो फलसमङ्गिनो पुग्गला।

अट्ठकनिद्देसो निट्ठितो।

(१.क-ज) चार मार्ग-युक्त तथा चार फल-युक्त पुरुष

तब कौन-से चार पुरुष मार्ग-युक्त तथा चार फल-युक्त हैं ?

स्रोतापन्न, स्रोतापत्तिफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न; सकृदागामी, सकृदागामी फल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न; अनागामी, अनागामी फल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न; अर्हत, अर्हतफल साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न; ये चार प्रकार के मार्ग से युक्त हैं तथा ये चार प्रकार के फल से युक्त पुरुष हैं।

आठवाँ निर्देश समाप्त।

---

१. स्या० पोत्थके नत्थि।

२. अरहत्ताय – स्या०, रो०।

३. सी० पोत्थके नत्थि।

नवमो परिच्छेदो

६. नवकपुग्गलपञ्ञत्ति

(१.क) सम्मासम्बुद्धो पुग्गलो

१. [N.110; B. 184; S. 406] कतमो च पुग्गलो सम्मासम्बुद्धो ?

इधेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति, तत्थ च सब्बञ्ञुतं पापुणाति बलेसु च वसीभावं। अयं वुच्चति पुग्गलो "सम्मासम्बुद्धो"।

(१.क) सम्यकसम्बुद्ध पुरुष

कौन-सा पुरुष सम्यकसम्बुद्ध है ?

यहाँ कोई एक पुरुष पूर्व में न सुने गये धर्मों में स्वयं सत्यों को पूर्ण रूप से जानता है और उसमें सर्वज्ञता को प्राप्त होता है तथा (दस प्रकार के) बलों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "सम्यकसम्बुद्ध" कहा जाता है।

(ख) पच्चेकसम्बुद्धो पुग्गलो

२. कतमो च पुग्गलो पच्चेकसम्बुद्धो[1] ?

इधेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति, न च तत्थ सब्बञ्ञुतं पापुणाति न च बलेसु वसीभावं। अयं वुच्चति पुग्गलो "पच्चेकसम्बुद्धो"।

---

१. पच्चेकबुद्धो – सी०, एवमुपरि पि।

(ख) प्रत्येकसम्बुद्ध पुरुष

कौन-सा पुरुष प्रत्येकसम्बुद्ध है ?

यहाँ कोई एक पुरुष पूर्व में न सुने गये धर्मों में स्वयं सत्यों को पूर्ण रूप से जानता है परन्तु उसमें न तो सर्वज्ञता प्राप्त रहता है और न ही (दस) बलों पर अधिकार प्राप्त होता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "प्रत्येकसम्बुद्ध" कहा जाता है।

(ग) उभतोभागविमुत्तो पुग्गलो

३. कतमो च पुग्गलो उभतोभागविमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति पञ्ञाय चस्स दिस्वा आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो "उभतोभागविमुत्तो"।

(ग) दोनों प्रकार से विमुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष दोनों प्रकार से विमुक्त है ?

यहाँ कोई एक पुरुष आठ विमोक्षों को शरीर (नामकाय) से स्पर्श या साक्षात्कार करके (उनकी उपलब्धियों के साथ) विहार करता है और प्रज्ञा द्वारा देखकर वह आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "दोनों प्रकार से विमुक्त" कहा जाता है।

(घ) पञ्ञाविमुत्तो पुग्गलो

४. कतमो च पुग्गलो पञ्ञाविमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो न हेव खो अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति पञ्ञाय चस्स दिस्वा आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो "पञ्ञाविमुत्तो"।

(घ) प्रज्ञाविमुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष प्रज्ञाविमुक्त है ?

यहाँ कोई एक पुरुष आठ विमोक्षों को शरीर (नामकाय) से स्पर्श या साक्षात्कार किए बिना ही विहार करता है और प्रज्ञा द्वारा देखकर वह आस्रवों

का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "प्रज्ञाविमुक्त" कहा जाता है।

(ङ) कायसक्खी पुग्गलो

५. कतमो च पुग्गलो कायसक्खी ?

इधेकच्चो पुग्गलो अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो "कायसक्खी"।

(ङ) कायसाक्षी पुरुष

कौन-सा पुरुष कायसाक्षी है ?

यहाँ कोई एक पुरुष आठ विमोक्षों को शरीर (नामकाय) से स्पर्श या साक्षात्कार करके विहार करता है और प्रज्ञा द्वारा देखकर वह आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "कायसाक्षी" कहा जाता है।

(च) दिट्ठिप्पत्तो पुग्गलो

६. [N.111; R.74] कतमो च पुग्गलो दिट्ठिप्पत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो "इदं दुक्खं"ति यथाभूतं पजानाति... पे०..."अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा"ति यथाभूतं पजानाति। तथागतप्पवेदिता चस्स धम्मा पञ्ञाय वोदिट्ठा होन्ति वोचरिता। पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं वुच्चति पुग्गलो "दिट्ठिप्पत्तो"।

(च) दृष्टिप्राप्त पुरुष

कौन-सा पुरुष दृष्टिप्राप्त है ?

यहाँ कोई एक पुरुष यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःख है" ... यथार्थ रूप से जानता है कि "यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है।" वह तथागत द्वारा घोषित किए गये धर्मों को प्रज्ञा द्वारा पूर्ण रूप से जाना हुआ होता है (और) अभ्यास किया हुआ होता है। प्रज्ञा द्वारा देखकर वह कुछ आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष "दृष्टिप्राप्त" कहा जाता है।

(छ) सद्धाविमुत्तो पुग्गलो

७. [S.408] कतमो च पुग्गलो सद्धाविमुत्तो ?

इधेकच्चो पुग्गलो ''इदं दुक्खं''ति यथाभूतं पजानाति ... पे० ... ''अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा''ति यथाभूतं पजानाति। तथागतप्पवेदिता चस्स धम्मा पञ्ञाय [B.185] वोदिट्ठा होन्ति वोचरिता। पञ्ञाय चस्स दिस्वा एकच्चे आसवा परिक्खीणा होन्ति, नो च खो यथा दिट्ठिप्पत्तस्स। अयं वुच्चति पुग्गलो ''सद्धाविमुत्तो''।

(छ) श्रद्धाविमुक्त पुरुष

कौन-सा पुरुष श्रद्धाविमुक्त है ?

यहाँ कोई एक पुरुष यथार्थ रूप से जानता है कि ''यह दुःख है'' ... यथार्थ रूप से जानता है कि ''यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है।'' वह तथागत द्वारा घोषित किए गये धर्मों को प्रज्ञा द्वारा पूर्ण रूप से जाना हुआ होता है (और) अभ्यास किया हुआ होता है। प्रज्ञा द्वारा देखकर वह कुछ आस्रवों का पूर्ण रूप से प्रहाण कर देता है, यद्यपि वह दृष्टिप्राप्त (पुरुष) के सदृश नहीं है। (इस प्रकार का) यह पुरुष ''श्रद्धाविमुक्त'' कहा जाता है।

(ज) धम्मानुसारी पुग्गलो

८. कतमो च पुग्गलो धम्मानुसारी ?

यस्स पुग्गलस्स सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नस्स पञ्ञिन्द्रियं अधिमत्तं होति, पञ्ञावाहिं पञ्ञापुब्बङ्गमं अरियमग्गं भावेति। अयं वुच्चति पुग्गलो धम्मानुसारी। सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो धम्मानुसारी, फले ठितो दिट्ठिप्पत्तो।

(ज) धर्मानुसारी पुरुष

कौन-सा पुरुष धर्मानुसारी है ?

जो पुरुष स्रोतापत्तिफल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न है, प्रज्ञा-इन्द्रिय बलवती है, प्रज्ञा अग्रसर है, प्रज्ञा उत्तम है एवं आर्य मार्ग की भावना करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष धर्मानुसारी कहा जाता है। स्रोतापत्तिफल

के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न पुरुष धर्मानुसारी तथा फल पर स्थित (आरूढ़ पुरुष) दृष्टिप्राप्त है।

(झ) सद्धानुसारी पुग्गलो

६. कतमो च पुग्गलो सद्धानुसारी ?

यस्स पुग्गलस्स सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नस्स सद्धिन्द्रियं अधिमत्तं होति, सद्धावाहिं सद्धापुब्बङ्गमं अरियमग्गं भावेति। अयं वुच्चति पुग्गलो सद्धानुसारी। सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो सद्धानुसारी, फले ठितो सद्धाविमुत्तो ति।

नवकनिद्देसो निट्ठितो।

(झ) श्रद्धानुसारी पुरुष

कौन-सा पुरुष श्रद्धानुसारी है ?

जो पुरुष स्रोतापत्तिफल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न है, श्रद्धा-इन्द्रिय बलवती है, श्रद्धा अग्रसर है, श्रद्धा उत्तम है एवं आर्य मार्ग की भावना करता है। (इस प्रकार का) यह पुरुष श्रद्धानुसारी कहा जाता है। स्रोतापत्तिफल के साक्षात्कार के लिए प्रतिपन्न पुरुष श्रद्धानुसारी तथा फल पर आरूढ़ (पुरुष) श्रद्धाविमुक्त है।

नौवाँ निर्देश समाप्त।

दसमो परिच्छेदो

१०. दसकपुग्गलपञ्ञत्ति[1]

(१.क-ङ) पञ्च पुग्गला इध निट्ठा

१. [N. 112; S. 410] कतमेसं पञ्चन्नं इध निट्ठा ?

सत्तक्खत्तुपरमस्स[2] कोलङ्कोलस्स एकबीजिस्स सकदागामिस्स यो च दिट्ठेव धम्मे अरहा– इमेसं पञ्चन्नं इध निट्ठा।

(१.क-ङ) पाँच पुरुष यहाँ पर पूर्णता को प्राप्त

कौन-से पाँच (पुरुष) यहाँ पर पूर्णता को प्राप्त हैं ?

सात बार जन्म लेने वाला (अर्थात् स्रोतापन्न), एक कुल से दूसरे कुल में जाने वाला, एक बीज वाला, एक बार जन्म लेने वाला (अर्थात् सकृदागामी) तथा इसी जीवन में अर्हत्व प्राप्त करने वाला– ये पाँच (पुरुष) यहाँ पर पूर्णता को प्राप्त हैं।

(च-ञ) पञ्चं पुग्गला इध विहाय निट्ठा

२. कतमेसं पञ्चन्नं इध विहाय निट्ठा ?

अन्तरापरिनिब्बायिस्स उपहच्चपरिनिब्बायिस्स असङ्खार-परिनिब्बायिस्स ससङ्खारपरिनिब्बायिस्स उद्धंसोतस्स अकनिट्ठगामिनो– इमेसं पञ्चन्नं इध विहाय निट्ठा ति।

---

१. दसकनिद्देसो – सी०, स्या०; दस पुग्गला – रो०।

२. सत्तक्खत्तुंपरमस्स – स्या०।

एत्तावता पुग्गलानं पुग्गलपञ्ञत्ती ति।

दसकनिद्देसो निट्ठितो।

पुग्गलपञ्ञत्तिपकरणं निट्ठितं।

(च-ञ) पाँच पुरुष यहाँ को छोड़कर पूर्णता को प्राप्त

कौन-से पाँच (पुरुष) यहाँ को छोड़कर पूर्णता को प्राप्त हैं ?

मध्यम मार्ग में परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला, आधे से अधिक पार कर जाने पर परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला, दुःख-रहित होकर परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला, दुःख-युक्त होकर परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला तथा ऊपर की ओर जाते समय परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला – ये पाँच (पुरुष) यहाँ को छोड़कर पूर्णता को प्राप्त हैं।

इस प्रकार यहाँ पर पुद्गल-प्रज्ञप्ति में पुरुषों का प्रज्ञापन समाप्त हुआ।

दसवाँ निर्देश समाप्त।

पुरुषों के प्रज्ञापन का प्रकरण समाप्त।

❑❑❑

पुग्गलानुक्कमणिका

अ

अकुप्पधम्मो पुग्गलो	४, ३१
अक्कोधनो पुग्गलो	८, ६६
अज्झत्तसंयोजनो पुग्गलो	८, ६५
अज्झुपेक्खितब्बो न सेवितब्बो	१२, १११
अत्तन्तपो च परन्तपो च पुग्गलो	२०, १७६
अत्तन्तपो पुग्गलो	२०, १७२
अत्तहिताय चेव पटिपन्नो परहिताय च	१९, १७१
अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय	१९, १६९
अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय लाभी	२१, १९१
चेतोसमथस्स न लाभी अन्तरापरिनिब्बायी पुग्गलो	६, ४६
अन्धो पुग्गलो	१०, ९३
अनरियो पुग्गलो	५, ३८
अनवज्जो पुग्गलो	१४, १२७
अनागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो	७, ५०
अनागामी पुग्गलो	६, ७, ४५ ५०, २१९
अनियतो पुग्गलो	५, ३६
अनिस्सुकी पुग्गलो	८, ६८
अनुपनाही पुग्गलो	८, ६६
अनुरक्खणाभब्बो पुग्गलो	४, ३३

अनुसोतगामी पुग्गलो २१, १९३
अनोत्तप्पी पुग्गलो ८, ५८
अप्पमेय्यो पुग्गलो ११, १०७
अप्पवज्जो पुग्गलो १४, १२६
अप्पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति १६, १५४
अप्पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति १६, १५२
अप्पस्सुतो सुतेन अनुपपन्नो २२, १९५
अप्पस्सुतो सुतेन उपपन्नो २२, १९५
अपरिहानधम्मो पुग्गलो ४, ३२
अपरे पि तयो सत्थारो १३, ११६
अपळासी पुग्गलो ८, ६७
अभब्बागमनो पुग्गलो ५, ३५
अभयूपरतो पुग्गलो ५, ३५
अमक्खी पुग्गलो ८, ६७
अमच्छरी पुग्गलो ८, ६८
अमायावी पुग्गलो ८, ७०
अरहत्तफलसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो ७, ५०
अरहन्तो पुग्गलो २१९
अरहा पुग्गलो ७, ५०
अरियो पुग्गलो ५, ३८
अरुकूपमचित्तो पुग्गलो १०, ९०
अवकुज्जपञ्ञो पुग्गलो १०, ९४
अवण्णारहस्स अवण्णं भासति १६, १५३
अवण्णारहस्स अवण्णं भासति, नो च वण्णारहस्स वण्णं १७, १५५
अवण्णारहस्स च अवण्णं वण्णारहस्स च वण्णं भासति १७, १५६
अवण्णारहस्स वण्णं भासति १५, १५०
असङ्खारपरिनिब्बायी पुग्गलो ६, ४७

असठो पुग्गलो ८, ६९
असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो पुग्गलो १३, १८८
असप्पुरिसो पुग्गलो १३, ११८
असम्पजानो पुग्गलो ८, ६२
असमयविमुत्तो पुग्गलो ४, २९
असेक्खो पुग्गलो ५, ३८
अहिरिको पुग्गलो ८, ५७

आ

आधेय्यमुखो होति २४, २०३
आरभति च, विप्पटिसारी होति २२, १९९
आरभति न विप्पटिसारी होति २३, २००
आसंसो पुग्गलो १०, ८३

इ

इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारो पुग्गलो ८, ६०
इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो पुग्गलो ९, ७३
इस्सुकी पुग्गलो ७, ५४

उ

उग्घटितञ्ञू पुग्गलो १४, १२७
उच्छङ्गपञ्ञो पुग्गलो ११, ९६
उट्ठानफलूपजीवी च पुञ्ञफलूपजीवी च १८, १५९
उट्ठानफलूपजीवी नो पुञ्ञफलूपजीवी १८, १५८
उण्णतुण्णतो पुग्गलो १८, १६४
उण्णतोणतो पुग्गलो १८, १६३
उदकलेखूपमो पुग्गलो ११, १०१

उद्धंसोतो अकनिट्ठगामी पुग्गलो ६, ४८
उपट्ठितस्सति पुग्गलो ९, ७५
उपनाही पुग्गलो ७, ५१
उपहच्चपरिनिब्बायी पुग्गलो ६, ४६
उभतोभागविमुत्तो पुग्गलो ६, २७, २८, ४०, २२६, २३०
उभिन्नं अलाभी १९२
उभिन्नं लाभी १९१
उम्मुज्जित्वा ठितो होति २७, २२२
उम्मुज्जित्वा तिण्णो होति २७, २२५
उम्मुज्जित्वा निमुज्जति २६, २२१
उम्मुज्जित्वा पटिगाधप्पत्तो होति २७, २२४
उम्मुज्जित्वा पतरति २७, २२४
उम्मुज्जित्वा विपस्सति २७, २२३

ए

एकचक्खु पुग्गलो १०, ९३
एकबीजी पुग्गलो ६, ४५

ओ

ओणतुण्णतो पुग्गलो १८, १६४
ओणतोणतो पुग्गलो १८, १६३
ओत्तप्पी पुग्गलो ९, ७१

क

कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरो पुग्गलो १४, १२५
कल्याणधम्मो पुग्गलो १४, १२४
कल्याणमित्तो पुग्गलो ९, ७३

कल्याणेन कल्याणतरो पुग्गलो १३, १२२
कल्याणो पुग्गलो १३, १२२
कामेसु च भवेसु च अवीतरागो पुग्गलो ११, ९९
कामेसु च भवेसु च वीतरागो ११, ९९
कामेसु वीतरागो भवेसु अवीतरागो ११, ९९
कायसक्खी पुग्गलो ६, १०, २८, ४१, ८७, २३१
कुप्पधम्मो पुग्गलो ४, ३०
कोधनो पुग्गलो ७, ५१
कोलङ्कोलो पुग्गलो ६, ४४

ग

गूथभाणी पुग्गलो १०, ८८
गोत्रभू पुग्गलो ४, ३४

घ

घोसप्पमाणो घोसप्पसन्नो पुग्गलो १९, १६८

च

चत्तारो अम्बूपमा पुग्गला १५, १३७
चत्तारो आसीविसूपमा पुग्गला १५, १४८
चत्तारो उदकरहदूपमा पुग्गला १५, १४३
चत्तारो कुम्भूपमा पुग्गला १५, १४१
चत्तारो धम्मकथिका पुग्गला १५, १३०
चत्तारो फलसमङ्गिनो पुग्गला २७, २२८
चत्तारो बलीबद्दूपमा पुग्गला १५, १४६
चत्तारो मग्गसमङ्गिनो पुग्गला २७, २२८
चत्तारो मूसिकूपमा पुग्गला १५, १३४

चत्तारो रुक्खूपमा पुग्गला १९, १६५
चत्तारो वलाहकूपमा पुग्गला १५, १३२
चेतनाभब्बो पुग्गलो ४, ३३
चेतोसमथस्स लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय न लाभी २१, १९०

छ

छळभिञ्ञो पुग्गला ५, ३९

ज

जिगुच्छितब्बो न सेवितब्बो १२, ११०
जोति जोतिपरायनो पुग्गलो १८, १६२
जोति तमपरायनो पुग्गलो १८, १६१

ठ

ठितत्तो पुग्गलो २१, १९४

त

तमो जोतिपरायनो पुग्गलो १८, १६१
तमो तमपरायनो पुग्गलो १८, १६०
तयो कासिकवत्थूपमा पुग्गला ११, १०४
तयो गिलानूपमा पुग्गला १०, ८४
तयो पोत्थकूपमा पुग्गला ११, १०२
तयो सत्थारो १३, ११४
तित्तो पुग्गलो तप्पेता च ९, ८१
तेविज्जो पुग्गलो ५, ३९

द

दिट्ठा अवजानाति २४, २०२

दिट्ठिप्पत्तो पुग्गलो ६, १०, २८, ४१, ८७, २३२
दिट्ठिविपन्नो पुग्गलो ८, ६४
दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो ९, ७७
द्विचक्खु पुग्गलो १०, ९४
द्विन्नं आसवा न वड्ढन्ति ९, ८०
द्विन्नं आसवा वड्ढन्ति ९, ७९
दुप्पमेय्यो पुग्गलो ११, १०७
दुब्बचो पुग्गलो ८, ५८
द्वे दुत्तप्पया पुग्गला ९, ७९
द्वे दुल्लभा पुग्गला ९, ७८
द्वे सुतप्पया पुग्गला ९, ७९

ध

धम्मप्पमाणो धम्मप्पसन्नो पुग्गलो १९, १६९
धम्मानुसारी पुग्गलो ६, २७, २८, ४३, २२६, २३२

न

न सेवितब्बो पुग्गलो १२, १०७
नारभति न विप्पटिसारी होति २३, २०१
नारभति विप्पटिसारी होति २३, २००
नियतो पुग्गलो ५, ३६
निरासो पुग्गलो १०, ८२
नेय्यो पुग्गलो १४, १२८
नेव अत्तन्तपो न परन्तपो च पुग्गलो २०, १७७
नेव अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय १९, १७२
नेव अवण्णारहस्स अवण्णं न वण्णारहस्स वण्णं भासति १७, १५७
नेव उट्ठानफलूपजीवी नो पुञ्ञफलूपजीवी १८, १५९

नेव युत्तप्पटिभानो नो मुत्तप्पटिभानो १५, १३०
नेवसेक्खनासेक्खो पुग्गलो ५, ३८

प

पच्चेकसम्बुद्धो पुग्गलो ५, २८, ४०, २१८, २२९
पञ्च खलुपच्छाभत्तिकादि २४, २१५
पञ्च पिण्डपातिका २४, २१३
पञ्च पुग्गला इध निट्ठा २८, २३४
पञ्च पुग्गला इध विहाय निट्ठा २८, २३४
पञ्चमो पुग्गलो २००
पञ्च योधाजीवूपमा पुग्गला २४, २०४
पञ्च सोसानिका २४, २१५
पञ्ञाविमुत्तो पुग्गलो ६, २७, २८, ४०, २२६, २३०
पटिपन्नको पुग्गलो ५, ३७
पटिसोतगामी पुग्गलो २१, १९३
पणीताधिमुत्तो पुग्गलो ९, ८१
पथवीलेखूपमो पुग्गलो ११, १००
पदपरमो पुग्गलो १४, १२८
परन्तपो पुग्गलो २०, १७५
परहिताय पटिपन्नो नो अत्तहिताय १९, १७०
परिहानधम्मो पुग्गलो ४, ३१
पलासी पुग्गलो ७, ५३
पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति १६, १५२
पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति १६, १५४
पापधम्मेन पापधम्मतरो पुग्गलो १३, १२४
पापधम्मो पुग्गलो १३, १२३
पापमित्तो पुग्गलो ८, ५९

पापेन पापतरो पुग्गलो १३, १२१
पापो पुग्गलो १३, १२०
पारङ्गतो पुग्गलो २१, १९४
पासाणलेखूपमो पुग्गलो ११, १००
पुञ्ञफलूपजीवी नो उट्ठानफलूपजीवी १८, १५८
पुथुज्जनो पुग्गलो ४, ३४
पुथुपञ्ञो पुग्गलो ११, ९७
पुप्फभाणी पुग्गलो १०, ८८

फ

फले ठितो पुग्गलो ५ ३७

ब

बहिद्धासंयोजनो पुग्गलो ८, ६५
बहुस्सुतो सुतेन अनुपपन्नो २२, १९६
बहुस्सुतो सुतेन उपपन्नो २२, १९६

भ

भब्बागमनो पुग्गलो ५, ३६
भयूपरतो पुग्गलो ५, ३५
भोजने अमतञ्ञू पुग्गलो ८, ६१
भोजने मत्तञ्ञू पुग्गलो ९, ७४

म

मक्खी पुग्गलो ७, ५२
मच्छरी पुग्गलो ७, ५४
मधुभाणी पुग्गलो १०, ९०
मन्दो मोमूहो होति २४, २०४

महासावको पुग्गलो २१९
मायावी पुग्गलो ७, ५६
मुट्ठस्सति पुग्गलो ८, ६१
मुत्तप्पटिभानो नो युत्तप्पटिभानो १४, १२९

य

युत्तप्पटिभानो च मुत्तप्पटिभानो च ४, १२९
युत्तप्पटिभानो नो मुत्तप्पटिभानो १४, १२९

र

रूपप्पमाणो रूपप्पसन्नो पुग्गलो १९, १६७

ल

लूखप्पमाणो लूखप्पसन्नो पुग्गलो १९, १६८
लोलो होति २४, २०३

व

वज्जबहुलो पुग्गलो १४, १२६
वजिरूपमचित्तो पुग्गलो १०, ९२
वण्णारहस्स अवण्णं भासति १५, १५१
वण्णारहस्स वण्णं भासति १६, १५३
वण्णारहस्स वण्णं भासति, नो च अवण्णारहस्स अवण्णं १७, १५५
विगतासो पुग्गलो १०, ८३
विज्जूपमचित्तो पुग्गलो १०, ९१
विपञ्चितञ्ञू पुग्गलो १४, १२७

स

सक्कत्वा सेवितब्बो पुग्गलो १२, १०९
सकदागामिसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो ७, ४९

सकदागामी पुग्गलो ६, ७, ४५, ४९
सकिं निमुग्गो निमुग्गो व होति २६, २२१
सठो पुग्गलो ७, ५५
सत्तक्खत्तुपरमो पुग्गलो ६, ४४
सदोसो पुग्गलो २१, १८९
सद्धानुसारी पुग्गलो ६, २७, २८, ४३, २२७, २३३
सद्धाविमुत्तो पुग्गलो ६, १०, २८, ४२, ८८, २३२
सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो पुग्गलो १३, ११९
सप्पुरिसो पुग्गलो १३, ११९
सम्पजानो पुग्गलो ९, ७६
समणपदुमो पुग्गलो २२, १९७
समणपुण्डरीको पुग्गलो २२, १९८
समणमचलो पुग्गलो २२, १९७
समणेसु समणसुखुमालो २२, १९८
समयविमुत्तो पुग्गलो ४, २९
समसीसी पुग्गलो ५, ३७
सम्मासम्बुद्धो पुग्गलो ५, २८, ३९, २१८, २२९
समानो पुग्गलो २१, १९०
समोहो पुग्गलो २१, १९०
सरागो पुग्गलो २१, १८९
ससङ्खारपरिनिब्बायी पुग्गलो ६, ४८
सावज्जो पुग्गलो १४, १२५
सीलविपन्नो पुग्गलो ८, ६३
सीलसम्पन्नो पुग्गलो ९, ७७
सीलसमाधिपञ्ञासु परिपूरकारी पुग्गलो १३, ११४
सीलसमाधिसु परिपूरकारी पुग्गलो १३, ११४
सीलेसु परिपूरकारी पुग्गलो १२, ११३

सुप्पमेय्यो पुग्गलो ११, १०६
सुवचो पुग्गलो ९, ७२
सेक्खो पुग्गलो ५, ३८
सेवितब्बो पुग्गलो १२, १०८, ११२
सोतापत्तिसच्छिकिरियाय पटिपन्नो पुग्गलो ७, ४९
सोतापन्नो पुग्गलो ६, ४९
सोतापन्नो सकदागामी पुग्गलो २२०
संवासेन अवजानाति २४, २०२

ह

हिनाधिमुत्तो पुग्गलो ९, ८०
हिरिमा पुग्गलो ९, ७१

उपमा-अनुक्कमणिका

सेय्यथापि तं अम्बं आमं आमवण्णि... १३६
सेय्यथापि तं अम्बं आमं पक्कवणि... १३७
सेय्यथापि तं अम्बं पक्कं आमवण्णि... १३७
सेय्यथापि तं अम्बं पक्कं पक्कवण्णि... १३६
सेय्यथापि तं कासिकवत्थं महग्घं... १०४
सेय्यथापि तं कासिकवत्थं वण्णवन्तं... १०४
सेय्यथापि तं कासिकवत्थं सुखसम्फस्सं... १०४
सेय्यथापि नाम अहि गूथगतो किञ्चापि... १०६
सेय्यथापि नाम उदके लेखा खिप्पं लुज्जति... १००
सेय्यथापि नाम कुम्भो उक्कुज्जो, तत्र उदकं आसित्तं सण्ठाति... ६७
सेय्यथापि नाम कुम्भो निक्कुज्जो, तत्र उदकं आसित्तं विवट्टति... ६४
सेय्यथापि नाम गवा खीरं, खीरम्हा दधि... २१३, २१५
सेय्यथापि नाम गूथकूपो कट्ठेन वा कठलाय वा... ११०
सेय्यथापि नाम चक्खुमा पुरिसो रत्तन्धकारतिमिसाय
विज्जन्तरिकाय रूपानि पस्सेय्य... ६०
सेय्यथापि नाम तिन्दुकालातं कट्ठेन वा कठलाय वा घट्टितं... ११०
सेय्यथापि नाम दुट्ठारुको कट्ठेन वा कठलाय वा... ६०, ११०
सेय्यथापि नाम पथविया लेखा खिप्पं लुज्जति... ६६
सेय्यथापि नाम पासाणे लेखा न खिप्पं लुज्जति... ६६
सेय्यथापि नाम पुरिसस्स उच्छङ्गे नानाखज्जकानि आकिण्णानि... ६५
सेय्यथापि नाम वजिरस्स नत्थि किञ्चि अभेज्जं... ६१
सेय्यथापि सा मूसिका गाधं कत्ता च वसिता च... १३५
सेय्यथापि सा मूसिका गाधं कत्ता नो वसिता... १३४
सेय्यथापि सा मूसिका नेव गाधं कत्ता नो वसिता... १३५
सेय्यथापि सा मूसिका वसिता नो गाधं कत्ता... १३४
सेय्यथापि सो आसीविसो आगतविसो च घोरविसो च... १४६

सेय्यथापि सो आसीविसो आगतविसो नो घोरविसो... १४६
सेय्यथापि सो आसीविसो घोरविसो नो आगतविसो... १४८
सेय्यथापि सो आसीविसो नेव आगतविसो नो घोरविसो... १४६
सेय्यथापि सो उदकरहदो उत्तानो उतानोभासो... १४४
सेय्यथापि सो उदकरहदो उत्तानो गम्भीरोभासो... १४३
सेय्यथापि सो उदकरहदो गम्भीरो उत्तानोभासो... १४३
सेय्यथापि सो उदकरहदो गम्भीरो गम्भीरोभासो... १४४
सेय्यथापि सो कुम्भो तुच्छो पिहितो... १४०
सेय्यथापि सो कुम्भो तुच्छो विवटो... १४१
सेय्यथापि सो कुम्भो पूरो पिहितो... १४२
सेय्यथापि सो कुम्भो पूरो विवटो... १४१
सेय्यथापि सो पोत्थको अप्पग्घो... १०१
सेय्यथापि सो पोत्थको दुक्खसम्फस्सो... १०१
सेय्यथापि सो पोत्थको दुब्बण्णो... १०१
सेय्यथापि सो बलीबद्दो नेव सकगवचण्डो नो परगवचण्डो... १४७
सेय्यथापि सो बलीबद्दो परगवचण्डो नो सकगवचण्डो... १४६
सेय्यथापि सो बलीबद्दो सकगवचण्डो च परगवचण्डो च... १४६
सेय्यथापि सो बलीबद्दो सकगवचण्डो नो परगवचण्डो... १४६
सेय्यथापि सो योधाजीवो रजग्गञ्ञेव दिस्वा... २०५
सेय्यथापि सो योधाजीवो सहति रजग्गं... २०६-२०६, २१२
सेय्यथापि सो रुक्खो फेग्गु फेग्गुपरिवारो... १६५
सेय्यथापि सो रुक्खो फेग्गु सारपरिवारो... १६५
सेय्यथापि सो रुक्खो सारो फेग्गुपरिवारो... १६५
सेय्यथापि सो रुक्खो सारो सारपरिवारो... १६६
सेय्यथापि सो वलाहको गज्जिता च वस्सिता च... १३२
सेय्यथापि सो वलाहको गज्जिता नो वस्सिता... १३१
सेय्यथापि सो वलाहको नेव गज्जिता नो वस्सिता... १३२
सेय्यथापि सो वलाहको वस्सिता नो गज्जिता... १३२

NEW BHARATIYA BOOK CORPORATION
INDOLOGICAL PUBLISHERS & BOOK SELLERS
Shop No. 18, 2nd floor, 5574A, Ch. Kashi Ram Market,
Durga Complex, New Chandrawal, Delhi-110007